KÂVYAMÂLÂ. 21.

THE

GÂTHÂSAPTAS'ATÎ

OF

SÂTAVÂHANA.

With the Commentary of Gangâdharabhatta.

EDITED BY

PAṆDIT DURGÂPRASÂD

AND

KÂS'ÎNÂTH PÂṆDURANG PARAB.

PRINTED AND PUBLISHED

BY

THE PROPRIETOR

OF

THE "NIRṆAYA-SÂGARA" PRESS.

BOMBAY.

1889.

Price 1½ *Rupee.*

काव्यमाला. २१.

श्रीसातवाहनविरचिता

गाथासप्तशती।

गङ्गाधरभट्टविरचितया टीकया समेता।



जयपुरमहाराजाश्रितेन पण्डितव्रजलालसूनुना पण्डित-
दुर्गाप्रसादेन, मुम्बापुरवासिना परबोपाह्व-
पाण्डुरङ्गात्मजकाशिनाथशर्मणा च
संशोधिता।



सा च

मुम्बय्यां निर्णयसागराख्ययन्त्रालये तदधिपतिना मुद्राक्षरैरङ्कयित्वा
प्राकाश्यं नीता।



१८८९





मूल्यं सार्धो रूप्यकः।

गाथानुक्रमणिका ।

अइ उज्जुए ण ७।७७
अइकोवणा वि सासू ५।९३
अइ दिअर किं ण ६।७०
अइदोहराइँ बहुए ७।७४
अउलीणो दोमुह ३।५३
अक्कअण्णुअ घणवण्णं ६।२९
अकअण्णुअ तुज्झ ५।४५
अक्खडइ पिआ (रइराअस्स) १।४४
अगणिअजणाववाअं ५।८४
अगणिअसेस (गतलद्धिअस्स)[1] १।५७
अग्घाइ छिवइ ७।३९
अङ्गाणं तणुआरअ (मिहरस्स) ४।४८
अच्चासण्णविवाहे ७।५५
अच्छउ ता जणवाओ (वाहवस्स ?) ३।१
अच्छउ दाव मणहरं २।६८
अच्छीहिँ ता थइस्सं (नस्सीहस्स) ४।१४
अच्छेरं व णिहिं (रामस्स) २।२५
अच्छोडिअवत्थ (गुणड्ढस्स) २।६०
अज्ज अ णाहं (मिअङ्कस्स) २।८४
अज्ज कइमो वि (हालस्स) २।१९
अज्जं गओत्ति अज्जं (पवरसेणस्स) ३।८
अज्ज मए गन्तव्वं (सुचरिअस्स) ३।४९
अज्ज मए तेण (कैल्लाणस्स)[2] १।२९
अज्जं पि ताव एक्कं ६।२
अज्जं मोहणसुहिअं (जण्णन्दसारस्स) ४।६०
अज्ज म्हि हासिआ (हालस्स) ३।६४
अज्ज वि बालो (विधिविग्गहस्स) २।१२
अज्ज व्वेअ पउत्थो अज्ज (अमीअस्स) २।९०
अज्ज व्वेअ पउत्थो उज्जा (असरिसस्स) १।५८
अज्ज सहि केण (केसवस्स) ४।८१
अज्जाइ णीलकञ्चुअ (मीणसामिणो) ४।९५
अज्जाएँ णवण (केसवराअस्स) २।५०
अणुऊलं विअ वोत्तुं ६।२३
अणुणअपसा (विण्णस्स) ३।७७
अणुदिअह (परक्कमस्स) ३।६६
अणुमरणपत्थिआए ७।३३
अणुवत्तणं (हालस्स) ३।६५
अणुहुत्तो करफंसो ७।५७
अण्णग्गामपउत्था ७।८७
अण्णण्णं कुसुम (अणुराअस्स) २।३९
अण्णमहिला (अणिरुद्धस्स) १।४८
अण्णं पि किं पि ६।९
अण्णह ण तीरइ (अणवत्थस्स) ४।४९
अण्णाणँ वि होन्ति ५।७०
अण्णावराहकुविओ ५।९८
अण्णासआइँ (मअरन्दअस्स) १।२३
अण्णेसु पहिअ ७।२९
अण्णो को वि ५।३०
अण्णोण्णकडक्ख ७।९९
अत्ता तह रमणिज्जं (कुमारिलस्स) १।८
अत्थक्करूसणं ७।७५
अद्दंसणेण पुत्तअ (वहुरसस्स) ३।३६
अद्दंसणेण पेम्मं (सामिअस्स) १।८१
अद्दंसणेण महिला (सामिअस्स) १।८२
अद्धच्छिपेच्छिअं (मअरन्दस्स) ३।२५
अन्तो हुत्तं डज्झइ (णाहहत्थिस्स) ४।७३
अन्धअरबोरपत्तं (अणुराअस्स) ३।४०
अपहुप्पन्तं (उअहिस्स) ? ५।११
अप्पच्छन्दपहाविर (पवरसेणस्स) ३।२
अप्पत्तपत्तअं (मउहस्स ?) ३।४१
अप्पत्तमण्णुदुक्खो (......) २।५७
अप्पाहेइ मरन्तो ७।३२
अब्भन्तरसरसाओ ७।२३
अमअमअ (हालस्स) १।१६
अमिअं पाउअकव्वं १।२
अम्बवणे भमरउलं ६।४३

१. 'गतलज्जस्य' वे. २. 'शल्याणस्य' वे.

अम्हे उज्जुअसीला		७।६४
अलिअपसुत्त	(चन्दसामिणो)	१।२०
अलिअपसुत्तव		७।४६
अलिहिज्जइ पङ्कअले		७।९०
अवमाणिओ वि	(अवन्तिवम्मस्स)	४।२०
अवरज्झसु	(माउराअस्स)	४।७६
अवरह्णागअजामा		७।८३
अवराहेहिं वि	(जअराअस्स)	४।५३
अवलम्बह मा	(दुद्धरस्स)	४।८६
अवलम्बिअमाण	(रेवाए)	१।८७
अवहत्थिऊण	(देवस्स)	३।५८
अविअह्णपेक्खणिज्जेण	(वज्जस्स)	१।९३
अविइह्णपेच्छणिज्जं	(सिरिसत्तिअस्स)	१।९९
अविरलपडन्तणव		५।३६
अविहत्तसंधिबन्धं		७।१३
अविहवलक्खणवलअं		६।३९
अव्वो अणुणअ	(सीहस्स)	४।६
अव्वो दुक्कर	(सरलस्स)	३।७३
असमत्तगुरुअकज्जे		६।३७
असमत्तमण्डणा	([२]कालिराअस्स)	१।२१
असरिसचित्ते	([३]मण्डहिवस्स ?)	१।५९
अह अम्ह आअदो	(अहअस्स)	४।१
[४]अहअं लज्जा		२।२७
अहअं विओअतणुई		५।८६
अहरमहुपाण		७।६१
अहव गुणव्विअ	(चन्दहत्थिस्स)	३।३
अह संभाविअमग्गो	(भोजअस्स)	१।३२
अहसरसदन्त	(अहअस्स)	३।१००
अह सा तहिं तहिं		४।१८
अह सो विलक्खहिअ	(हालस्स)	५।२०
अहिआअमाणिणो	(चुल्लोगस्स)	१।३८
अहिणवपाउससि		६।५९
अहिलेन्ति सुर	(वसन्तस्स)	४।६६
आअण्णाअड्ढि		६।९४
आअण्णेइ अउअणा	(मइझस्स)	४।६५
आअम्बन्तकवोलं		२।९२
आअम्बलोअणाणं		५।७३
आअरपणामिओट्ठं	(वङ्कविआरस्स)	१।२२
आअस्स किं णु		२।८७
आउच्छणविच्छाअं		५।१००
आउच्छन्ति सिरेहिँ		७।८०
आक्खेवआइँ		३।४२
आणत्तं तेण तुमं		७।८५
आम असइ ह्म	(पालितस्स)	५।१७
आमजरो मे मन्दो	(कालस्स)	१।५१
आम बहला वणाली		६।७८
आरम्भन्तस्स धुअं	(वल्लहस्स)	१।४२
आरुहइ जुण्णअं		६।३४
आलोअन्त दिसाओ		६।४६
आलोअन्ति पुलिन्दा	(हँलिअस्स)	२।१६
आवण्णाइँ कुलाइं		५।६७
आसण्णविआहदिणे		५।७९
आसासेइ परिअणं	(अलंकारस्स)	३।८३
इअरो जणो ण	(वाहवराअस्स)	३।११
इअ सिरिहाल		७।१०१
ईसं जणेन्ति	(माहवसेणस्स)	४।२७
ईसामच्छररहिएहिँ		६।६
ईसालुओ पई	(र[illegible]केसरिस्स)	२।५९
उअअं लहिऊण		५।९०
उअ ओल्लिज्जइ		७।४०
उअगअचउत्थि		७।४४
उअ णिच्चल	([६]वोदिसस्स)	१।४
उअ पोम्मराअ		१।७५
उअरि दरदिट्ठ	(पवरसेणस्स)	१।६४
उअ संभमविक्खित्तं		५।६१
उअ सिन्धवपव्वअ		७।७९
उअह तरुकोडराओ		६।६२
उअह पडलन्तरो	([७]पालितस्स)	१।६३

१. 'मकरन्दस्य' वे. २. 'कलिराजस्य' वे. ३. 'मुग्धदीपस्य' वे. ४. 'शालिवाहनस्य' वे. ५. 'हालिकस्य' वे. ६. 'वोदितस्य' वे. ७. 'कालितस्य' वे.

उक्खिप्पइ	(हालस्स)	२।२०
उज्जागरअकसाइअ		५।८२
उज्जुअरए ण तूसइ		५।७६
उज्झसि पिआइ	(ईसाणस्स)	३।७५
उद्दन्तमहारम्भे	(मत्तगइन्दस्स)	४।८२
उण्हाइँ णीससन्तो	(अणङ्गस्स)	१।३३
उद्धच्छो पिअइ	(भाइअस्स)	२।६१
उप्पण्णत्थे कज्जे	(माणइन्दस्स)	३।१४
उप्पहपहाविहजणो		६।३५
उप्पाइअदव्वाणं	(पालितस्स)	३।४८
उप्पेक्खागअ	(विस[म]सेणस्स)	४।३९
उप्फुल्लिआइ	(वच्छस्स)	२।९६
उम्मूलेन्ति व	(विजयगइ[णो])	२।४६
उल्लावन्तेण ण होइ		६।३६
उल्लावो मा दिज्जउ		६।१४
उव्वहइ णवतण		६।७७
एएण च्चिअ	(कड्डिल्लस्स)	५।४
एक्कक्कमपरिरक्खण		७।१
एक्कक्कमसंदेसा	(......)	४।४२
एक्क च्चिअ रूअगुणं		६।९२
एक्कं पहरुव्विण्णं	([1]पहईए)	१।८६
एक्कल्लमओ दिट्ठाअ		७।१८
एक्केक्कभवइवेठण	(अरिकेसरिणो)	३।२०
एक्केण वि वडवी		७।७०
एक्को पह्नुअइ थणो	(हालस्स)	५।९
एक्को वि कालसारो	(कालसारस्स)	१।२५
एण्हि वारेइ जणो	(सिरिसुन्दरस्स)	७।९६
एत्ताइच्चिअ मोहं	(भोजअस्स)	५।१०
एत्थ चउत्थं विरमइ		४।१०१
एत्थ णिमज्जइ		७।६७
एत्थ मए रमिअव्वं	(गुणमन्दिअस्स)	४।५८
एद्दहमेत्तम्मि जए	(सिरिराअस्स ?)	४।३
एद्दहमेत्ते गामे		६।५३
एसो मामि जुवाणो	(मन्दसुअणस्स)	३।९४
एह इमीअ णिअच्छह		६।७९
एहइ सो वि पउत्थो	(सिरिधम्मअस्स)	१।१७
एहि त्ति वाहरन्तम्मि		६।३
एहिसि तुमं त्ति	(अल्लस्स)	४।८५
ओसरइ धुणइ साहं		६।३१
ओसहिअजणो	(मन्दरस्स)	४।४६
ओ हिअअ ओहि		५।३७
ओ हिअअ मडह	(महाएवस्स)	२।५
ओहिदिअहागमा	(पुण्णभोजअस्स)	३।६
कण्डन्तेण अकण्डं		७।६३
कण्डुज्जुआ	(कअलीहरस्स)	४।५२
कत्थ गअं रइबिम्बं		५।३५
कं तुङ्गथणु	(पालितस्स)	३।५६
कमलं मुअन्त		७।४१
कमलाअरा ण	(मिअङ्कस्स)	२।१०
करमरि कीस ण		६।२७
करिमरि अआल	(मअरन्दस्स)	१।९५
कुरुणाहो व्विअ		५।४३
कलहन्तरे वि	(हालस्स)	४।२१
कल्लं किर खर	([2]निप्पटस्स)	१।४६
कस्स करो बहु		६।७५
कस्स भरिसि त्ति	(सुरहिवच्छस्स)	४।८९
कहँ णाम तीअ	(सवरसत्तिस्स)?	३।६८
कहँ मे परिणइआले		६।६८
कहँ सा णिव्व	(पव्वअकुमारस्स)	३।७१
कहँ सा सोहग्गगुणं		५।५२
कहँ सो ण	(सङ्करस्य)	५।१३
कह तंपि तु इण	(सेहणाअस्स)	७।९७
कारिममाणन्दवडं		५।५७
किं किं दे	(गअसिंहस्स)	१।१५
किं ण भणिओ सि	(वहुराहस्स)	४।७०
किं दाव कआ	(रेवाए)	१।९०
किं भणह मं सहीओ		७।१७
किं रुअसि	(महिन्दस्स)	१।९
किं रुवसि किं अ		६।१६
कीरन्ती व्विअ	(सरलस्स)	३।७२

१. 'प्रहतायाः' वे. २. 'लम्पस्य' वे.

कीरमुहसच्छ (सूरणस्स) ४।८
कुसुममआ वि (हालस्स) ४।२६
के उव्वरिआ के ५।७४
केण मणे भग्ग (मिअङ्कस्स) २।११
केत्तिअमेत्तं होहिइ ६।८१
केलीअ वि रूसे (पावच्छीलस्स) २।९५
केसररअ ४।८७
कैअवरहिअं (रामस्स) २।२४
कोत्थ जअम्मि (विलासस्स) ४।६४
कोसम्बकिसल (गजस्स) १।१९
खणभङ्गुरेण पेम्मेण ५।२३
खणमेत्तं पि ण (हालस्स) २।८३
खन्धग्गिणा १।७७
खरपवणरअगल ६।८३
खरसिप्पिर (पसण्णस्स) ४।३०
खाणेण अ पाणेण ७।६२
खिण्णस्स उरे (अवन्तिवम्मस्स) ३।९९
खिप्पइ हारो ५।२९
खेमं कन्तो खेमं ५।९९
गअकलहकुम्भ (कइराअस्स) ३।५८
गअगण्डत्थल (गन्धराअस्स) २।२१
गअवहुवेहव्वअरो ७।३०
गज्ज महं चिअ ६।६६
गन्धं अग्घाअन्तअ ६।६५
गन्धेण अप्पणो (विअहस्स) ३।८१
गम्मिहिसि तस्स ७।७
गरुअछुहाउलि ४।८३
गहवइ गओ (विअड्ढइन्दस्स) ३।९७
गहवइणा (सच्चसामिणो) २।७२
गहवइसुओ (हालस्स) ४।५९
गामङ्गणणिअडि ६।५६
गामणिघरम्मि अत्ता ५।६९
गामणिणो सव्वासु ५।४९
गामतरुणीओ ६।४५
गामवडस्स (खण्डस्स) ३।९५
गिज्जन्ते मङ्गल ७।४२
गिम्हे दवग्गि (वेद्धावहीए?)[1] १।७०
गिरसोत्तो त्ति ६।५१
गेअच्छलेण (अहअस्स) ४।३४
गेह्णह पलोअह (हरितउस्स) २।१००
गेहं व वित्तरहिअं ७।९
गोत्तक्खलणं सोऊण ५।९६
गोलाअडट्ठिअं (अविअकणस्स)[2] २।७
गोलाणइए (णरवाहणस्स) २।७१
गोलाविसमो २।९३
घरिणिघणत्थण (दुव्विअड्ढस्स) ३।६१
घरिणीए (हालस्स) १।१३
घेत्तूण चुण्ण (कान्तफरस्स)? ४।१२
चक्खुपुडाहअवि ७।६६
चत्तरघरिणी (महिलस्स)[3] १।३६
चन्दमुहि (गग्गराअस्स) ३।५२
चन्दसरिसं (वाहवराअस्स) ३।१३
चलणोआसणि (भमरस्स) २।८
चावो सहावसरलं ५।२४
चिक्खिल्लखुत्त (चल्लोहस्स)[4] ४।२४
चित्ताणिअदइ (मण्डहिवस्स?)[5] १।६०
चिराडिं पि अ (पावच्छीलस्स) २।९१
चोराणँ कामुआणँ ७।९८
चोरा सभअसतण्हं ६।७६
चोरिअरअसद्धालुइ (बम्हअन्तस्स ५।१५
छज्जइ पहुस्स (सुन्दरस्स) ३।४३
छिज्जन्तेहिं (माणिक्कराअस्स) ४।४७
जइ कोत्तिओ ७।७२
जइ चिक्खल्ल (चुदुराअस्स?)[6] १।६७
जइ जूरइ जूरउ ७।८
जइ ण छिवसि ५।८१
जइ भमसि भमसु ५।४७
जइ लोकणिन्दिअं ५।८०

---

१. 'विनयायितस्य' वे. २. 'अनुरागस्य' वे. ३. 'अलिकस्य' वे. ४. 'मल्लोकस्य' वे. ५. 'मुग्धदीपस्य' वे. ६. 'धीरस्य' वे.

जइ सो ण वल्लहो	(सुसीलस्स)	४।४३
जइ होसि ण	(मुहराअस्स)	१।६५
जं जं आलिहइ		७।५६
जं जं करेसि जं जं	(कल्लणसीहस्स)	४।७८
जं जं ते ण सुहाअइ		७।१५
जं जं पिहुलं	(कुलउत्तस्स)	४।९
जं जं पुलएमि दिसं		६।३०
जं जं सो णिज्झा	([1]वसन्तअस्स)	१।७३
जं तणुआअइ सा		७।११
जन्तिअ गुलं		६।५४
जं तुज्झ सई	(अणुलच्छीए)	३।२८
जम्मन्तरे वि चलणं		५।४१
जस्स जहं विअ	(अद्धराअस्स)	३।३४
जह चिन्तेइ परि		७।२८
जह जह उव्वहइ	(……)	३।९२
जह जह जरा	(पोट्टिसस्स)	३।९३
जह जह वाएइ	(ससिप्पहाए)	४।४
जाएज्ज वणुद्देसे	(असमसाहस्स)	३।३०
जाओ सो वि	(चन्दस्स)	४।५१
जाणइ जाणावेउं	([2]गामउज्जस्स)	१।८८
जाणि वअणाणि		७।४९
जारमसाणसमुब्भव	(हालस्स)	५।८
जाव ण कोसविं		५।४४
जिविअं असासअं	(हालस्स)	३।४७
जीविअसेसाइ	(अवज्ञाङ्कस्स)	२।४९
जीहाइ कुणन्ति		६।४१
जुज्झचवेडामोडि		७।८४
जे जे गुणिणो		७।७१
जेण विणा	(रोहाएँ)	२।६३
जे णीलभमर		५।२२
जेत्तिअमेत्तं	(मुद्धसीलस्स)	१।७१
जेत्तिअमेत्ता	(पालितस्स)	४।९३
जे सँमुहागअ	(वाहवराअस्स)	३।१०
जो कह वि	([3]वेलाइचस्स)	२।४४
जो जस्स विहव	(वाहवराअस्स)	३।१२
जो तीए अहर	(दामोअरस्स)	२।६
जो वि ण आणइ		५।३८
जो सीसम्मि		४।७२
झञ्झावाउत्तिणिअघर	(जअसेणस्स)	२।७०
झञ्झावाउत्तणिए	(राअहत्थिणो)	४।१५
ठाणब्भट्ठा परि		७।५२
डज्झसि डज्झसु	(हालस्स)	५।१
ण अ दिट्ठिं णेइ		७।४५
णअणब्भन्तर	(हालस्स)	४।७१
णइऊरस	([4]पवणराअस्स)	१।४५
ण कुणन्तो व्विअ	(अद्धराअस्स)	१।२६
णक्खक्खुडिअं	(महाराअस्स)	४।३१
ण गुणेण	(समरिणसस्स)	४।१०
णच्चणसलाहणणि	([5]गुंवरस्स ?)	२।१४
ण छिवइ हत्थेण		६।३२
णन्दन्तु सुरअसुह	(हालस्स)	२।५६
ण मुअन्ति	(हालस्स)	२।४७
णलिणीसु भमसि		७।१९
णवकम्पिएण		७।९२
णवपल्लवं विसण्णा		६।८५
णवलअपहरं	([6]पंपणामस्स)	१।२८
णववहुपेम्म	(कण्णउत्तस्स)	२।२२
ण विणा सब्भावेण	(भोजअस्स)	३।८६
ण वि तह अइ गरुएण		५।८३
ण वि तह अणालवन्ती		६।६४
ण वि तह छेअ	(अणुलच्छीए)	३।७४
ण वि तह पढम	(भाणुसत्तिणो)	३।९
णँ वि तह विएस		१।७६
णासं व सा कवोले	(सामिअस्स)	१।९६
णाहं दूई ण	(असुलद्धीए)?	२।७८
णिअअणुमाण	(केलासस्स)	४।४५
णिअधणिअं		६।९२
णिअवक्खारोवि		५।४२

१. 'वसलकस्य' वे. २. 'ग्रामकूटस्य' वे. ३. 'वलईपितस्य' वे. ४. 'प्रवरराजस्य' वे.
५. 'वुरस्य (?)' वे. ६. 'प्राणामस्य' वे. ७. 'भोमविक्रमस्य' वे. ८. 'स्थिरसाहसस्य' वे.

णिक्कण्ड दुरारोहं ५।६८
णिक्कमाहिँ (पुण्डरीअस्स) २।६९
णिक्किव जाआ (हरिआलस्स) १।३०
णिद्दं लहन्ति कहिअं (देवएवस्स) ५।१८
णिद्दाभङ्गो (हालस्स) ४।७४
णिद्दालस (हालस्स) २।४८
णिप्पच्छिमाइं (सिरिवलस्स) २।४
णिप्पण्णसस्सरि ७।८९
णिव्वुत्तरआ (सद्दुणकलसस्स) २।५५
णिहुअणसिप्पं ६।८९
णीआइं अज्ज (धणंजअस्स) ४।२८
णीलपडपाउअङ्गी ६।२०
णीसासुक्कम्पिअ (रोलएवस्स) ४।६१
णूणं हिअअ (महाएवस्स) ४।३७
णूमेन्ति जे पहुत्तं (माधवीए) १।९१
णेउरकोडि (अणङ्गस्स) २।८८
णोहलिअमप्पणो (मअरन्दसेनस्स) १।६
तइआ कअग्घ (माअङ्गस्स) १।९२
तइ बोलन्ते (हालस्स) ३।२३
तइ सुहअ (मणोरहस्स) ४।३८
तडविणिहिअग्ग (हालस्स) ४।९१
तडसंठिअ (माणस्स) २।२
तणुएण वि (भाउलस्स) ४।६२
तं णमह जस्स (णिकलङ्कस्स) २।५१
तत्तो च्चिअ होन्ति ७।४८
तं मित्तं काअव्वं (पालितस्स) ३।१७
तम्मिरपसरिअहु ६।८८
तस्स अ सोहग्ग (मअरद्धअस्स) ३।३१
तस्स कहाकण्टइए ७।५९
तह तस्स माण (हालस्स) ५।३१
तह तेणवि सा ७।२५
तह परिमलिआ ७।३७
तह माणो (सालिअस्स) २।२९
तह सोण्हाइ (सुन्दअस्स) ३।५४
ता किं करेउ (बह्मआरिणो) ३।२१
ता मज्झिमो व्विअ (हालस्स) ३।२४
ता रुण्णं जा (वेरसत्तिस्स) २।४१
तालूरभमा (अवटङ्कस्स) १।३७
तावच्चिअ रइ (कुल्लोहस्स) १।५
तावमवणेइ (हरिउद्धस्स) ३।८८
ताविज्जन्ति (पवाराअस्स) १।७
तासुहअविलम्ब ७।२
तीअ मुहाहिं (हालस्स) २।७९
तुङ्गाणँ विसेस ५।२७
तुङ्गो च्चिअ (माउराअस्स) ३।८४
तुज्झङ्गराअ २।८९
तुज्झ वसइ (मुद्दस्स) १।४०
तुप्पाणणा (अलक्कस्स) ३।८९
तुह दंसणेण जणिओ ७।१०
तुह दंसणे सअह्णा ६।५
तुह मुहसारिच्छं (राहहत्थिणो) ३।७
तुह विरहुज्जागरओ ५।८७
तुह विरहे (अणङ्गस्स) १।३४
ते अ जुआणा ता ६।१७
तेण ण मरामि ४।७५
ते विरला सप्पु (ईन्दस्स) २।१३
ते वोलिआ (निरुवमस्स) ३।३२
थणजहणणिअ (सच्चसेणस्स) ३।३३
थोअं पि ण (सुरभिवंसस्स) १।४९
थोरंसुएहिँ रुण्णं ६।२८
दइअकरग्गहलुलिओ ६।४४
दक्खिण्णेण वि (आइवराहस्स) १।८५
दट्ठूण उण्णमन्ते ६।३८
दट्ठूण तरुणसुरअं ६।४७
दट्ठूण रुन्दतुण्ड (विग्गहस्स) ५।२
दट्ठूण हरिअदीहं ७।९३
दढरोस (अवन्तिवम्मस्स) ४।१९
दरफुडिअ (बम्हराअस्स) १।६२

१. 'शालिकस्य' वे. २. 'गजरेवस्य' वे. ३. 'कलङ्कस्य' वे. ४. 'त्रिलोकस्य' वे. ५. 'मुद्रस्य' वे. ६. 'सुरभिवत्सलस्य' वे.

दरवेविरोरुजुअलासु		७।१४
दिअरस्स	(हालस्स)	१।३५
दिअहं खुडक्किआ	(विच्छमस्स)	३।२६
दिअहे दिअहे		७।९१
दिट्ठा चूआ	(कौन्तक्खुरस्स)	१।९७
दिढमण्णु	(मोत्ताहलस्स)	१।७४
दिढमूलबन्ध	(अणुलच्छीए)	३।७६
दीसइ ण चूअ		६।४२
दीसन्तो णअणसुहो	(राअरसिअस्स)	५।२१
दीसन्तो दिट्ठिसुहो		७।५१
दीससि पिआणि		५।८९
दीहुण्हपउर		२।८५
दुक्खं देन्तो	(सिरिसत्तिअस्स)	१।१००
दुक्खेहिँ लम्भइ		४।५
दुग्गअकुटुम्ब	(सिरिधम्मअस्स)	१।१८
दुग्गअघरम्मि		५।७२
दुण्णिक्खेवअ	(साहिल्लस्स)	२।५४
दुम्मेन्ति देन्ति	(वसन्तवम्मस्स)	४।२५
दुस्सिक्खिअरअ		७।२७
दूइ तुमं विअ	(आहवसत्तिणो)	२।८१
दूरन्तरिए वि पिए		७।५८
देव्वम्मि पराहुत्ते	(अन्धस्स)	३।४५
देव्वाअत्तम्मि	(भीवएवस्स)	३।७९
दे सुअणु पसिअ		५।६६
दोअङ्गुलअकवाल		७।२०
धण्णा ता महि	(मलअसेहरस्स)	४।९७
धण्णा बहिरा		७।९५
धण्णा वसन्ति		७।३५
धरिओ धरिओ	(माणस्स)	२।१
धवलो जिअइ		७।३८
धवलो सि जइ		७।६५
धाराधुवन्तमुहा		६।६३
धावइ पुरओ पासेसु		५।५६
धावइ विअलिअ	(माऊराअस्स)	३।९१
धीरावलम्बिरीअ	(वाहवस्स)	४।६७
धुअइ व्व	(विसमराअस्स)	३।८०
धूलिमइलो वि		६।२६
पइपुरओ व्विअ	(मल्लसेणस्स)	३।३७
पउरजुवाणो	(हालस्स)	२।९७
पङ्कमइलेण छीरेक्क		६।६७
पच्चग्गप्फुल्ल		६।९०
पच्चूसमऊहावलि		७।४
पच्चूसागअ रञ्जित		७।५३
पञ्जरसारिं अत्ता ण		६।५२
पडिवक्ख	(उद्धवस्स)	३।६०
पढमं वामणविहिणा		५।२५
पढमणिलीणमहुर		५।९५
पणअकुविआणँ	(कुमारस्स)	१।२७
पत्तणिअम्बप्फंसा		६।५५
पत्तिअ ण पत्तिअन्ति	(पवरसेणस्स)	३।१६
पत्तो छणो ण	(कालइवस्स)	१।६८
पप्फुल्लघणकलम्बा		७।३६
परिओसवि	(जीअएवस्स)	४।४१
परिओससुन्दराइं		७।६८
परिमलणसुहा		५।२८
परिरद्धकणअ		४।९८
परिहूएण	(विक्कमराअस्स)	२।३४
पसिअ पिए	(कुविन्दस्स)	४।८४
पसुवइणो	(हालस्स)	१।१
पहरवणमग्ग	(अङ्गराअस्स)	१।३१
पहिअवहू विवरन्तर		६।४०
पहिउल्लूरण	(अहराअस्स)	२।६६
पाअडिअं सोहग्गं		५।६०
पाअडिअणेह	(मणिराअस्स)	२।९९
पाअपडणाणँ मुद्धे		५।६५
पाअपडिअं	(हालस्स)	४।९०
पाअपडिअस्स	(दुग्गसामिणो)	१।११
पाअपडिओ ण		५।३२

१. 'स्थिरसाहसस्य' वे. २. 'पउलिन्यस्य' वे. ३. 'कालाधिपस्य' वे. ४. 'सिरिराअस्स' वे.

पाणउडीअ वि (हालस्स) ३।२७
पाणिग्गहणे (अणुराअस्स) १।६९
पासासङ्की (भोजअस्स) ३।५
पिअदंसण (वसन्तसेणस्स) ४।२३
पिअसंभरण (बह्मआरिणो)[1] ३।२२
पिअविरहो (वंमुआरिणो) १।२४
पुच्छिज्जन्ती णं ७।४७
पिज्जइ कण्णञ्ज ७।७६
पुट्ठिं पुससु (पण्डिणो) ४।१३
पुणरुत्तकरप्फालण ६।४८
पिसुणेन्ति कामिणीणं ६।५८
पुसइ खणं धुवइ ५।३३
पुसउ मुहं ता ७।८१
पुसिआ अण्णा (कलसगन्धस्स) ४।२
पेच्छइ अलद्ध (विअड्ढइन्दस्स) ३।९६
पेच्छन्ति अणिमिस (सुरहिवच्छस्स) ४।८८
पेम्मस्स विरो (वंम्महस्स)[2] १।५३
पोट्टपडिएहिँ (कैअड्ढसीलस्स)[3] १।८३
पोट्टं भरन्ति (अलक्कस्स) ३।८५
फग्गुच्छण (सूरस्स) ४।६९
फलसंपत्तीअ (कुवलअस्स) ३।८२
फलहीवाहण (कहिलस्स) २।६५
फालेइ अच्छभल्लं (कालसीहस्स) २।९
फुट्टन्तेण वि (राअवग्गस्स) ३।४
फुरिए वामच्छि (सत्तिहत्थिस्स) २।३७
बलिणो बाआबन्धे (भोजअस्स) ५।६
बहलतमा (अहअस्स) ४।३५
बहुआइ णइ (अद्धराअस्स) ३।१८
बहुपुप्फभरोणा (माणस्स) २।३
बहुवल्लहस्स (अल[अ]स्स) १।७२
बहुविहविलासरसिए ५।७७
बहुसो वि (सुरहिवसेस्स) २।९८
बालअ तुमाइ दिण्णं (तुङ्गअस्स) ५।१९
बालअ तुमाहि (हालस्स) ३।१५
बालअ दे वच्च लहुं ६।८७
भग्गपिअसंगमं ५।९१
भञ्जन्तस्स वि (हालस्स) २।६७
भण को ण (महोहिअस्स) ४।१००
भण्डन्तीअ (अत्थस्स ?) ४।७९
भमइ पलित्तइ जूरइ ५।५४
भम धम्मिअ (......) २।७५
भरणमिअणील ७।६०
भरिउच्चरन्त (विसेसरसीहस्स) ४।७७
भरिमो से गहिआहर १।७८
भरिमो से सअण (उच्छेउस्स) ४।६८
भिच्छाअरो (ससिराअस्स) २।६२
भुञ्जसु जं साहीणं (त्तिलोअणस्स) ४।१६
भोइणि दिण्ण पहेण ७।३
मअणग्गिणो व्व ६।७२
मग्गं चिअ ७।६९
मज्झण्हपत्थिअस्स (मङ्गलकलसस्स) ४।९९
मज्झे पअणुअ ७।८२
मज्झो पिओ ६।५७
मण्णे आअण्णन्ता ७।४३
मण्णे आसाओ च्चिअ ६।९३
मन्दं पि ण आणइ ६।१००
मरगअसूई (पालि[illegible]) [illegible]।९४
मसिणं चङ्कम्मन्ती ५।६३
महमहइ मलअवाओ ५।९७
महिलाणं चिअ ६।८६
महिलासहस्स (हालस्स) २।८२
महिसक्खन्धवि ६।६०
महुमच्छिआइ ७।३४
महुमासमारुआ (सालिअस्स) २।२८
मा कुण पडिवक्ख (माअङ्गस्स) २।५२
मा जूर पिआ (अल्लस्स) ४।५४
माणदुमपरुस ४।४४
माणुम्मत्ताइ मए ६।२२
माणोसहं व (वाहवस्स) ३।७०
मामि सरसक्खराणँ ५।५०

---

1. 'ब्रह्मचारिणः' वे. 2. 'मन्मथस्य' वे. 3. 'कृतज्ञशीलस्य' वे.

मामि हिअअं (वोलएवस्स ?) ३।४६
मारेसि कं ण मुद्धे ६।४
मालइकुसुमाइँ ५।२६
मालारीए वेल्लहल ६।९८
मालारी ललिउ ६।९६
मा वच्च पुःफ (णन्दणस्स) ४।५५
मा वच्चह वीसम्भं ७।८६
मासपसूअं (कइराअस्स) ३।५९
मुद्धे अपत्तिअन्ती ७।७८
मुहपुण्डरीअछाआइ ७।२४
मुहपेच्छओ पई ५।९८
मुहमारुएण (पोट्टिसस्स) १।८९
मुहविज्झवि (वज्जएवस्स) ४।३३
मेहमहिसस्स ६।८४
रइकेलिहिअणि ५।५५
रइविरमलज्जिआओ ५।५९
रक्खेइ पुत्तअं ७।२१
रण्णाउ तणं (अवणाअरस्स) ३।८७
रत्थापइण्ण (हालस्स) २।४०
रन्धणकम्मणि (भीमसामिणो) १।१४
रमिऊण पअं (मकरन्दस्स) १।९८
रसिअजण (हालस्स) १।१०१
रसिअजण (हालस्स) २।१०१
रसिअजण (हालस्स) ३।१०१
रसिअजण ५।१०१
रसिअजण ६।१०१
रसिअ विअड्ढ (बह्मआरिणो) ५।५
राआविरुद्धं (बहुलस्स) ४।९६
रुन्दारविन्दमन्दिर ६।७४
रूअं अच्छीसु (बह्मगतिण्णो) २।३२
रूअं सिट्ठं चिअ ६।७३
रेहइ गलन्तकेस ५।४६
रेहन्ति कुमुअद[illegible] ६।६१
रोवन्ति व्व अर[illegible] ५।९४
लङ्कालआणँ (अणुराअस्स) ४।११
लज्जा चत्ता सीलं ६।२४
लहुअन्ति (गोविन्दसामिस्स) ३।५५
लुम्बीओ अङ्गण (वत्सस्स) ४।२२
लोओ जूरइ जूरउ ६।२९
वअणे वअणम्मि (असोअस्स) ४।५६
वइविवर (उद्धवस्स) ३।५७
वक्कं को पुलइ (मेहणाअस्स) २।६४
वङ्कच्छिपेच्छि (वप्पसामिणो) २।७४
वज्जपडणा (कण्णस्स) १।५४
वणदवमसि (हालस्स) २।१७
वण्णअघअलिप्पमुहिं ६।१९
वण्णक्कमरहिअस्स ७।१२
वण्णन्तीहिं तुह (सङ्करसत्तिस्स) ४।५०
वण्णवसिए विअत्थसि ५।७८
वन्दीअ णिहअ (हालस्स) २।१८
वसइ जहिं (कित्तिराअस्स) २।३५
वसणम्मि (प्रणालस्स) ४।८०
वाआइ किं भणिज्जउ ६।७१
वाउद्धअसिचअ ६।७
वाउलिआपरि ७।२६
वाउव्वेल्लिअसाउलि ७।५
वाएरिएण (पालितस्स) २।७६
वावारविसंवाअं ७।१६
वासारत्ते उण्णअ ५।३४
वाहरउ मं (कुसुमराअस्स) २।३१
वाहित्ता पडिवअणं (रोलएवस्स) ५।१६
वाहिव्व वेज्ज (वामएवस्स) ४।६३
वाहोहभरिअ ६।१९
विक्किणइ माह (हालस्स) ३।३८
विज्जाविज्जइ (अणुराअस्स) ५।७
विञ्झारुहणालावं ७।३१
विण्णाणगुण (सवरसत्तिस्स ?) ३।६७
विरहकरवत्त (साहिल्लस्स) २।५३
विरहाणलो (अमिअस्स) १।४३
विरहेण मन्दरेण ५।७९

१. 'पोटस्य' वे. २. 'सोमराजस्य' वे.

विरहे विसं व (हालस्स) ३।३५
विवरीअसुरअलेहल ७।५४
विसमट्ठिअपिक्के ६।९५
वीसत्थहसिअपरि ७।६
वेविरसिण्ण (अन्धस्स) ३।४४
वेसोसि जीअ ६।१०
वोडसुणओ विअण्णो ६।४९
वोलीणालक्खिअ (पवरराअस्स) ४।४०
संवाहणसुहरस ५।६४
संअणे चिन्ता २।३३
सकअग्गहरह ६।५०
संकेल्लिओ व्व (हालस्स) ७।९४
सच्चं कलहे कलहे ६।२१
सच्चं जाणइ (दुग्गसामिणो) १।१२
सच्चं भणामि बालअ (देवराअस्स) ३।१९
सच्चं भणामि मरणे (विअड्ढस्स) ३।३९
सच्चं साहसु ७।८८
संजीवणोसह (विहलस्स) ४।३६
संझागहिअजलञ्जलि ७।१००
संझाराओत्थइओ ६।६९
संझासमए जलपू ५।४८
सणिअं सणिअं ५।५८
सत्त सताइं (हालस्स) १।३
सन्तमसन्तं दुक्खं ६।१२
सब्भावणेह ([2]हालस्स) १।४१
सब्भावं पुच्छन्ती (सअस्स) ४।५७
समविसमणिव्वि ७।७३
समसोक्खदुक्ख (वड्ढरङ्कस्स ?) २।४२
सरए महद्धदाणं (विग्गहराअस्स) २।८६
सरए सरम्मि ७।२२
सरसा वि सूसइ ६।३३
सव्वत्थदिसा (कमलस्स) २।१५
सव्वस्सम्मि वि दड्ढे (मेच्छलस्स) ३।२९
सव्वाअरेण मग्गह ७।५०
सहइ सहइ त्ति (कुसुमाउहस्स) १।५६
सहिआहिँ (वलाइच्चस्स) २।४५
सहि ईरिसि- ([3]अलअस्स) १।१०
सहि दुम्मेन्ति (असुलद्धीए ?) २।७७
सहि साहसु सब्भा ५।५३
सा आम सुहअ ६।११
सा तुइ सहत्थ २।९४
सा तुज्झ वल्लहा ([4]उज्जअस्स) २।२६
सा तुह कएण (दुव्विअड्ढस्स) ३।६२
सामाइ गरुअ ५।३९
सामाइ सामलि (......) २।८०
सालोए व्विअ (हालस्स) २।३०
साहीणपिअअमो ६।१५
साहीणे वि पिअ ([5]रविराअस्स) १।३९
सिक्करिअमणिअ (नन्दिउद्धस्स) ४।९२
सिहिपिच्छलुलिअ ([6]वैसरस्स) १।५२
सिहिपेहुणावअंसा (पोटिसस्स) २।७३
सुअणपउरम्मि (देवराअस्स) २।३८
सुअणु वअणं (णीलस्स) ३।६९
सुअणो जं देस ([7]हरकुन्तस्स) १।९४
सुअणो ण कुप्पइ (अज्जुणस्स) ३।५०
सुक्खन्तबहलकद्दम ५।१४
सुन्दरजुआणजण ५।९२
सुप्पउ तइओ वि (सिरिसत्तिस्स) ५।१२
सुप्पं डड्ढं चणआ ६।५७
सुहउच्छअं जणं (सग्गवम्मस्स) १।५०
सुहपुच्छिआइ (त्तिलोअणस्स) ४।१७
सूइज्जइ हेम (अण्हअस्स) ४।२९
सूईवेहे मुसलं ६।१
सूरच्छलेण (विग्गहराअस्स) ४।३२
सेअच्छलेण (हालस्स) ३।७८
सेडल्लिअसव्वङ्गी ५।४०

१. 'ब्रह्मगतेः' वे. २. 'नाधायाः' वे. ३. 'अनीकस्य' वे. ४. 'उजयस्य' वे. ५. 'कविराजस्य' वे. ६. 'वेशारस्य' वे. ७. 'हारकुण्ठस्य' वे.

सो अत्थो जो (हालस्स) ३।५१
सो को वि गुणाइ ६।९१
सो णाम संभरिज्जइ (वप्पइराअस्स)[1] १।९५
सो तुज्झ कए (ईसाणस्स) १।८४
हंसेहिँ व तुह ५।७१
हत्थप्फंसेण जरग्गवी ५।६२
हत्थाहत्थि अहमह ६।८०
हत्थेसु अ (पालितस्स) ४।७
हरिहिइ पिअ (वड्ढरङ्कस्स) २।४३
हलफलह्वाण (कटिलस्स)[2] १।७९
हसिअं अदिट्ठदन्तं ६।२५
हसिअं सहत्थ (अणुलच्छीए) ३।६३
हसिएहिँ उवालम्भा ६।१३
हासाविओ जणो (अणुराअस्स) २।२३
हिअअं हिअए ५।८५
हिअअ च्चेअ (विक्किरस्स) ३।९०
हिअअट्ठिअम्स (सच्चसेणस्स) ३।९८
हिअअण्णएहिँ (मण्डहित्स)[3] १।६१
हिअअम्मि वससि ६।८
हिअआहिन्तो पसरन्ति ४।५१
हेमन्तिआसु (कन्तेसरस्स)[4] १।६६
हेलाकरग्गअड्ढिअ (पोट्टिसस्स) ५।३
होन्तपहिअस्स (सिहस्स) १।४७
होन्ती वि णिप्फल (कुन्दपुत्तस्स)[5] २।३६
ह्णाणहलिद्दा (मअरन्दस्स) १।८०

१. 'वप्रराजस्य' वे. २. 'कटिल्लस्य' वे. ३. 'मुग्धाधिपस्य' वे. ४. 'धीरस्य' वे. ५. 'उजयस' वे.

गाथासप्तशत्याः शोधनपत्रम् ।

शतकम्	गाथाः	शुद्धम्
१	१	गृहीतार्घ
१	२	पाउअ
१	१२	भणिष्यामि
१	१३	कम्मलग्ग
१	१८	कहँ णु मए
१	१९	कस्या अपि
१	४०	क्किसिआइँ ति तीए
१	५४	करमरिए सरिसवँदीणं
१	५६	सिरीसाइँ व जह से
२	१४	सरिसगो विआणँ
२	२८	महुमास
२	४६	अवहोरॅण
२	५३	तस्या
२	७०	वाउत्तिण्णिअ
२	८१	पण्डुरँ
३	३	तस्स
३	४८	णवरँ
३	७४	एआइँ वि हरन्ति

शतकम्	गाथाः	शुद्धम्
३	७६	अम्हेहिँ
३	८५	माउआ
४	१२	पिअअमं
४	१४	दोहिँ
५	१८	सुहिआओ
५	२४	गुणेऽपि
५	४१	हं
५	५५	उम्बिअं जअइ
५	५६	हे प्रहरस्व
५	६६	गलति
५	६८	मिष्काण्डदुरारोहां
६	२३	कुविअं अ
६	२४	सीलं अ
६	९४	वलिउं
७	१७	एष
७	६३	मज्झम्मि

२०७ पृष्ठे टिप्पणे 'वड्ढिआआमो' छायायां 'वर्धितायामो' इति ।

सातवाहनः ।

दीपकर्णिसूनुः सातवाहनो नाम कश्चन विद्वान्महीपतिः प्रतिष्ठानपुरे बभूव, यत्सभां बृहत्कथाप्रणेतृगुणाढ्य–कालापव्याकरणकर्तृशर्ववर्मप्रभृतयो भूयांसो विद्वांसो मण्डयांचक्रुरिति कथासरित्सागरषष्ठतरङ्गस्थितकथातः प्रतीयते. 'सोऽहं दरिद्रो वित्तार्थी प्रयातो दक्षिणापथम् । प्राप्तः पुरं प्रतिष्ठानं नरसिंहस्य भूपतेः ॥' (३८।१०८) इत्यादिकथासरित्सागरस्थश्लोकेभ्य एव दक्षिणापथे [1]प्रतिष्ठानपुरमस्तीत्यप्यवगम्यते. तच्चाधुना 'पैठण'नाम्ना प्रसिद्धमस्ति. 'कर्तर्या कुन्तलः शातकर्णिः शातवाहनो महादेवीं मलयवतीं [जघान]' इति वात्स्यायनप्रणीतकामसूत्रस्य द्वादशाध्यायोपान्ते समुपलभ्यते. डॉक्टरपीटर्सनेन बुन्दीनगराधीशपुस्तकालयादानीते गाथासप्तशतीपुस्तके [2]'राएण विरइआए कुन्तलजणवअइणेण हालेण । सत्तसई अ समत्तं सत्तममज्झासअं एअम् ॥ इति सप्तमं शतकम् । इति श्रीमत्[3]कुन्तलजनपदेश्वर–प्रतिष्ठानपत्तनाधीश–शतकर्णोपनामक–द्वीपि(दीप)कर्णात्मज–मलयवतीप्राणप्रिय–कालापप्रवर्तकशर्ववर्मधीसख–मलयवत्युपदेशपण्डितीभूत–त्यक्तभाषात्रयस्वीकृतपैशाचिकपण्डितराजगुणाढ्यनिर्मितभस्मीभवद्बृहत्कथावशिष्टसप्तमांशावलोकनप्राकृतादिवाक्पञ्चक(?)प्रीत–कविवत्सल–हालाद्युपनामक–श्रीसातवाहननरेन्द्रनिर्मिता विविधान्योक्तिमयप्राकृतगीर्गुम्फिता शुचिरसप्रधाना काव्योत्तमा सप्तशत्यवसानमगात् ॥' एवं समाप्तिश्च वर्तते. एतद्विलोकनेन वात्स्यायनस्मृतः कथासरित्सागरवर्णितश्च [4]सातवाहन एक एव. तेनैवेयं गाथासप्तशती प्राचीनग्रन्थेभ्यः संकलिता. स च खिस्ताब्दस्य प्रथमशतक आसीदित्याधुनिकानां विद्वद्वराणां निश्चयः. युक्तं चैतत्. यतः शकप्रवर्तकः शालिवाहन एव सातवाहन इति निर्वि-

---

१. राजशेखरसूरिप्रणीते प्रबन्धकोषे सातवाहनप्रबन्धे 'अधुना तु दक्षिणदेशस्थितं प्रतिष्ठानपुरं क्षुल्लकग्रामतुल्यं वर्तते ।' इत्यस्ति. २. डॉक्टरपीटर्सनस्य तृतीये रिपोर्टाख्यपुस्तके ३४९ पृष्ठे द्रष्टव्यम्. ३. 'कामगिरिं समारभ्य द्वारकान्तं महेश्वरि । श्रीकुन्तलाभिधो देशो हूणदेशं शृणु प्रिये ॥' इति शक्तिसंगमतन्त्रम्. तस्मिन्समये च गुर्जरदेशेऽपि सातवाहनस्यैव प्रभुत्वमासीत्, यतस्तेन संतुष्टेन स्वसचिवाय शर्ववर्मणे भरुकच्छ(भरोच)देशप्रभुत्वं दत्तमिति 'राजार्हरत्ननिचयैरथ शर्ववर्मा तेनार्चितो गुरुरिति प्रणतेन राज्ञा । स्वामी कृतश्च विषये भरुकच्छनाम्नि कूलोपकण्ठविनिवेशिनि नर्मदायाः ॥' अस्मात्कथासरित्सागरषष्ठतरङ्गसमाप्तिस्थश्लोकाज्ज्ञायते. ४. अनन्तराज-कलशदेव-हर्षदेवादयः कश्मीरमहीपाला अपि सातवाहनकुलोत्पन्ना आसन्निति कल्हणराजतरङ्गिणीतः कथासरित्सागरसमाप्तिस्थितप्रशस्तितश्च प्रतीयते. सोऽपि सातवाहनः कदाचिदयमेव स्यात्.

वादेव प्रथमशतके तस्य स्थितिः. अयं गाथासंग्रहकर्ता सातवाहनोऽन्यैः प्रत्नकविभिरप्यभिष्टुतः. यथा—'अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः । विशुद्धजातिभिः कोषं रत्नैरिव सुभाषितैः ॥' इति हर्षचरितारम्भे बाणः. कोषश्चायमेव गाथासंग्रहरूपो बाणस्य विवक्षितः. 'जगत्यां ग्रथिता गाथा सातवाहनभूभुजा । व्यधुर्धृतेस्तु विस्तारमहो चित्रपरम्परा ॥' अयं श्लोकः केषुचित्सूक्तिमुक्तावलीपुस्तकेषु राजशेखरनाम्ना समुद्धृतो दृश्यते. 'सच्चं भण गोदावरि पुव्वसमुद्देण साहियासन्ती । सालाहणकुलसरिसं जइ ते कूले कुलं अत्थि ॥ उत्तरओ हिमवन्तो दाहिणओ सालवाहणो राआ । समभारभरक्कन्ता तेण न पल्लत्थए पुहवी ॥' एतद्गाथाद्वयं राजशेखरसूरिप्रणीते प्रबन्धकोषे सातवाहनप्रबन्धे समुपलभ्यते.

शतानन्दसूनुमहाकविश्रीमदभिनन्दप्रणीतरामचरिताख्यमहाकाव्यस्य सप्तमसर्गान्ते पञ्चदशसर्गान्ते च 'नमः श्रीहारवर्षाय येन हालादनन्तरम् । स्वकोषः कविकोषाणामाविर्भावाय संभृतः ॥' अयं श्लोकः, द्वात्रिंशत्सर्गसमाप्तौ च 'हालेनोत्तमपूजया कविवृषः श्रीपालितो लालितः ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना । श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलं सद्यः सत्क्रिययाभिनन्दमपि च श्रीहारवर्षोऽग्रहीत् ॥' अयं श्लोकः समुपलभ्यते. एतेन श्रीपालितकविनैव धनलिप्सया स्वप्रभोर्हालस्य नाम्नायं गाथासप्तशतकग्रन्थः संगृहीतः स्यादित्यप्यनुमीयते. सातवाहनस्यैव हालः, शालः, सालवाहनः, एते पर्यायाः सन्तीति हैमकोषादिषु सुव्यक्तमेव.

---

१. प्रबन्धकोषे तु 'महावीरस्वामिनि मोक्षं गते ४७० वर्षानन्तरं विक्रमादित्यः । तत्समकालीन एवायं सातवाहनः । कालिकाचार्यसमकालीनोऽपि कश्चन सातवाहनः, सोऽस्मादर्वाचीनः ।' इत्यस्ति. २. 'शालो हाले मत्स्यभेदे' इति, 'हालः सातवाहनपार्थिवे' इति च हैमानेकार्थः. "शलति शालः । श्यति वा । 'श्यामाश्या—' इति लः । हालः सातवाहननृपः । तत्र यथा—'जज्ञे शालमहीपालः प्रतिष्ठानपुरे पुरा ।" इति, "यथा—'दिवं गते हालवसुंधराधिपे ।" इति च तट्टीका अनेकार्थकैरवाकरकौमुदी. 'हालः स्यात्सातवाहनः' इति हैमनाममाला. 'हलत्यरातिहृदयं हालः । ज्वलादित्वात् णः । सातं दत्तसुखं वाहनमस्य सातवाहनः । सालवाहनोऽपि ।' इति तट्टीका अभिधानचिन्तामणिः. 'सालाहणम्मि हालो' इति देशीनाममाला. 'हालो सातवाहनः' इति तट्टीका. 'शालो हालनृपेऽपि च'· इति त्रिकाण्डशेषानेकार्थः. कथासरित्सागरे तु 'सातेन यस्माद्रूढोऽभूत्तस्मात्तं सातवाहनम् । नाम्ना चकार कालेन राज्ये चैनं न्यवेशयत् ॥' इति सातवाहनपदस्य निरुक्तिरुक्तास्ति. सातो नाम कश्चन यक्षः कुबेरशापेन सिंहतां प्राप्तः. तेनायं स्वपृष्ठेऽधिरोपित इति कथापि तत्रैवास्ति. वात्स्यायनीयकामसूत्रे तु 'शातवाहन' इति तालव्यादिः समुपलभ्यते. वायु-मात्स्य-विष्णु-पुराणेषु भागवते च हालमहीपतेर्नाम समुपलभ्यत इति विद्वद्वरभाण्डारकरोपाह्व-रामकृष्णशर्मभिः प्रणीते दक्षिणप्राचीनेतिहासनाम्नि पुस्तके २५ पृष्ठे विलोकनीयम्. शातकर्णेः सातवाहनस्य विस्तरेण वर्णनं च तत एवावधार्यम्.

संग्रहरूपेऽस्मिन्ग्रन्थे काश्चन गाथा हालप्रणीता अपि सन्ति. यतः क्वचित्पुस्तके चतुर्थगाथामारभ्य द्वादशगाथापर्यन्तं प्रतिगाथाग्रे तत्तद्गाथाकर्तॄणां 'हालस्स (हालस्य), वोडिसस्स, चुल्लोहस्स, मअरन्दसेणस्स (मकरन्दसेनस्य), अमरराअस्स (अमरराजस्य), कुमारिलस्स (कुमारिलस्य), सिरिराअस्स (श्रीराजस्य), भीमस्सामिणो (भीमस्वामिनः), हालस्स, एतानि षष्ठयन्तानि नामानि समुपलभ्यन्ते. अग्रे च लेखकप्रमादेन गलितानीति भाति. एतद्ग्रन्थान्तर्गता गाथा ध्वन्यालोके, तल्लोचने, सरस्वतीकण्ठाभरणे, काव्यप्रकाशे चोदाहृताः सन्ति. कुलबालदेवनिर्मिता[1] गङ्गाधरभट्टनिर्मिता चास्य टीका समुपलभ्यते, तत्र गङ्गाधरभट्टनिर्मितैव समीचीना. टीकाकर्त्रोर्देशकालौ चानिश्चिताविव.

जर्मनीदेशे टीकारहितोऽयं ग्रन्थो रोमन्लिप्या वेबरपण्डितेन मुद्रितः. स च तद्देशीयानामेवोपकारक इति गङ्गाधरभट्टप्रणीतटीकासमेतोऽस्माभिर्मुद्रयितुमारब्धः. भविष्यति चायमतिप्रत्नो मनोहरश्च ग्रन्थो रसिकानां हृदयावर्जक इति दृढमाशास्महे.

अस्मन्मुद्रणाधारभूतपुस्तकानि त्वेतानि—

१. प्रथमं जयपुरराजकीयसंस्कृतपाठशालायां न्यायशास्त्राध्यापकानां ओझोपनामकश्रीजीवनाथशर्मणां गङ्गाधरभट्टटीकासमेतं प्रायः शुद्धं 'नेत्ररामाङ्कभूशाके (१६३२)' लिखितं क-संज्ञकम्.

२. द्वितीयमप्येतादृशमेव अलवरमहाराजाश्रितश्रीभवानन्दोदयानन्दरामचन्द्रपण्डितानां नवीनं नातिशुद्धं च ख-चिह्नितम्.

३. तृतीयं कुलबालदेवप्रणीतटीकासमेतमस्मदीयं नात्यशुद्धं ग-चिह्नितम्. तच्च डॉक्टर्पीटर्सनेन कोटानगरादानीतस्य पुस्तकस्य प्रतिरूपकम्.

४. चतुर्थं जयपुरराजगुरुपर्वणीकरोपाह्वनारायणभट्टानां केवलं संस्कृतच्छायामात्रं प्रायः शुद्धं नातिनवीनं च घ-चिह्नितम्.

एतत्पुस्तकाधारेणात्रास्माभिः शुद्धान्येव पाठान्तराणि गृहीतानि सन्ति.

---

१. पुस्तकान्तरे 'कुलनाथदेव' इत्यपि नाम दृष्टमस्ति.

[अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति ।
कामस्य तत्त्वचिन्तां कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्ते ॥]

अमिअमिति । शृङ्गाररसनिर्भरत्वेनाह्लादकत्वादमृतमिवामृतं प्राकृतकाव्यमवसरे पठितुं परपठितं च श्रोतुं बोद्धुं ये न जानन्ति, अथ च कामस्य तत्त्वचिन्तां तन्त्रवार्तां वा कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्त इत्यर्थः । कामशास्त्रव्युत्पत्तिविधुरं प्रति विदग्धनायिकोक्तिर्वा ॥

प्रेक्षावत्प्रवृत्तये स्वग्रन्थस्य संक्षिप्ततां साररूपतां चाह—

सत्त सताइं कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि ।
हालेण विरइआइं सालंकाराणँ गाहाणम् ॥ ३ ॥

[सप्त शतानि कविवत्सलेन कोटेर्मध्ये[1] ।
हालेन[2] विरचितानि सालंकाराणां गाथानाम् ॥]

सत्तेति । मज्झआरो मध्यः । कविगाथासंग्रहेण तत्कीर्तिस्थापनात्कविवत्सलेन हालेन शालिवाहनेन सालंकाराणां गाथानां कोटेर्मध्ये सप्त शतानि विरचितानि । संगृहीतानीत्यर्थः । गाथालक्षणं तु—'पढमं बारह मत्ता बीए अट्ठारएहिँ संजुत्ता । जह पढमं तह तीअं दहपञ्चविहूसिआ गाहा ॥' इति पिङ्गलोक्तं बोध्यम् ॥

'[3]कल्लोलिनीकाननकंदरादौ दुःखाश्रये चार्पितचित्तवृत्तिः । मृदुक्रमारम्भमभिन्नधैर्यः श्लथोऽपि दीर्घं रमते रतेषु ॥' इत्यादि कामशास्त्राद्दीर्घरमणार्थं नायकस्यान्यचित्ततां कुर्वती काचिदाह—

उअ णिच्चलणिप्पन्दा भिसिणीपत्तम्मि रेहइ बलाआ ।
णिम्मलमरगअभाअणपरिट्ठिदा[4] सङ्खसुत्ति व्व ॥ ४ ॥

वि तुरिअपढिओ दोतिण्णि वि एक्क जाणेहु ॥' इति. 'यदि दीर्घमपि वर्णं लघुकृत्वा जिह्वा पठति तदा सोऽपि वर्णो लघुरेव भवति । द्वौ वर्णौ त्रयो वा वर्णास्त्वरितपठितास्तानेक एव वर्ण इति जानीत ।' इत्येतट्टीका. एवं 'इं' 'हिं' इति वर्णद्वयम्, 'ए' 'ऊ' इति वर्णद्वयं शुद्धम्, जवर्ण(अन्यवर्ण)मिलितं वा विकल्पेन लघु भवति, तथा रकारयुक्ते हकारयुक्ते वा व्यञ्जने परे पूर्वाक्षरं विकल्पेन लघु भवति, इत्यादि नियमाः सोदाहरणाः प्राकृतपिङ्गले द्रष्टव्याः. अस्माभिरप्यत्र यस्य गुर्वक्षरस्य लघ्वक्षरवदुच्चारणं भवति तदुपरि ˘ एतादृशमर्धचन्द्राकारं चिह्नं स्थापितमस्ति. १. 'कोट्यामध्ये' इति घ-पुस्तके, 'कोटिमध्यात्' इति ग-पुस्तके पाठः. २. 'शालवाहनेन' इति, 'शालिवाहनेन' इति च ग-घ-पुस्तकयोः पाठौ. ३. अयं श्लोकः कुक्कोकप्रणीते रतिरहस्ये (५।३) वर्तते. ४. 'परिट्ठिआ' इति ख-ग-पाठः.

[पश्य निश्चलनिःस्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका ।
निर्मलमरकतभाजनपरिस्थिता शङ्खशुक्तिरिव ॥]

उअ णिच्चलेति । निश्चलोऽचलस्तद्वन्निःस्पन्दा वेगविधारणप्रयत्नवशात् । निश्चलेति पुरुषसंबोधनं वा । शङ्खघटिता शुक्तिः शङ्खशुक्तिः । तथा च यदि वेगविधारणपरोऽसि तदैनां बलाकां पश्यन्नन्यमनस्कतया चिरं रमस्वेति भावः । यद्वा निःस्पन्दत्वेनाश्वस्तत्वम्, तेन च जनरहितत्वम्, तेन च संकेतस्थानमिति कयाचित्कंचित्प्रति व्यज्यते । अथवा मिथ्या वदसि । न त्वमत्रागतोऽभूरिति व्यज्यते ॥

विपरीतरतप्रसङ्गे सदर्पां कांचिदुद्दिश्य कश्चिदाह—

[1]तावच्चिअ रइसमए महिलाणं विब्भमा विराअन्ति ।
[2]जाव ण कुवलअ[3]दलसेच्छआइँ [4]मउलेन्ति णअणाइं ॥ ५ ॥

[तावदेव रतिसमये महिलानां विभ्रमा विराजन्ते ।
यावन्न कुवलयदल[5]सच्छायानि [6]मुकुलीभवन्ति नयनानि ॥]

तावेति । यद्वा सुरतावसानोपचाराद्यनभिज्ञतया रतान्तेऽपि कटाक्षभुजप्रक्षेपादिविभ्रमं कुर्वन्तीं नायिकां प्रति सख्याः शिक्षोक्तिरियम् । रतिसमये स्त्रीणां विभ्रमास्तावदेव विराजन्ते पुरुषाणां हृदयहारिणो भवन्ति यावत्पुरुषाणां नयनानि रतिप्राप्त्या मुकुलितानि न भवन्ति । अतस्तथाविधं नायकमुपलभ्याप्राप्तरतिसुखयापि प्राप्तरतिसुखयेव त्यक्तविभ्रमया त्वया भवितव्यमिति ॥

स्वक्रीडोपवनरोपितस्य पुष्पफलरहितस्य कुरबकतरोर्दोहदमन्वेषयन्तं नायकं प्रति नायिकायाः सखी वदति—

णो[7]हलिअमप्पणो किं ण मग्गसे मग्गसे कुरवअस्स ।
[8]एअं तुह सुहग हसइ वलिआणणपङ्कअं जाआ ॥ ६ ॥

[दो[9]हदमात्मनः किं न [10]मृगयसे मृगयसे कुरबकस्य ।
[11]एवं तव सुभग हसति वलिताननपङ्कजं जाया ॥]

णोहलिअमिति । यद्वा णोहलिअं नवफलोद्गममित्यर्थः । मदालिङ्गनेन कुरबकस्य फलोद्गमं प्रार्थयसे आत्मनः पुत्ररूपं फलं किमिति न प्रार्थयसे । अहो ते जाड्यमित्यभिप्रायः ॥

---

१. 'तावब्बिअ' इति क-पाठः २. 'जावण्ण' इति ग-पाठः. ३. 'दलसच्छआइं' इति ग-पाठः. ४. 'मउलन्ति' इति क-पाठः. ५. 'सदृशानि' इति ग-घ-पाठः. ६. 'मुकुलायन्ते' इति, 'मुकुलन्ति' इति ग-घ-पाठौ. ७. 'दोहलिअं' इति ग-पाठः. ८. 'एवं खु तुह' इति छन्दोभङ्गयुक्तः क-ख-पाठः. ९.'नवदोहदमात्मनः' इति घ-पाठः. १०. 'मार्गसे मार्गसे' इति ग-पाठः. ११. 'एवं खलु सुभग त्वां' इति क-ख-घ-पाठः; 'इयं त्वां सुभग' इति ग-पाठः.

वसन्तसमये गमनोद्यतं नायकं प्रति कान्तायाः सखी गमनाक्षेपार्थमाह—

तावि[ज्जन्ति [1]असोएहिँ लडहवणिआओ˘ दइहविरहम्मि ।
किं सहइ को वि कस्स वि पाअपहारं पहुप्पन्तो ॥ ७ ॥

[ताप्यन्ते अशोकैर्वि[2]दग्धवनिता दयिताविरहे ।
किं सहते कोऽपि कस्यापि पादप्रहारं [3]प्रभवन् ॥]

तावि[ज्जन्तीति । अशोकैरननुभूतशोकत्वात्परपीडानिर्दयैः । अन्योऽपि न सहते किं पुनरशोकः । प्रभवन्नित्यवसरप्राप्त्या समर्थो भवन् । कान्तसंनिधौ तु सामर्थ्याभावान्न ताप्यन्त इत्याशयः । तथा च वरस्त्रीचरणताडनरूपं दोहदं त्वयैव कारितेयं मत्सखी त्वद्विरहे लब्धावसरैः सानुशयैरशोकैस्ताप्यमाना जीवितमेव जह्यादिति भावः । प्रोषितभर्तृकायाः कान्तं प्रति तत्सख्या लेखगाथेयमिति कश्चित् ॥

कस्याश्चित्केनचित्कामुकेन तिलवाटिका संकेतस्थानमासीत् । ततः पक्केषु तिलेषु संकेतस्थानान्तरं जारं प्रति श्रावयन्ती श्वश्रूं प्रत्याश्चर्यकथनव्याजेनाह—

अत्ता तह रमणिज्जं अह्मं [4]गामस्स मण्डणीहूअम् ।
[5]लूअतिलवाडिसरिच्छं सिसिरेण कअं भिसिणिसण्डम् ॥ ८ ॥

[[6]श्वश्रु तथा रमणीयमस्माकं ग्रामस्य मण्डनीभूतम् ।
लूनतिलवाटीसदृशं शिशिरेण कृतं बिसिनीषण्डम् ॥]

अत्तेति । हिमदग्धपत्रतया दण्डमात्रशेषत्वाल्लूनतिलवाटीसदृशम् । तथा च पूर्वं पत्राद्याहरणार्थं जनानां तत्र गतागतमासीत्, तदपीदानीं नास्तीति विजनत्वं तस्य देशस्य सूचितम् । 'तिलक्षेत्रपद्मसरःप्रभृतिसंकेतस्थानान्तराभावाद्गृहमेव संकेतस्थानमित्यर्थः' इति कश्चित् ॥

कस्याश्चित्केनचित्समं शालिक्षेत्रं संकेतस्थानमासीत् । ततः शालिपाके तदपगमं दृष्ट्वा रुदन्तीं तामुद्दिश्य संकेतस्थानान्तरं सूचयन्ती सखी आह—

किं रुअसि ओणअमुही धवलाअन्तेसु सालिछेत्तेसु ।
हरिआलमण्डिअमुही णडि व्व सणवाडिआ जाआ ॥ ९ ॥

[किं रोदिष्यवनतमुखी धवलायमानेषु शालिक्षेत्रेषु ।
हरितालमण्डितमुखी नटीव शणवाटिका जाता ॥]

किमिति । हरितालेन धातुविशेषेण मण्डितमुखी नटीव । शणवाटिकापक्षे—पीतकुसु-

---

१. 'असो इहिं' इति ग-पाठः. २. 'मनोहरस्त्रियः' इति ग-पाठः; 'ललितवनिता' इति घ-पाठः. ३. 'पुष्पितः' इति ग-पाठः. ४. 'गाअस्स' इति ख-पाठः. ५. 'लूअतिलवाडिसरिसं' इति ख-पाठः. ६. 'हे मातस्तथा' इति ग-पाठः.

मस्तबकनिकरनिबिडशिखरशणतरुनिवहनिरन्तरतया हरितालमण्डितमुखीवेत्युपमा। अथ च हरीणां मर्कटानां जालेन मण्डितं मुखं प्रवेशमार्गो यस्या इति निर्जनता व्यज्यते। अथवा पाकाभिमुखेषु शालिक्षेत्रेषु हर्षस्थानेष्वपि रुदितलक्षितशालिक्षेत्राभिसारा कापि कयापि परिहासशीलया एवमुपहस्यते ॥

कलहान्तरितां नायिकां कान्तानुवृत्त्यभिमुखीं कर्तुं सखी आह—

सहि ईरिसिव्विअ गई मा रुव्वसु तंसवलिअमुहअन्दम्[१] ।
एआणँ बालवालुङ्कितन्तुकुडिलाणँ पेम्माणम् ॥ १० ॥

[सखि ईदृश्येव गतिर्मा रोदीस्तिर्यग्वलितमुखचन्द्रम् ।
एतेषां बालकर्कटीतन्तुकुटिलानां प्रेम्णाम् ॥]

सहीति । ईदृश्येवेति संनिहितमेवानुवर्तन्ते । वेष्टितमेव वेष्ट्यन्ति । मनागाकृष्टथापि त्रुट्यन्ति । तद्यावदन्यत्र दृढानुबन्धो न भवति तावदेव मानं विहाय कान्तमनुवर्तस्वेति सख्यामुपदेशः । तत्कान्ते च विरहविधुरेयं मानिनी तदेनामनुनयस्वेति व्यङ्ग्योऽर्थः ॥

गृहीतमानायाः कस्याश्चिदनुनयार्थे चरणपतितस्य पत्युः पृष्ठमारूढं पुत्रं दृष्ट्वा बन्धविशेषस्मरणात्तस्या हास्योद्गमो जात इति काचित्सखीमाह । यद्वा कृतकलहयोर्दम्पत्यो रात्रिवृत्तान्तमनुसंधायागता सपत्नी सपत्न्या पृष्टा तामाह—

पाअपडिअस्स पइणो पुट्ठिं पुत्ते समारुहत्तम्मि ।
दढमण्णुदुण्णिआएँ[२] वि हासो घरिणीएँ णेक्कन्तो ॥ ११ ॥

[पादपतितस्य पत्युः पृष्ठं पुत्रे समारुहति[३] ।
दृढमन्युदूनाया[४] अपि हासो गृहिण्या निष्क्रान्तः ॥]

पाएति । पत्युः स्वामिनः । न तु वल्लभस्येत्यर्थः । पुत्र समारुहतीत्यनेन पुत्रवत्तया गलितयौवनायामप्यनुरक्त इति व्यज्यते । गृहिण्या गृहस्वामिन्याः । अस्मदादीनामौदासीन्यादिति भावः । दृढमन्युदूनाया इत्यनेन रोषोपशमाभावप्रतिपादनेन स्वाधीनभर्तृकायाः सौभाग्यगर्वात्पतिविषयेऽनादरः, पत्युश्च तादृश्यामपि स्नेहातिशयः प्रकटितः ॥

प्रियविश्लेषोपतप्तया कयाचित्प्रेषिता निसृष्टार्था दूती नायकमुत्कर्षयन्ती भङ्ग्या स्वसखीमरणं सूचयन्ती आह—

सच्चं[५] जाणइ दट्ठुं सरिसम्मि जणम्मि जुज्जए राओ[६] ।
मरउ ण तुमं भणिस्सं मरणं वि सलाहणिज्जं से ॥ १२ ॥

---

१. 'तिरिअवलिअ–' इति ग-पाठः. २. 'दूणिआए' इति ख-पाठः; 'दुम्मिआइ' इति ग-पाठः. ३. 'समारुहमाणे' इति ग-पाठः. ४. 'दृढमन्युदुर्मनस्कायाः' इति ग-पाठः. ५. ख-ग-पुस्तकयोरस्या अग्रिमायाश्च गाथाया व्यत्ययोऽस्ति. ६. 'राअ' इति ख-ग-पाठः.

[सत्यं जानाति द्रष्टुं सदृशे जने युज्यते रागः ।
म्रियतां न त्वां भणिष्यामि मरणमपि श्लाघनीयं तस्याः ॥]

सच्चमिति । यतोऽनन्यरूपश्लाघिनी त्वद्रूपमेव बहु मन्यत इत्याशयः । सदृशे जने युज्यते राग इत्यनेन रूपाभिजनादिभिरनुरूपे त्वयि तस्याः समागमौत्सुक्यं युक्तमेवेति नायिकायाः स्तुत्यनुरागाभ्यां नायकप्रोत्साहनम् । म्रियतामित्यनेन नायकस्यानभ्युगमे स्त्रीवधपातकम्, आत्मनश्च प्रार्थनाभङ्गभीरुत्वं दर्शितम् । मरणमपीत्यादिना चानुरूपानुष्ठानात्वद्गतचित्ताया मरणे जन्मान्तरे त्वत्प्राप्तिसंभवो व्यज्यते ॥

वैरूप्यादिमालिन्यशङ्कया गृहकृत्यपराङ्मुखीं सखीं प्रबोधयितुं काचिदाह—

घरिणीएँ महाणसकम्मलग्गमसिमैलिइएण हत्थेण ।
छित्तं मुहं हसिज्जइ चन्दावत्थं गअं पइणा ॥ १३ ॥

[गृहिण्या महानसकर्मलग्नमषीमलिनितेन हस्तेन ।
स्पृष्टं मुखं हस्यते चन्द्रावस्थां गतं पत्या ॥]

घरीति । यस्य यदुचितं कर्म तच्छीलयतो वैरूप्यमप्यलंकारायैव भवति । यतो लग्नमषीकालिमापि मुखं पत्या सपरिहासं चन्द्रेणोपमीयते । अतः कुलस्त्रीणां गृहकृत्यपराङ्मुखत्वमनुचितमिति भावः ॥

फूत्कारमारुतेनाप्रज्वलत्यग्नौ क्रुध्यन्तीं कांचित्स्वाभिलाषं प्रकाशयन्नाह—

रन्धणकम्मणिउणिए मा जूरसु रत्तपाडलसुअन्धम् ।
मुहमारुअं पिअन्तो धूमाइ सिही ण पज्जलइ ॥ १४ ॥

[रन्धनकर्मनिपुणिके मा क्रुध्यस्व रक्तपाटलसुगन्धम् ।
मुखमारुतं पिबन्धूमायते शिखी न प्रज्वलति ॥]

रन्धणेति । रन्धनपरतया त्वदवलोकनकौतुकोपगतमपि मां नावलोकयसीति भावः । मा इति । तवाधरकृतेऽग्निपूजोचितस्य रक्तपाटलाकुसुमस्येव सुरभिशीतलो गन्धो यस्य तम् । मुखेति । दोषारुणत्वन्मुखदिदृक्षयेव धूमोद्गमचाटुमाचरति । त्वन्मुखमारुतपानेच्छयैवायं न प्रज्वलति । ज्वलितस्य तत्प्राप्त्यसंभवादिति भावः ॥

---

१. 'अस्याः' इति ग-घ-पाठः. २. 'कापि मलिनत्वाशङ्कया स्वामिसमर्पितगृहकृत्यपराङ्मुखीं' इति ख-पाठः. ३. 'मइलिएण' इति ख-ग-पाठः. ४. 'कोऽपि युवा कामुकधर्ममग्नौ समाधाय स्वाभिप्रायं प्रकाशयन्मारुतेनाप्रज्वलत्यग्नौ क्रुध्यन्तीं नायिकामाह' इति ख-पाठः. ५. 'खिद्यस्व' इति ग-पाठः.

नवोढायाः कस्याश्चिन्नूतनगर्भयोगिन्याः कान्तं प्रत्यनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती काचिदाह—

किं किं दे पडिहासइ सहीहिँ इअ पुच्छिआएँ मुद्धाए ।
पढमुग्गअदोहॅणीए णवरं दइअं गआ दिट्ठी ॥ १५ ॥

[किं किं ते प्रतिभासते सखीभिरिति पृष्टाया मुग्धायाः ।
प्रथमोद्गतदोहदिन्याः केवलं दयितं गता दृष्टिः ॥]

किमिति । प्रतिभासते रोचते । दयितेऽभिलाषमेव सूचितवतीत्यर्थः । यद्वा सपत्नीं प्रति सासूयस्य सपत्नीजनस्योपालम्भवादोऽयम् । मुग्धाया इति मोहाद्गर्भायासमप्यगणयन्त्याः । प्रथमेति । बहुप्रसूताश्च गर्भखेदखिन्नाः सुरतायासं परिहरन्ति । इयं त्वननुभूतप्रसूतिखेदा प्रियसंभोगमेव परमभिलषतीति भावः ॥

प्रोषितपतिका काचिद्विरहदाहदुःसहत्वं व्यञ्जयन्ती. कान्तसमागमविषये सखीजनं त्वरयितुं चन्द्राभ्यर्थनच्छलेनाह—

अमअमअ गअणसेहर रअणीमुहतिलअ चन्द दे छिवसु ।
छित्तो जेहिं पिअअमो ममं पि तेहिं विअ करेहिं ॥ १६ ॥

[अमृतमय गगनशेखर रजनीमुखतिलक चन्द्र हे स्पृश ।
स्पृष्टो यैः प्रियतमो मामपि तैरेव करैः ॥]

अमएति । देशब्दः सानुनयसंबोधने । अमृतमयेत्यनेन जगज्जीवनहेतुत्वम्, गगनशेखरेत्यनेनाखिललोकलोचनानन्दकारित्वम्, रजनीमुखतिलकेत्यनेनाबलाजनपक्षपातित्वम्, चन्द्रेत्यनेनाह्लादकत्वं व्यज्यते। एवंविधोऽपि मां निर्दयं दहसि, मत्कान्तं पुनरमृतशिशिरैः करैः स्पृशसीत्यतोऽद्यापि नायातीति भावः ॥

सखि मुञ्च खेदम् । अद्य श्वो वा तवागमिष्यति कान्तः । किं त्वागतोऽप्यसौ त्वया सप्रणयरोषमुपालम्भैः खेदयितव्य इति सखीभिरुक्ता प्रोषितभर्तृका आह—

ऐंहइ सो वि पउत्थो अहं अ कुप्पेज्ज सो वि अणुणेज्ज ।
इअ कस्स वि फलइ मणोरहाणँ माला पिअअमम्मि ॥ १७ ॥

[ऐष्यति सोऽपि प्रोषितो अहं च कुपिष्यामि सोऽप्यनुनेष्यति ।
इति कस्यापि फलति मनोरथानां माला प्रियतमे ॥]

१. 'दोहलिणीए' इति ग-पाठः; 'दोहलिण्णी' इति ख-पाठः. २. 'एहिइ' इति ख-ग-पाठः. ३. 'अणुणिज्ज' इति पाठः. ४. 'आगमिष्यति' इति ग-पाठः. ५. 'अथाहं' इति ग-पाठः.

नवोढायाः कस्याश्चिन्नूतनगर्भयोगिन्याः कान्तं प्रत्यनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती काचिदाह—

किं किं दे पडिहासइ सहीहिँ इअ पुच्छिआएँ मुद्धाए ।
पढमुग्गअदो[1]हंणीए णवरं दइअं गआ दिट्ठी ॥ १९ ॥

[किं किं ते प्रतिभासते सखीभिरिति पृष्टाया मुग्धायाः ।
प्रथमोद्गतदोहादिन्याः केवलं दयितं गता दृष्टिः ॥]

किमिति। प्रतिभासते रोचते। दयितेऽभिलाषमेव सूचितवतीत्यर्थः। यद्वा सपत्नीं प्रति सासूयस्य सपत्नीजनस्योपालम्भवादोऽयम् । मुग्धाया इति मोहाद्गर्भायासमप्यगणयन्त्याः । प्रथमेति । बहुप्रसूताश्च गर्भखेदखिन्नाः सुरतायासं परिहरन्ति । इयं त्वननुभूतप्रसूतिखेदा प्रियसंभोगमेव परमभिलषतीति भावः ॥

प्रोषितपतिका काचिद्विरहदाहदुःसहत्वं व्यञ्जयन्ती. कान्तसमागमविषये सखीजनं त्वरयितुं चन्द्राभ्यर्थनच्छलेनाह—

अमअमअ गअणसेहर रअणीमुहतिलअ चन्द दे छिवसु ।
छित्तो जेहिं पिअअमो ममं पि तेहिं विअ करेहिं ॥ १६ ॥

[अमृतमय गगनशेखर रजनीमुखतिलक चन्द्र हे स्पृश ।
स्पृष्टो यैः प्रियतमो मामपि तैरेव करैः ॥]

अमएति । देशब्दः सानुनयसंबोधने । अमृतमयेत्यनेन जगज्जीवनहेतुत्वम्, गगनशेखरेत्यनेनाखिललोकलोचनानन्दकारित्वम्, रजनीमुखतिलकेत्यनेनाबलाजनपक्षपातित्वम्, चन्द्रेत्यनेनाह्लादकत्वं व्यज्यते। एवंविधोऽपि मां निर्दयं दहसि, मत्कान्तं पुनरमृतशिशिरैः करैः स्पृशसीत्यतोऽद्यापि नायातीति भावः ॥

सखि मुञ्च खेदम् । अद्य श्वो वा तवागमिष्यति कान्तः । किं त्वागतोऽप्यसौ त्वया सप्रणयरोषमुपालम्भैः खेदयितव्य इति सखीभिरुक्ता प्रोषितभर्तृका आह—

[2]एहइ सो वि पउत्थो अहं अ कुप्पेज्ज सो वि [3]अणुणेज्ज ।
इअ कस्स वि फलइ मणोरहाणँ माला पिअअमम्मि ॥ १७ ॥

[[4]ऐष्यति सोऽपि प्रोषितो [5]अहं च कुपिष्यामि सोऽप्यनुनेष्यति ।
इति कस्यापि फलति मनोरथानां माला प्रियतमे ॥]

१. 'दोहलिणीए' इति ग-पाठः; 'दोहलिण्णी' इति ख-पाठः. २. 'एहिइ' इति ख-ग-पाठः. ३. 'अणुणिज्ज' इति पाठः. ४. 'आगमिष्यति' इति ग-पाठः. ५. 'अथाहं' इति ग-पाठः.

एहईति। कान्तस्य निरनुक्रोशत्वात्, आत्मनश्च कान्तावधीरणभीरुत्वात्, इयच्चिरं प्रेमानुबन्धस्यासंभाव्यमानत्वाच्च सर्वमेतन्मनोरथमात्रमित्याशयेनाह—इतीति। कस्यापि धन्यजनुष एतत्संपद्यते। मम तु मन्दभाग्यायाः कुत एतदिति भावः॥

कथमधुना दुर्बलोऽसीति मित्रेण पृष्टस्य कान्तस्य बहुमहिलाकृष्टिं कापि सेर्ष्योपालम्भमन्यापदेशेनाह—

दुग्गअकुटुम्बअट्ठी कहं णु मएँ धोइएण सोढव्वा।
दसिओसरन्तसलिलेण उअह रुण्णं व पडएण॥ १८॥

[दुर्गतकुटुम्बाकृष्टिः[1] कथं नु मया धौतेन सोढव्या।
दशापसरत्सलिलेन पश्यत रुदितमिव पटकेन॥]

दुग्गएति। सोढव्येत्यनन्तरं इति शङ्कया इति शेषः। तथा चैवंविधशङ्कामात्रेण खेदाद्दशागलज्जलच्छलेनाचेतनोऽपि पटो रोदिति, अयं तु विदग्धो महिलाछन्दानुवृत्त्या कथं न खिन्नः स्यादिति भावः। यद्वा कापि वेश्या धनदानेन विना बहूनां ग्रामप्रधानानामाकर्षणादुद्वेगं कुट्टनीं प्रति सूचयन्तीत्थं कथयति॥

कोऽप्यात्मनः पराधीनवृत्तित्वमनुरागातिशयं च नायिकां प्रति ख्यापयन्नायिकागृहगामिवत्समन्यापदेशेनाह—

कोसॅम्बकिसलअवण्णअ तण्णअ उण्णामिएहिँ कण्णेहिं।
हिअअट्ठिअँ घरँ वच्चमाण धवलत्तणं पाव॥ १९॥

[कोशाम्रकिसलयवर्ण तर्णक उन्नामिताभ्यां कर्णाभ्याम्।
हृदयस्थितं[2] गृहं व्रजन्धवलत्वं प्राप्नुहि॥]

कोसम्बेति। धवलत्वं श्रेष्ठतां षण्ढत्वं वा। स्वेच्छाचारितामिति यावत्। अहमिव पराधीनवृत्तिर्मा भूदिति भावः। अथवा यां वृद्धां कामयसे तस्यास्त्वं तर्णक इवेति कयाचित्कंचित्प्रत्युच्यते॥

कापि भावजिज्ञासार्थं कृतकनिद्रानिमीलिताक्षं कपोलचुम्बनपुलकिताङ्गत्वेन विदितमिथ्यास्वापं कान्तमाह—

अलिअपसुत्तअविणिमीलिअच्छ दे सुहअ मज्झ ओआसम्।
गण्डपरिउम्बणापुलइअङ्ग ण पुणो[3] चिराइस्सम्॥ २०॥

[अलीकप्रसुप्तकाविनिमीलिताक्ष हे[4] सुभग ममावकाशम्।
गण्डपरिचुम्बनापुलकिताङ्ग न पुनश्चिरयिष्यामि[5]॥]

1. 'कुटुम्बकृष्टिः' इति घ-पाठः. 2. 'हृदयेप्सितं' इति ग-घ-पाठः. 3. 'उणो' इति ग-पाठः. 4. 'ददस्व सुभग ममावकाशम्' इति ग-पाठः. 5. 'चिरयिष्ये' इति ग-घ-पाठः.

अलिएति । हे सुभग, ममावकाशं देहीति शेषः । 'देसु धअ मज्झ' इति क्वचित्पाठः । अत्र हे धव, ममावकाशं देहीति योज्यम् । केचित्तु—'देसु हअमज्झ इति पदच्छेदः । हतमध्य अङ्गविन्यासरुद्धमध्य देहि अवकाशम् । अर्थान्मम ।' इत्याहुः । गण्डेति । एतेन नायिकाया इङ्गितज्ञानमन्योन्यानुरागश्च यूनोर्दर्शितः ॥

वेश्याह्वानार्थमागते नायकमित्रे गृहीतान्यभुजंगमाच्छादयन्ती वेश्यामाता दुहितरमाह—

असमत्त[1]मण्डणाविअ वच्च घरं से सकोउहल्लस्स ।
वोलाविअहलहलअस्स पुत्ति चित्ते ण लग्गिहिसि ॥ २१ ॥

[असमाप्तमण्डनैव व्रज गृहं त[2]स्य सकौतूहलस्य ।
[3]व्यतिक्रान्तौत्सुक्यस्य पुत्रि चित्ते न लगिष्यसि ॥]

असमत्तेति । मण्डनकरणेनास्या विलम्बो नान्यप्रसङ्गेणेति भावः ॥

कश्चिन्नागरिकः कामिनीजनचित्तहरणार्थं रजस्वलामुखचुम्बनेनात्मनः कामुकत्वातिशयं प्रकटयन्नाह—

आअरपणामिओट्ठं अघडिअणासं [4]असंहअणिडालम् ।
वण्णघिअतु[5]प्पमुहिए तीए परिउम्बणं भरिमो ॥ २२ ॥

[आदरप्रणामितौष्ठमघटितनासमसंहतल[6]लाटम् ।
वर्णघृतलिप्तमुख्यास्तस्याः परिचुम्बनं [7]स्मरामः ॥]

आअरेति । हरिद्रादिवर्णप्रधानं घृतं वर्णघृतम् । देशविशेषे रजस्वलामुखं चिह्नार्थं वर्णघृतेन लिप्यत इत्याचारः । तस्या या मया त्वयि प्राक्कथितसौन्दर्या । परि सर्वतः कपोलादौ । यद्वा प्रोषितः कश्चित्प्रियायाः स्पृष्टकं नामानुरागातिशयसूचकमालिङ्गनं स्मरन्नात्मानं विनोदयतीति गाथार्थः ॥

जनसंबाधेऽपि प्रियं प्रत्युद्भटभावां सखी शिक्षयितुं कापि प्रच्छन्नकामुकोक्तं कुलजायां गाम्भीर्यगुणमाह—

अण्णासआइँ देन्ती तह सुरए हरिसविअसिअकवोला ।
गोसे वि ओणअमुही [8]अह सेत्ति पिआं ण [9]सद्दधिमो ॥ २३ ॥

---

१. 'मण्डणे विअ' इति ग-पाठः. २. 'अस्य' इति ग-पाठः. ३. 'व्यतिक्रान्तरणरणकस्य' इति ग-पाठः; 'व्यतिक्रान्तहलहलकस्य' इति घ-पाठः. 'हलहलकं कामौत्सुक्यमिति देशी' इति कुलबालदेवः. ४. 'असंघअलिलाडम्' इति ग-पाठः. ५. 'तुप्पशब्दो देशी लिप्ते वर्तते' इति कुलबालदेवः. ६. 'निटिलम्' इति घ-पाठः. ७. 'स्मरामि' इति ग-पाठः. ८. 'सहसेत्ति पिआ' इति ग-पाठः; ''अहसेत्ति पिआ' इति क्वचित्पाठः । अह इयमर्थे । इयं सा प्रियेति तदर्थः ।'' इति कुलबालदेवः. ९. 'सद्दहिमो' इति ग-पाठः.

[आज्ञाशतानि ददती तथा सुरते हर्षविकसितकपोला ।
प्रातरप्यवनतमुखी [1]इयं सेति प्रियां न श्रद्दध्मः ॥]

अण्णेति । हर्षविकसितकपोला सती । तथा आज्ञाशतानि गृहाणाधरं मुञ्च चिकुरमित्यादीनि ददती । गोसे प्रातः । अइ इयं सेयमिति । प्रथमैव न भवतीत्यर्थः । लोकसमक्षं गूढाकारतैव नायकप्रीतिहेतुः, न तु धाष्टर्यमिति भावः ॥

काचित्पत्युरन्यस्यामनुरागमात्मनि चाननुरागं कुलीनतानमस्कारच्छलेनाह—

पिअविरहो अप्पिअदंसणं अ गरुआइँ दो वि दुक्खाइं ।
जीएँ तुमं [2]कारिज्जसि तीएँ णमो आहिजाईए ॥ २४ ॥

[प्रियविरहोऽप्रियदर्शनं च गुरुके द्वे अपि दुःखे ।
यया त्वं कार्यसे तस्यै नम [3]आभिजात्यै ॥]

पिएति । करोतिरत्रानुभवार्थकः । अत एव देवदत्तो दुःखमनुभवतीत्यर्थे दुःखं करोतीति प्रयोगः । आभिजात्यै कुलीनतायै । ऋतुस्नानादौ बन्धुजनाभ्यर्थनां धर्मं वानुरुन्धानः कुलीनतया मामुपागतोऽसि, न तु स्नेहेनेत्याशयः ॥

कथमयं गमनाय कृतारम्भोऽपि न प्रस्थित इति कस्यचित्प्रश्ने तद्वयस्यः सपरिहासमाह—

[4]एक्को वि [5]कालसारो ण देइ गन्तुं [6]पआहिणवलन्तो ।
किं उण बाहाउलिअं लोअणजुअलं पिअअमाए ॥ २५ ॥

[एकोऽपि कृष्णसारो न ददाति गन्तुं प्रदक्षिणं [7]वलन् ।
किं पुनर्बाष्पाकुलितं लो[8]चनयुगलं प्रियतमायाः ॥]

एक इति । पक्षे व्याधाकुलितम् । किं पुनरिति । लोचनयुगलमपि यतः कृष्णसारमिति भावः । एतेन कान्तास्नेहनिगडबद्धोऽयं न गच्छतीति सूचितम् ॥

अनुनीयमानमप्यनुनयमगृह्णन्तं प्रणयिनी सप्रेमदण्डमाह—

ण कुणन्तो व्विअ माणं णिसासु सुहसुत्तदरविबुद्धाणम् ।
सुण्णइअपास[9]परिमूसणवेअणँ जइ सिजाणन्तो ॥ २६ ॥

---

१. 'सहसा प्रियेति न' इति ग-पाठः. 'असौ सेति' इति घ-पाठः. २. 'कारिज्जइ' इति क-पाठः. ३. 'अभिजात्यै' इति ग-पाठः. ४. 'एको वि' इति क-पाठः. ५. 'किण्णसारो' इति ख-पाठः. ६. 'पाहिणवलन्तो' इति क-पुस्तके, 'दआहिणचलन्तो' इति च ख-पुस्तके पाठः. ७. 'चलन्' इति ग-घ-पाठः. ८. 'नयनयुगलं' इति घ-पाठः. ९. 'परिमुसण' इति ख-ग-पाठः.

[नाकरिष्य एव मानं निशासु सुखसुप्तदरविबुद्धाम् ।
शून्यीकृतपार्श्वपरिमोषणवेदनां यद्यज्ञास्यः ॥]

णेति । निशासु स्वकान्तया सह सुखसुप्तानां किंचिद्विबुद्धानां ततोऽन्याभिसारिण्या तया शून्यीकृतेन पार्श्वेन यत्परिमोषणं वञ्चनं तेन या वेदना तां यद्यज्ञास्यः सा वेदना यदि त्वया ज्ञाता भवेत्तदा त्वं मानं नाकरिष्य एवेति संबन्धः । ममैवायं दोषः । यद्यहं पतिव्रता न स्यां तदा किं त्वमेवं करोषीति भावः ॥

कृतकलहयोर्दंपत्यो रात्रिवृत्ताकलयार्थमागता प्रियसखी प्रणयरोषभङ्गार्थमाह—

पणअकुविआणँ दोह्णं वि अलिअपसुत्ताणँ माणइल्लाणम् ।
णिच्चलणिरुद्धणीसासदिण्णकण्णाणँ को मल्लो ॥ २७ ॥

[प्रणयकुपितयोर्द्वयोरप्यलीकप्रसुप्तयोर्मानवतोः ।
निश्चलनिरुद्धनिःश्वासदत्तकर्णयोः को मल्लः ॥]

पणएति । निश्चलेति । प्रयत्नधृतनिःश्वासत्वेन कृतकप्रसुप्तम्, तथाविधनिःश्वासाकर्णनतत्परतया चाभिलाषित्वं सूचितम् । को मल्ल इत्युपालम्भप्रश्नः । न कोऽपीत्यर्थः । परस्परावधीरणासमर्थौ वृथैव युवामात्मानं खेदयथ इति भावः ॥

काचिद्दूती नायिकाया देवरानुरक्तत्वेनासाध्यत्वं सूचयन्ती जारं प्रत्याह—

णवलअपहरं अङ्गे जहिं जहिं महइ देवरो दाउम् ।
रोमञ्चदण्डराई तहिं तहिं दीसइ वहूए ॥ २८ ॥

[नवलताप्रहारमङ्गे यत्र यत्रेच्छति देवरो दातुम् ।
रोमाञ्चदण्डराजिस्तत्र तत्र दृश्यते वध्वाः ॥]

प्रोषितभर्तृका प्राणेशसमीपगामिनमध्वगं सखीजनं वा तदानयनत्वरार्थमाह—

अज्ज मए तेण विणा अणुहूअसुहाइँ संभरन्तीए ।
अहिणवमेहाणँ रवो णिसामिओ वज्झपडहो व्व ॥ २९ ॥

---

१. 'न कुर्वन्त्येव' इति घ-पाठः. २. 'विबुद्धानाम्' इति घ-पाठः. ३. 'परिमर्षण' इति ग-घ-पाठः. ४. 'यदि हि जानन्ति' इति घ-पाठः. ५. 'दोए वि' इति ख-पाठः. ६. 'दिह्ल' इति ग-पाठः. ७. 'मानान्वितयोः' इति ग-पाठः. ८. 'णवलरुपहारभङ्गे' इति ख-पाठः. ९. 'देअरो दासु' इति ख-पाठः. १०. 'यस्मिन्यस्मिन्महति' इति ग-पाठः. ११. 'तस्मिन् तस्मिन्' इति ग-पाठः. १२. 'अनुभूतसुरतं' इति घ-पाठः.

[अद्य मया तेन विना अनुभूतसुखानि संस्मरन्त्या।
अभिनवमेघानां रवो निशामितो वध्यपटह इव ॥]

अज्जेति। गर्जितश्रवणाद्वर्षास्वनुभूतसुखानि संस्मरन्त्या मया मेघानां शब्दो वध्यपटह इव वध्यस्थानं नीयमानस्य दोषघोषणापटहध्वनिरिव श्रुत इत्यर्थः। एतेन वर्षास्वनागच्छति तस्मिन्नदूरवर्ति मे मरणमित्यवगम्य यद्युक्तं तद्विधीयतामिति सूचितम्॥

ग्रामपालपुत्रं प्रति दूती कस्याश्चित्संगमायोत्साहयितुं सोपालम्भमाह—

णिक्किव जाआभीरुअ दुद्दंसण णिम्बईडसारिच्छ।
गामो गामिणिणन्दण तुज्झ कए तह वि तणुआइ ॥ ३० ॥

[निष्कृप जायाभीरुक दुर्दर्शन निम्बकीटसदृक्ष।
ग्रामो ग्रामणीनन्दन तव कृते तथापि तनुकायते ॥]

णिक्किवेति। अनुरक्तकामिनीजनवैमुख्यान्निष्कृप। 'णिक्किअ' इति पाठे निष्क्रिय क्रियाशून्य। जायाभीरुक भार्यापरतन्त्र। अत एवास्वच्छन्दप्रचारत्वाद्दुर्दर्शन दुर्लभदर्शन। निम्बकीटसदृक्ष, तिक्तरुचित्वादसुन्दरमहिलानुरागाच्च। अभव्यरुचितया द्वयोः साम्यम्। ग्रामणीनन्दनेति भयशून्यताप्रदर्शनपरं संबोधनम्। ग्रामो ग्रामनिवासिविलासिनीजनः कथं त्वत्संगमः स्यादिति चिन्तया तनुकायते दुर्बलायत इति कामिनीजनानुरागकथनेन कमनीयत्वं वर्णितम्॥

कमपि सुभटयोषिदभिलाषिणं विमृश्यकारिणमुत्साहयितुं तस्याः पत्यावनिच्छया सुखसाध्यतां पुरस्य च सुखनिर्गमप्रवेशतया निरपायतां दूती सुभटस्तुतिव्याजेनाह—

पहरवणमग्गविसमे जाआ किच्छेण लहइ से णिद्दम्।
गामणिउत्तस्स उरे पल्ली उण सा सुहं सुवइ ॥ ३१ ॥

[प्रहारव्रणमार्गविषमे जाया कृच्छ्रेण लभते तस्य निद्राम्।
ग्रामणीपुत्रस्योरसि पल्ली पुनः सा सुखं स्वपिति ॥]

पहरेति। उरे इति उरसि पुरे वा। प्रहारव्रणकिणैर्विषमे निम्नोन्नतकर्कशे तस्योरसि जाया कृच्छ्रेण निद्रां लभते। अनिच्छन्त्यपि भयात्तमालिङ्ग्य स्वपितीत्यर्थः। पुरपक्षे तु—प्रहरवनमार्गविषये प्रहरगम्यो यो वनमार्गस्तेन विषमे दुर्गमे। पल्ली, लक्षणया पल्ली-

१. 'णिक्किअ' इति ग-पाठः. २. 'दुद्दस्सण' इति ग-पाठः. ३. 'निष्क्रिय' इति घ-पाठः. ४. 'णिम्बकीड' इति ख-पाठः. ५. 'सदृश' इति ग-घ-पाठः. ६. 'तनूभवति' इति ग-घ-पाठः. ७. 'से' इति क-ख-पाठः. ८. 'सुअई' इति ख-पाठः. ९. 'तस्य' इति घ-पाठः.

निवासी जनः, सुखं स्वपिति। न कोऽपि जागर्तीत्यर्थः। जाया पुनः कृच्छ्रेण। बहुवल्लभत्वात्तस्य तज्जाया सावसरैव। अतस्तत्र गच्छेति जारं प्रति दूतीवचः॥

अन्यनायिकानाम्ना संबोध्यानुनयन्तं खण्डिता सविनयोपालम्भमाह—

अह संभाविअमग्गो सुहअ तुए जेव्व[1] णवरँ णिव्वूढो[2]।
एह्णिं[3] हिअए अण्णं अण्णं वाआइ लोअस्स॥ ३२॥

[अयं[4] संभावितमार्गः सुभग त्वयैव केवलं निर्व्यूढः।
इदानीं हृदयेऽन्यदन्यद्वाचि लोकस्य॥]

अहेति। इदानीं लोकस्य हृदयेऽन्यत् वाच्यन्यत्। तव तु यदेव हृदये तदेव वाचि। यतो मां प्रति हृदयबाह्येनापि प्रियवचसा सैवानुनीता, न त्वहमिति भावः॥

प्रणयकुपिता काचित्पृष्ठाभिमुखसुप्तं कान्तमाह—

उह्णाइँ णीससन्तो किँ[5] ति मह परम्मुहीएँ सअणद्धे।
हिअअं पलीविअ[6] वि अणुसएण पुट्ठिं पलीवेसि॥ ३३॥

[उष्णानि निःश्वसन्किमिति मम पराङ्मुख्याः शयनार्धे।
हृदयं प्रदीप्याप्यनुशयेन पृष्ठं प्रदीपयासि॥]

उह्णाईति। शयनैकदेशे पराङ्मुख्यास्त्वच्चिन्तामकुर्वत्या इति भावः। मम हृदयमनुशयेन सपत्नीसमुत्कर्षजनितेन प्रदीप्योष्णैर्निःश्वासैर्मम पृष्ठं किं प्रदीपयसि। तामेव वल्लभामुपगच्छ। अलीकदाक्षिण्येन मामात्मानं च किं खेदयसीति भावः॥

दूती कस्याश्चिद्विरहिण्या अवस्थां नायकं प्रत्याह—

तुह विरहे चिरआरअ तिण्णा[7] णिवडन्तबाहमइलेण।
रइरहसिहरधएण व मुहेण छाहि व्विअ ण पत्ता॥ ३४॥

[तव विरहे चिरकारक तस्या निपतद्बाष्पमलिनेन।
रविरथशिखरध्वजेनेव मुखेन च्छायैव न प्राप्ता॥]

तुहेति। चिरकारक, अवधिदिवसलङ्घनात्। छाया कान्तिरातपाभावश्च। 'छाया सूर्यप्रभा कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्यमरः। तदेवं विरहविधुरामनुकम्पस्वेत्याशयः॥

नववधूं प्रति सतीवृत्तशिक्षार्थं कापि बन्धुवधूराह—

दिअरस्स असुद्धमणस्स कुलवहू[8] णिअकुड्डुलिहिआइं[9]।
दिअहं कहेइ रामाणुलग्गसोमित्तिचरिआइं॥ ३५॥

---

१. 'व्वेअ' इति ख-ग-पाठः. २. 'णिव्वुड्ढो' इति ख-पाठः. ३. 'एहिहिं' इति ख-पाठः. ४. 'असौ' इति घ-पाठः. ५. 'कीस' इति ख-पाठः. ६. 'पलीरिअं विअ' इति क-पाठः; 'पलीअ वि उ' इति ख-पाठः. ७. 'तिस्सा' इति क-ख-पाठः. ८. 'कुलबहुआ' इति क-पाठः. ९. 'णिअकुड्ड' इति क-ख-पाठः.

[देवरस्याशुद्धमनसः कुलवधूर्निजककुड्यलिखितानि।
दिवसं कथयति रामानुलग्नसौमित्रिचरितानि॥]

दिअरस्सेति। अयमाशयः—कुलस्त्रिया रामायणवृत्तान्तं गृहभित्तौ विलिख्य तत्र विमातृजेऽपि रामे सभार्येऽनुलग्नानि लक्ष्मणस्य चरित्राणि कथयित्वा दुष्टहृदयो देवरः प्रत्याख्येयः, न तु प्रकटम्। कुटुम्बविघटनादिभयादिति भावः॥

सतां सत्यपि विनाशकारणे विनाशो न भवतीत्यसती स्वदोषप्रच्छादनार्थमाह—

चत्तरघरिणी[1] पिअदंसणा अ तरुणी पउत्थपइआ अ।
असईसंपज्जिआ[2] दुग्गआ अ ण हु खण्डिअं सीलम्॥ ३६॥

[चत्वरगृहिणी प्रियदर्शना च तरुणी प्रोषितपतिका च।
असतीप्रतिवेशिनी[3] दुर्गता च न खलु खण्डितं शीलम्॥]

चत्तरेति। चत्वरे राजमार्गे गृहं यस्याः। प्रियदर्शना सुन्दरी। असत्याः कुलटायाः प्रतिवेशिनी। अत्र चत्वरगृहिणीत्वादेः शीलखण्डनकारणस्य सत्त्वेऽपि तदभावाद्विशेषोक्तिरलंकारः—'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः' इति तल्लक्षणात्॥

नदीतटकदम्बनिकुञ्जदत्तसंकेतेन कान्तेन विप्रलब्धा नायिका 'तत्राहं गता, त्वं तु नागतः' इति तं श्रावयन्ती सखीजनमाह—

तालूरभमाउलखुडिअकेसरो गिरिणईएँ पूरेण।
दरबुड्डउबुड्डणिबुड्डमहुअरो हीरइ कलम्बो॥ ३७॥

[जलावर्तभ्रमाकुलखण्डितकेसरो[4][5] गिरिनद्याः पूरेण।
दरमग्नोन्मग्ननिमग्नमधुकरो[6] ह्रियते कदम्बः॥]

तालूरेति। तालूरो जलावर्त इति देशी। जलावर्तानां भ्रमो भ्रमणं तेनाकुलः। अत एव खण्डितकेसरः। अत्र भ्रष्टकेसरतया गलितमकरन्देऽपि कदम्बे भ्रमरस्येयमीदृशी दृढस्नेहता। तव तु अस्तु तावत्प्रेम्णश्चिरानुबन्धः, संप्रत्येवाहं त्वया छलितेति सरोष उपालम्भः॥

दूती कामुकं प्रति कस्याश्चित्पतिव्रताया धनाद्यसाध्यतां प्रतिपादयन्ती आह—

अहिआअमाणिणो दुग्गअस्स छाहिं पँअस्स[7] रक्खन्ती।
णिअबन्धवाणँ जूरइ घरिणी विहवेण एत्ताणम्॥ ३८॥

---

१. 'धरणी' इति क-पाठः. २. 'सहज्जिआ' इति क-पुस्तके, 'सअज्जिआ' इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. 'सहवासिनी' इति ग-पाठः. ४. 'भ्रमात्खण्डित' इति ग-पाठः. ५. 'स्फुटितकेशरो' इति घ-पाठः. ६. 'दरमग्नमग्नोन्मग्न-' इति ग-पुस्तके, 'दरमग्नोन्मग्ननिर्मलमधुकरो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'पइअस्स' इति क-पुस्तके, 'पिअस्स' इति च ग-पुस्तके पाठः.

[[1]आभिजात्यमानिनो दुर्गतस्य छायां पत्यू रक्षन्ती ।
[2]निजबान्धवेभ्यः क्रुध्यति गृहिणी विभवेना[3]गच्छद्भ्यः ॥]

अहिआएति । 'पत्ताणम्' इति पाठे प्राप्तेभ्य इत्यर्थः । छायां महत्त्वम् । पतिचित्तानुवृत्त्यर्थं बन्धुजनस्याप्युपहारं न बहु मन्यते । किं पुनः कामिजनस्येति भावः ॥

कामुकजनाभियोगनिरासार्थं दूती स्वाधीनपतिकायाः सुचरितमाह—

साहीणे वि पिअअमे पत्ते वि खणे ण मण्डिओ अप्पा ।
दुग्गअपउत्थवइअं सअज्झिअं सण्ठवन्तीए ॥ ३९ ॥

[स्वाधीनेऽपि प्रियतमे प्राप्तेऽपि [4]क्षणे न मण्डित आत्मा ।
दुर्गतप्रोषितपतिकां प्रतिवेशिनीं सं[5]स्थापयन्त्या ॥]

साहीण इति । क्षणे मदनमहोत्सवादौ प्राप्तेऽपि प्रतिवेशिनीं संस्थापयन्त्या अनुद्विग्नां कुर्वन्त्या । कदाचित्कृतमण्डनां मामवलोक्येयमुद्विग्ना खण्डितचारित्रा स्यात् इत्याशङ्कया या आत्मानं न मण्डयति तस्या दूरे स्वशीलखण्डनसाहस इति भावः । अथवा प्रतिवेशिनीस्थापनार्थमनया मण्डनं न कृतम्, न तु कामुकान्तरविरहखिन्नयेति सखीदोषप्रच्छादनार्थं सख्या वचनमिदमिति ॥

नायिकानुरागकथनेन दूती नायकमनुकूलयितुमाह—

तुज्झ [6]वसइ त्ति हिअअं इमेहिँ दिट्ठो तुमं ति [7]अँच्छीहिं ।
तुइ विरहे [8]किसिआइं ति तीएँ अङ्गाइँ वि पिआइं ॥ ४० ॥

[तव वसतिरिति हृदयमाभ्यां दृष्टस्त्वमित्याक्षिणी ।
तव विरहे [9]कृशितानीति तस्या अङ्गान्यपि प्रियाणि ॥]

काचित्खण्डिता बहुधा कृतव्यलीकमनुनयन्तं नायकमाह—

सब्भावणेहभरिए रत्ते रज्जिज्जइ त्ति जुत्तमिणम् ।
अणहिअए उण हिअअं जं दिज्जइ तं जणो हसइ ॥ ४१ ॥

१.'अभिजाति' इति ग-घ-पाठः. २.'निजबान्धवान्निन्दति' इति ग-पाठः. ३.'आगच्छतः' इति ग-पुस्तके, 'गच्छद्भ्यः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४.'उत्सवे' इति ग-पाठः. ५. 'स्थापयन्त्या' इति घ-पाठः. ६. 'वसहित्ति' इति क-पाठः. ७. 'अच्छिद्रम्' इति ख-ग-पाठः. ८. 'किसिआअं' इति क-पाठः. ९. 'कृशितानीति' इति ग-पुस्तके, 'कृशानीति' इति घ-पुस्तके पाठः.

[सद्भावस्नेह[1]भरिते रक्ते [2]रज्यत इति युक्तमिदम् ।
अन्यहृदये पुनर्हृदयं यद्दीयते तज्जनो हसति ॥]

सब्भावेति । यद्वा काचिद्दूती अभियोज्यायाः पत्यावनुरागभङ्गार्थं तस्मिन्नसन्तमपि दोषमुद्भावयन्ती इदमाहेति ॥

विमृश्यकारिणं नायकं नायिकासंगमाय दूती प्रोत्साहयितुमाह—

आरम्भन्तस्स धुअं लच्छी मरणं वि होइ पुरिसस्स ।
तं मरणमणारम्भे वि होइ लच्छी उण ण होई ॥ ४२ ॥

[[3]आरभमाणस्य ध्रुवं लक्ष्मीर्मरणं वा भवति पुरुषस्य ।
तन्मरणमनारम्भेऽपि भवति लक्ष्मीः पुनर्न भवति ॥]

आरम्भेति । तत्किमित्यतिसूक्ष्मप्रेक्षितया लक्ष्मीमिवानुवर्तमानां तामुपेक्षस इति भावः ॥

चिरविरहमपि सहन्ते स्त्रियस्तत्किमेवमुद्विग्नासीति वदन्तीं कामपि विरहोत्कण्ठिता सनिर्वेदमाह—

विरहाणलो सहिज्जइ आसाबन्धेण वल्लहजणस्स ।
एक्कग्गामपवासो माए मरणं विसेसेइ ॥ ४३ ॥

[विरहानलः सह्यत आशाबन्धेन वल्लभजनस्य ।
एकग्रामप्रवासो मातर्मरणं विशेषयति ॥]

विरहेति । प्रत्याशाहेत्वभावान्मरणातिरिच्यत इत्यर्थः ॥

सुरतसमये नायकस्य वैमनस्यं कथयन्तीं नायिकां प्रति दूती आह—

अक्खडइ पिआ हिअए अण्णं महिलाअणं रमन्तस्स ।
दिट्ठे सरिसम्मि गुणे [4]असरिसम्मि गुणे अणीसन्ते ॥ ४४ ॥

[[5]आस्खलति प्रिया हृदये अन्यं महिलाजनं रममाणस्य ।
दृष्टे सदृशे गुणे असदृशे गुणे [6]अदृश्यमाने ॥]

अक्खडईति । आस्खलति स्मृतिपथमुपैतीत्यर्थः । अन्यस्त्रीप्रसङ्गे भर्तुर्हृदये समानोत्कृष्टापकृष्टगुणाश्रयतया प्रिया स्मृतिपथं याति । न तु त्वयि वैराग्यादिति भावः । यद्वा कामिनीजनचित्ताकर्षणाय कश्चिदात्मनो बहुवनितोपभोगेन कामुकत्वातिशयं ख्यापयन्निदमाह ॥

---

१. 'स्नेहमये' इति ग-पुस्तके, 'स्नेहभृते' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'रक्तीभूयते' इति ग-पाठः. ३. 'आरम्भं क्रियमाणस्य' इति ग-पाठः. ४. 'असरिस्सम्मे गुणे अइसन्ते' इति ख-पाठः. ५. 'स्मृतिं याति' इति घ-पाठः. ६. 'अतिशयेवेति' इति ग-पाठः.

मानिनीमनुनेतुं दूती यौवनाद्यनित्यतामाह—

ण[1]इऊरसच्छहे जोव्वणम्मि अइपवसिएसु दि[2]असेसु ।
[3]अणिअत्तासु अ राईसु पुत्ति किं दड्ढमाणेण ॥ ४५ ॥

[नदीपूरसदृशे यौवने [4]अतिप्रोषितेषु दिवसेषु ।
[5]अनिवृत्तासु च रात्रिषु पुत्रि किं दग्धमानेन ॥]

णईति । कतिपयदिनस्थायित्वेन यौवनस्य नदीपूरसादृश्यम् । कतिपयदिनानुभाव्ययौवनसुखविघातकारित्वाद्दाहार्होऽयं मानस्त्यज्यतामिति भावः ॥

कापि निशाभ्यर्थनकाकुवादश्रावणेन विरहासहत्वं व्यञ्जयन्ती कान्तगमनाक्षेपार्थमाह—

कल्लं किर खरहिअओ [6]पवसिइहि पि[7]ओ त्ति सुण्णइ जणम्मि ।
तह वड्ढ भअवइ णिसे जह से कल्लं विअ ण होइ ॥ ४६ ॥

[[8]कल्यं किल [9]खरहृदयः [10]प्रवत्स्यति प्रिय इति श्रूयते जने ।
तथा वर्धस्व भगवति निशे यथा तस्य कल्यमेव न भवति ॥]

कल्लमिति । कल्यं प्रातः । 'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यम्' इत्यमरः । खरहृदयः अस्मत्पीडानभिज्ञत्वान्निष्ठुरहृदयः । यद्वा प्रातरयं गमिष्यति त्वं स्वच्छन्दं विहरेति जारं प्रति स्वैरिण्या उक्तिरियम् ॥

सखीमौग्ध्यकथनच्छलेन तत्कान्तगमनाक्षेपार्थं काचिदाह—

होन्तपहिअस्स जाआ आउच्छणजीअधारणरहस्सम् ।
पुच्छन्ती भमइ घरं [11]घरेण पिअविरहसहिरीओ ॥ ४७ ॥

[भविष्यत्पथिकस्य जाया [12]आपृच्छनजीवधारणरहस्यम् ।
पृच्छन्ती भ्रमति [13]गृहं गृहेण प्रि[14]यविरहसहनशीलाः ॥]

होन्तेति । आपृच्छनं गमनप्रश्नः प्रिये याम्यहमित्येवंरूपः । तत्र यज्जीवधारणं तदर्थं

---

१. 'णइपूर' इति क-ख-पाठः. २. 'दिअहेसु' इति क-ग-पाठः. ३. 'अणिअणिअत्तासु' इति क-पाठः. ४. 'अतिप्रवसितेषु' इति ग-पाठः. ५. 'अनिवृत्तास्वपि' इति ग-पाठः. ६. 'पवसिहि' इति ख-पाठः. ७. 'पिअ इति' ख-पाठः. ८. 'कल्पे' इति ग-घ-पाठः. ९. 'खलहृदयः' इति क-ग-पाठः. १०. 'प्रवसिष्यते' इति ग-पाठः. ११. 'घरे घरेण' इति क-पाठः. १२. 'आगामिक्षणजीवधारणरहस्यम्' इति ग-पुस्तके, 'पुनर्दर्शनप्रश्नजीवधारणरहस्यम्' इति च घ-पुस्तके पाठः. १३. 'गृहं गृहं' इति घ-पाठः. १४. 'प्रियविरहसहिष्णूः' इति ग-पाठः.

रहस्यमुपायं पृच्छन्ती। अनेन अस्तु तावद्विरहः, तव गमनसमय एव मुग्धाया जीविताशा संदिग्धेति ध्वनितम् ॥

काचित्स्वाधीनभर्तृका पत्युरनन्यपरताकथनेनान्यकामिन्यवकाशनिरासाय स्वसौभाग्यमाह—

अण्णमहिलापसङ्गं दे देव्व करेसु अम्ह दइअस्स।
पुरिसा एक्कन्तरसा ण हु दोसगुणे विआणन्ति ॥ ४८ ॥

[अन्यमहिलाप्रसङ्गं हे देव कुर्वस्माकं दयितस्य।
पुरुषा एकान्तरसा न खलु दोषगुणौ विजानन्ति ॥]

अण्णेति। देशब्दः सानुनयसंबोधने। हे देव, अस्माकं दयितस्यान्यमहिलाप्रसङ्गं कुरु। खलु यस्मात् पुरुषा एकान्तरसा गुणदोषौ न जानन्ति। अन्तशब्दः स्वरूपवाची। एकरसा इत्यर्थः। यद्वा पत्युरन्यासङ्गप्रार्थनेनावसरमिच्छन्त्या प्रच्छन्नरताभिलाषो जारं प्रति सूच्यते ॥

स्वयं दूती पथिकमाह—

थोअं पि ण णीसरई मज्झण्णे उह सरीरतललुक्का।
आअवभएण छाही वि पहिअ ता किं ण वीसमसि ॥ ४९ ॥

[स्तोकमपि न निःसरति मध्याह्ने पश्य शरीरतललीना।
आतपभयेन च्छायापि पथिक तत्किं न विश्राम्यसि ॥]

थोअमिति। आतपखिन्नाः पथिका यस्यां छायायां विश्राम्यन्ति, सा अचेतना छायाप्यातपभयेन बहिर्न निष्क्रामति, किं पुनश्चेतन इति। ततश्च मध्याह्ने कोऽपि बहिर्न निर्यातीति विविक्तनिरपायमध्याह्नाभिसारसुखमनुभवाव इत्याशयः ॥

विरहोत्कण्ठिता ज्वरश्लाघाछलेन चिरागतकान्तोपालम्भमाह—

सुहउच्छअं जणं दुल्लहं पि दूराहि अम्ह आणन्त।
उअआरअ जर जीअं पि णेन्त ण कआवराहोऽसि ॥ ५० ॥

[सुखपृच्छकं जनं दुर्लभमपि दूरादस्माकमानयन्।
उपकारक ज्वर जीवमपि नयन्न कृतापराधोऽसि ॥]

१. 'देव्व' इति क-ख-पाठः. २. 'विजाणन्ति' इति क-पाठः. ३. 'अन्यस्त्रीप्रसङ्गं' इति ग-पाठः. ४. 'कुरुष्वास्माकं' इति घ-पुस्तके, 'कुरुष्वास्मद्' इति च ग-पुस्तके पाठः. ५. 'एकत्ररसा' इति ग-पाठः. ६. 'उव सरीरअल' इति क-पाठः. ७. 'आणेत' इति ग-पाठः. ८. 'उवआरअ' इति क-पाठः. ९. 'दूरान्मम कृते' इति ग-पाठः. १०. 'गृह्णन्न' इति ग-पाठः.

सुहेति। सुहउच्छअशब्दोऽस्वास्थ्यवार्ताकारके। तेन लोकभयादागतम्, न तु स्नेहादिति भावः। अस्माकं दुर्लभमपि दूरादानयन्। अत एव दुर्लभप्रियानयनादुपकारक ज्वर, जीवमपि नयन्न कृतापराधोऽसि। एवं मां प्रत्यस्नेहे त्वयि मम मरणमेव श्रेयः। तच्च त्वद्दर्शनपूर्वकं साधयता ज्वरेण ममोपकार एव कृतो न त्वपकार इति भावः॥

खण्डिता काचित्सुखप्रश्नार्थमागतं कान्तं प्रति सेर्ष्यमाह—

आमजरो मे मन्दो अहव ण मन्दो जणस्स का तन्ती।
सुहउच्छअ सुहअ सुअन्धअन्ध मा [1]अन्धिअं छिवसु ॥५१॥
[आमज्वरो मे मन्दोऽथवा न मन्दो जनस्य का चिन्ता।
सुखपृच्छक सुभग सुगन्धगन्ध मा [2]गन्धितां स्पृश॥]

आमेति। अजीर्णोत्पन्नो ज्वर आमज्वरः। त्वयि क्रोधेन रात्रौ जागरणादिति भावः। आमशब्दः सेर्ष्यानुमताविति केचित्। जनस्योदासीनस्य मद्दुःखाददुःखितस्य भवतः किमनेन प्रश्नेनेति भावः। हे सुखपृच्छक अस्वास्थ्यवार्ताकारक, बहुवल्लभत्वात्सुभग, प्रियाङ्गसङ्गसंक्रान्तपरिमलत्वात्सुगन्धगन्ध, गन्धितां संजातज्वरगन्धां मां मा स्पृश। मदङ्गस्पर्शसंक्रान्तज्वरगन्धः सन् प्रेयस्याः कृतापराधो मा भूरित्याशयः॥

रतिरभसात्कान्तमाक्षिप्यारब्धपुरुषायितां सौकुमार्यादल्पायासेनैव श्रान्तां कान्तः सहासमाह—

सिहिपिच्छलुलिअकेसे वेवन्तोरु विणिमीलिअद्धच्छि।
दरपुरिसाइरि विसुमरि जाणसु पुरिसाणँ जं दुःखम् ॥ ५२ ॥
[शिखिपिच्छलुलितकेशे वेपमानोरु विनिमीलितार्धाक्षि।
ई[3]षत्पुरुषायिते विश्रामशीले जानीहि पुरुषाणां यद्दुःखम्॥]

पूर्वं निष्कासितस्य पुनरुपार्जितवैभवस्य भुजंगस्य समागमाय प्रेरयन्तीं जननीं प्रति वेश्याह—

पेम्मस्स विरोहिअसंधिअस्स पच्चक्खदिट्ठवि[4]लिअस्स।
उअअस्स [5]वँ ताविअसीअलस्स विरसो रसो होइ ॥ ५३ ॥
[प्रेम्णो विरोधितसं[6]धितस्य प्रत्यक्षदृष्टव्यलीकस्य।
उदकस्येव तापितशीतलस्य विरसो रसो भवति॥]

---

१. 'गन्धिरिं' इति कख-पाठः. २. 'गन्धशीलां' इति घ-पाठः. ३. 'दरपुरुषायिते' इति ग-पुस्तके, 'दरपुरुषायितशीले' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'विलअस्स' इति क-पाठः. ५. 'वि' इति क-पाठः. ६. 'संहितस्य' इति ग-पाठः.

पेम्मस्सेति। प्रत्यक्षेति श्रुतेऽनुमिते च विप्रिये प्रतीकारः संभवति। दृष्टे तु नास्तीति भावः। पर्युपास्यमानोऽप्यसौ नानुरक्तो भविष्यति किमित्यस्थाने मां प्रेरयसीति भावः॥

बहुशोऽनुभूतेऽर्थे भविष्यत्यपि भूतवत्प्रत्ययो भवतीति निदर्शयन्कश्चिद्बन्द्याः पतिशौर्यबहुमानमाह—

वज्जपडणाइरिक्कं पइणो सोऊण सिञ्जिणीघोसम्।
पुसिआइं करमरिएँ सरिसवन्दीणं पि [1]णअणाइं॥ ५४॥

[वज्रपतनातिरिक्तं पत्युः श्रुत्वा शि[2]ञ्जिनीघोषम्।
प्रोञ्छितानि बन्द्या स[3]दृशबन्दीनामपि नयनानि॥]

वज्जेति। करिमरी बन्दी। अतिचमत्कारकारित्वाद्वज्रपतनातिरिक्तम्। 'मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः। आगतो मे भर्ता भवतीरपि मोचयिष्यति। तत्किमद्यापि दुःखेनेति भावः॥

बन्द्यां जाताभिलाषश्चोरयुवा पतिशौर्याभिमानिन्यास्तस्या उत्साहभङ्गार्थमाह—

करिमरि अआलगज्जिरजलआसणिपडनपडिरवो एसो।
पइणो धणुरवकङ्खिरि रोमञ्चं किं मुहा वहसि॥ ५५॥

[[4]बन्दि अकालगर्जनशीलजलदाशनिपतनप्रतिरव एषः।
पत्युर्धनूरवाकाङ्[5]क्षणशीले रोमाञ्चं किं मुधा वहसि॥]

भुजंगान्तरप्रोचनाय दुहितुः सौकुमार्यातिशयं सुरतक्षमत्वं च ख्यापयन्ती वेश्यामाता भुजंगनिन्दाच्छलेनाह—

सहइ सहइ त्ति तह तेण [6]रमिआ सुरअदु[7]व्विअड्ढेण।
[8]पम्माअसिरीसाइं व जह से [9] जाआइँ अङ्गाइं॥ ५६॥

[सहते सहत इति तथा तेन रमिता सुरतदुर्विदग्धेन।
प्रम्लानशिरीषाणीव य[9]थास्या जातान्यङ्गानि॥]

सहईति। सुरतदुर्विदग्धेन सुरतावसानानभिज्ञेन॥

नायकं प्रति कस्याचिदनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती आह—

'अगणिअसेसजुआणा बालअ वोलीणलोअमज्जाआ।
अह सा भमइ दिसामुहपसारिअच्छी तुह कएण॥ ५७॥

१. 'अच्छीहिं' इति ख-पाठः; 'अस्सूहिं' इति च क-पाठः. २. 'ज्याशब्दम्' इति ग-पाठः. ३. 'सदृगबन्दीनां' इति घ-पाठः. ४. 'करमर्यकालगर्जितजलदा' इति ग-पाठः. ५. 'काङ्क्षिणि' इति ग-पाठः. ६.'रमिआ' इति क-पाठः. ७. 'दुव्विअड्ढेण' इति क-पाठः. ८. 'पम्माइअ' इति क-पाठः. ९. 'यथा तस्या' इति घ-पाठः.

[अगणिताशेषयुवा बालक व्यतिक्रान्तलोकमर्यादा ।
अथ सा भ्रमति दिशामुखप्रसारिताक्षी तव कृतेन ॥]

अगणिएति । हे बालक, स्त्रीरत्नपरिहारात् स्त्रीवधपातकाचिन्तनाच्च हिताहितानभिज्ञ, न गणिताः शेषास्त्वदन्ये युवानो यया सा, लज्जात्यागात्त्यक्तलोकमर्यादा, सा पूर्वोक्तसौन्दर्याद्यनेकगुणा तव कृतेन त्वद्दर्शनेच्छया दिङ्मुखेषु प्रसारिताक्षी सती भ्रमति। यावद्दशमीमवस्थां न गच्छति तावदेनामनुकम्पस्वेति भावः ॥

बहुवल्लभस्य साध्वी काचिन्नायिका श्वश्रूं प्रति भर्तृशौर्यं प्रकाशयन्ती असतीसपत्नीनामभिसारसज्जतां सूचयति—

अज्ज व्वेअ पउत्थो उज्जाअरओ जणस्स अज्जे अ ।
अज्जे अ हलिद्दापिञ्जराइँ गोलाणइतडाइं ॥ ५८ ॥

[अद्यैव प्रोषित उज्जागरको जनस्याद्यैव ।
अद्यैव हरिद्रापिञ्जराणि गोदानदीतटानि ॥]

अज्जेति । मम पतिरद्यैव प्रोषितः। अर्थात्सङ्ग्रामप्रसङ्गेणेति लभ्यते। जनस्योज्जागरोऽद्यैव। चोरादिभयात् अभिसरणाभियोगाच्चेति भावः । गोदावरीतीराण्यद्यैव हरिद्रापिञ्जराणि । हरिद्रोद्वर्तिताङ्गप्रक्षालनेनासतीनामङ्गरागग्रहणादिति भावः ॥

बन्धुवधूः कुलवधूशिक्षार्थं सतीवृत्तमाह—

असरिसचित्ते दिअरे सुद्धमणा पिअअमे विसमसीले ।
ण कहइ कुडुम्बविहडणभएण तणुआअए सोह्ना ॥ ५९ ॥

[असदृशचित्ते देवरे शुद्धमनाः प्रियतमे विषमशीले ।
न कथयति कुटुम्बविघटनभयेन तनुकायते स्नुषा ॥]

असरिसेति । असदृशचित्ते दुष्टचित्ते । प्रकाश्यमानं यद्दोषावहं तद्गोप्यमिति भावः ॥

कलहान्तरितायाः सखी तत्कान्तेन तद्भावजिज्ञासार्थं पृष्टा तमाह—

चिंत्ताणिअदइअसमागमम्मि कअमण्णुआइँ भरिऊण ।
सुण्णं कलहाअन्ती सहीहिँ रुण्णा ण ओहसिआ ॥ ६० ॥

---

१. 'अगणिताशेषयुवका' इति ग-घ-पाठः. २. 'गोलाणइअ तूहाइं' इति क-पुस्तके, 'गोलाए तूहाइं' इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. 'उज्जागरणमपि' इति ग-पाठः. ४. 'गोदावरीनद्याः स्रोतांसि' इति ग-पुस्तके, 'गोदावर्यस्तीराणि' इति घ-पुस्तके, 'गोदायाः कूलानि' इति च ख-पुस्तके पाठः. ५ 'शुद्धमनस्का' इति ग-पाठः. ६. 'चिन्ताणिइअ' इति क-पाठः.

[चित्तानीतदयितसमागमे कृतमन्युकानि स्मृत्वा।
शून्यं कलहायमाना सखीभी रुदिता नोपहसिता ॥]

चित्तेति। कृतो मन्युर्यैस्तानि कृतमन्युकानि। मन्युकारणानीत्यर्थः। सखीभी रुदिता शोचितेत्यर्थः। कार्येण रोदनेन स्वकारणीभूतस्य शोकस्य लक्षणात् 'रुदि'धातोरकर्मकत्वाद्यथा श्रुतस्यासंगतेः त्वदनुध्यानपरायास्तस्यास्तथाविधं मन्मथोन्मादमवेक्ष्य सखीभिस्तां प्रति शोकः कृतः, न पुनरुपहासकारणे सत्यप्युपहास इति भावः॥

प्रच्छन्नरताभिलाषिणं नागरिकं प्रति कुलजाभिसारिका सवैदग्ध्यमाह—

हिँअअण्णएहिँ समअं असमत्ताइं पि जह सुहावन्ति।
कज्जाइँ मणे ण तहा इअरेहिँ समाविआइं पि ॥ ६१ ॥

[हृदयज्ञैः सममसमाप्तान्यपि यथा सुखयन्ति।
कार्याणि मन्ये न तथा इतरैः समापितान्यपि ॥]

हिअएति। हृदयज्ञैरिङ्गितज्ञैः। इतरैरनिङ्गितज्ञैरगूढाकारैश्च। एतेन त्वद्विधविदग्धेन समं संकल्पसमागमोऽपि वरम्, न पुनः पामरसमागम इति सूचितम्। यद्वा स्वपुरुषस्य पामरताप्रकाशनेन तद्विषयको विरागो जारं प्रत्यनुरागश्च सूचितः। अधमानुरक्तां प्रति सखीवचनं वा॥

कोमलाम्राङ्कुरप्रदर्शनेन घनागमं सूचयन्ती कान्ता कान्तस्य गमनाक्षेपार्थमाह—

दरफुडिअसिप्पिसंपुडणिलुक्कहालाहलग्गछेप्पणिहम्।
पक्कम्बट्ठिविणिग्गअकोमलमम्बङ्कुरं उअह ॥ ६२ ॥

[ईषत्स्फुटितशुक्तिसंपुटनिर्लीनहालाहलाग्रपुच्छनिभम्।
पक्वाम्रास्थिविनिर्गतकोमलमाम्राङ्कुरं पश्यत ॥]

दरेति। हालाहलो 'बैह्मनिया' इति प्रसिद्धो जन्तुविशेषः। 'हालाहालो ब्रह्मसर्पे' इति मेदिनीकोषः। निलीनान्तं हालाहलविशेषणम्॥

---

१. 'कृतमन्यून्संस्मृत्य' इति ग-पाठः. २. 'कलहायन्ती' इति ग-पाठः. ३. 'न पुनर्हसिता' इति घ-पाठः. ४. 'हिअअअणुएहिं' इति क-पाठः. ५. 'सुहावेति' इति ख-ग-पाठः. ६. 'समाप्तान्यपि' ग-घ-पाठः. ७. 'पिकम्बट्ठि' इति क-ख-पाठः. ८. 'निलुप्त' इति ग-पाठः. ९. 'ओटनीतिप्रसिद्धो जन्तुः' इति कुलबालदेवः.

असत्वररतप्रवृत्तये गृहस्य जनसंचारशून्यतां सूचयितुं जारं वान्यमनस्कं कर्तुं काचिदाह—

उअह पडलन्तरोइण्णणिअतन्तुद्धपाअपडिलग्गम्[२] ।
दुल्लक्खसुत्तगुंत्थेक्कबउलकुसुमं व मक्कडअम् ॥ ६३ ॥
[पश्यत पटलान्तरावतीर्णनिजकतन्तूर्ध्वपादप्रतिलग्नम् ।
दुर्लक्ष्यसूत्रग्रथितैकबकुलकुसुममिव मर्कटकम् ॥]

उअहेति । पटलान्तरादवतीर्णे निजकतन्तौ ऊर्ध्वपादैः प्रतिलग्नं मर्कटकं लूतां पश्यत । 'अथ मर्कटकः सस्यभेदे वानरलूतयोः' इति मेदिनी ॥

पुराणदेवकुलस्य निर्जनतां सूचयन्ती कुलटा जारमाह—

उअरि दरदिट्ठथॆण्णुअणिलुक्कपारावआणँ विरुएहिं ।
णित्थणइ जाअवेअणँ सूलाहिण्णं व देउँलअम् ॥ ६४ ॥
[उँपरीषद्दृष्टशङ्कुनिलीनपारावतानां विरुतैः ।
निस्तनति जातवेदनं शूलाभिन्नमिव देवँउलम् ॥]

उअरीति । ईषदिति कलशस्य भग्नत्वात्किंचिदवशिष्टकीलकं देवकुलं निलीनानां पारावतानां विरुतै स्तनति । एतेन रतिसमये पारावतरुतानुकारि कण्ठकूजितमयत्नसिद्धम्, क्रियमाणमप्यनुपलक्ष्यत्वादविरुद्धमिति सूचितम् । नायकस्य दीर्घरमणार्थं चमत्कारमुत्पादयितुं शूलाभिन्नमिवेत्युत्प्रेक्षणम् । तथा च कामशास्त्रम्—'कल्लोलिनीकाननकंदरादौ दुःखाश्रये चार्पितचित्तवृत्तिः । मृदुद्रुतारम्भमभिन्नधैर्यः श्लथोऽपि दीर्घं रमते रतेषु ॥' इति ॥

'निजभर्तुरेवाप्रियास्मि, तत्किं तव मया दुर्भगया' इति निरस्यन्तीं नायिकां प्रति साभिलाषः कश्चिदाह—

जइ होसि ण तस्स पिआ अँणुदिअहं णीसहेहिँ अङ्गेहिं ।
णवसूअपीअपेऊसमत्तर्पाडिव्व किं सुवसि ॥ ६५ ॥
[यदि भवसि न तस्य प्रियाँनुदिवसं निःसहैरङ्गैः ।
नवसूतपीतपीयूषमत्तमहिषीवत्सेव किं स्वपिषि ॥]

१. 'गुच्छेक्क' इति क-ख-पाठः. २. 'परिलग्नम्' इति ग-पाठः. ३. 'खण्णुअणिलीण' इति क-पाठः. ४ 'देअउलम्' इति ग-पाठः. ५. 'उपरि दरदृष्टस्थाणुकनिलीन' इति ग-पाठः. ६. 'देवलकम्' इति क-पाठः. ७. 'ता दिअहं' इति ग-पाठः. ८. 'पड्डिव्व' इति ग-पाठः. ९. 'प्रिया तद्दिवसं' इति ग-पाठः.

जईति । यदि तस्य प्रिया न भवसि तर्हि निःसहैः सुरतश्रमखिन्नैरङ्गैरुपलक्षिता त्वं नवप्रसूतायाः पीतेन पीयूषेणाभिनवदुग्धेन मत्ता महिषीवत्सेव किं स्वपिषि । 'पीयूषं सप्तदिवसावधिक्षीरे तथामृते' इति मेदिनीकोषः । 'पीयूषममृते नव्यसूतधेनोः पयस्यपि' इति तु हैमः । सश्रमः सुरतजागर एव ते सौभाग्यं व्यनक्तीति भावः । पाडी महिषपोत इति देशी ॥

जनापवादभीता बन्धुवधूः प्रोषितपतिकां कुलटामाह—

हेमन्तिआसु [1]अइदीहरासु राईसु तं सि अविणिद्दा ।
चिरअरपउत्थवइए ण सुन्दरं जं दिआ सुवसि ॥ ६६ ॥

[[2]हैमन्तिकास्व[3]तिदीर्घासु रात्रिषु [4]त्वमस्यविनिद्रा ।
चिरतरप्रोषितपतिके न सुन्दरं यद्दिवा स्वपिषि ॥]

हेमन्तीति । अविनिद्रेति जागरहेतोः प्रियसंभोगस्याभावान्निद्राविच्छेदशून्येत्यर्थः । न सुन्दरम् असतीशङ्काहेतुत्वादयुक्तमित्यर्थः ॥

कर्दमभयादुत्प्लुत्य मम पदस्थाने तया पदं न्यस्तं न त्वनुरागादिति प्रियां निह्नुवानं काचिदाह—

जइ चिक्खल्लभउप्पअपअमिणमलसाइ तुह पए दिण्णम् ।
ता सुहअ कण्टइज्जन्तमङ्गमेह्णिं किणो वहसि ॥ ६७ ॥

[यदि कर्दमभ[5]योत्प्लुतपदमिदमलसया तव पदे दत्तम् ।
तत्सुभग [6]कण्टकितमङ्गमिदानीं [7]किमिति वहसि ॥]

जईति । अलसया मन्दगमनया । यदीयं तव प्रिया न भवति तदा कथमनया तव पदस्थाने स्पृष्टे रोमाञ्चस्ते जात इति भावः ॥

अत्यन्तमनुरक्तस्यापि दानविमुखस्य भुजंगस्योपालम्भार्थं दुहितृशिक्षार्थं च वेश्यामाताह—

पत्तो [8]छणो ण सोहइ अइप्पहाअम्मि पुण्णिमाअन्दो ।
अन्त विरसो अ कामो असंपआणो अ परिओसो ॥ ६८ ॥

[[9]प्राप्तः क्षणो न शोभते अति[10]प्रभात इव पूर्णिमाचन्द्रः ।
[11]अन्तविरस इव कामो असंप्रदानश्च परितोषः ॥]

---

१. 'अइदीहतरासु' इति क-पाठः. २. 'हैमनीषु' इति ग-पाठः. ३. 'अतिदीर्घतरासु' इति क-ख-पाठः. ४. 'त्वमसि विनिद्रा' इति ग-पाठः. ५. 'भयप्लुत' इति घ-पाठः. ६. 'कण्टकायमानं' इति घ-पाठः. ७. 'किं वहसि' इति घ-पाठः. ८. 'खणो' इति ख-पाठः. ९. 'प्राप्त उत्सवो' इति ग-पाठः. १०. 'प्रभाते पूर्णिमा' इति ग-पाठः. ११. 'अन्तविरसश्च' इति ग-पाठः.

पत्तो इति। प्राप्तोऽतिक्रान्तः क्षण उत्सवो न शोभते। तत्र दृष्टान्तः—अतिप्रभाते पूर्णिमाचन्द्र इव। संप्रदानरहितश्च परितोषो न शोभते। अत्र दृष्टान्तः—अन्तविरसः काम इव। एवं च 'अइप्पहाअव्व पुण्णिमाअन्दो। अन्तविरसोव्व कामो' इत्येव युक्तः पाठः॥

विज्ञा उपक्रम एव भद्रं विरुद्धं च जानन्तीति दर्शयन्कश्चिदाह—

पाणिग्गहणे व्विअ पव्वईएँ णाअं सहीहिँ सोहग्गम्।
पसुवइणा वासुइकङ्कणम्मि ओसारिए दूरम्॥ ६९॥

[पाणिग्रहण एव पार्वत्या ज्ञातं सखीभिः सौभाग्यम्।
पशुपतिना वासुकिकङ्कणेऽपसारिते दूरम्॥]

पाणीति। पार्वत्या भयपरिहारार्थं वासुकेरपसारणं दृष्ट्वा तस्यामनुरागातिशयरूपं सौभाग्यं ज्ञातमिति भावः॥

नवमेघोदयदर्शनाद्ग्रीष्मान्तस्यावधेर्लङ्घनं मत्वा दयितस्यान्यवनिताप्रसक्तिं संभाव्योद्विग्नायाः प्रोषितपतिकायाः समाश्वासनार्थं सखी आह—

गिम्हे दवग्गिमसिमइलिआइँ दीसन्ति विज्झसिहराइं।
आससु पउत्थवइए ण होन्ति णवपाउसब्भाइं॥ ७०॥

[ग्रीष्मे दवाग्निमषीमलितानि दृश्यन्ते विन्ध्यशिखराणि।
आश्वसिहि प्रोषितपतिके न भवन्ति नवप्रावृडभ्राणि॥]

कापि प्रथमसंगमेऽनुरागातिशयं दर्शयन्तं बहुवल्लभं कान्तमादिमध्यावसानेष्वेकरूपप्रणयानुवृत्त्यर्थमाह—

जेत्तिअमेत्तं तीरई णिव्वोढुं देसु तेत्तिअं पणअम्।
ण अणो विणिअत्तपसाअदुक्खसहणक्खमो सव्वो॥ ७१॥

[यावन्मात्रं शक्यते निर्वोढुं देहि तावन्तं प्रणयम्।
न जनो विनिवृत्तप्रसाददुःखसहनक्षमः सर्वः॥]

जेत्तिएति। विनिवृत्तो यः प्रसादः प्रणयस्तेन जातं यद्दुःखं तत्सहनक्षम इत्यर्थः। एतेनाननुभूतप्रणयखण्डना त्वदनुरक्ताहं त्वया प्रणयखण्डने कृते न जीवामीति सूचितम्॥

---

१. 'णाणं' इति ख-पाठः. २. 'दुःख' इति ग-पाठः. ३. 'निर्वाहयितुं ददस्व' इति ग-पाठः. ४. 'तावन्मात्रं' इति घ-पाठः.

'प्रिये, किमेवमद्यापि प्रणयवैमुख्यं तव' इति प्रियेणोक्ता मानिनी तस्याः स्थिरस्नेहतामात्मनश्चानुरागमाविष्कुर्वन्ती तमाह—

बहुवल्लहस्स जा होइ वल्लहा कह वि पञ्चदिअहाइं ।
सा किं [1]छट्ठं मग्गई कत्तो मिट्ठं अ [2]बहुअं अ ॥ ७२ ॥

[बहुवल्लभस्य या भवति वल्लभा कथमपि पञ्च दिवसानि ।
सा किं षष्ठं [3]मृगयते कुतो [4]मृष्टं च बहुकं च ॥]

बहु इति । बह्व्यो वल्लभा यस्य स बहुवल्लभस्तस्य या वल्लभा भवति सा कथंचित्पञ्चदिवसानि मृगयते । सा विदितकान्ताभिप्राया षष्ठं दिवसं किं मृगयते । नैव मृगयत इत्यर्थः । कुतो न मृगयत इत्याशङ्क्याह—कुतो मृष्टं च बहुकं चेति । सुकृतातिशयलभ्यमेतत् कुतो मे मन्दभाग्याया इत्याशयः । 'वा तु क्लीबे दिवसवासरौ' इत्यमरः । यद्वा अभिमतप्रियस्य सदा संभोगालाभात्खिद्यमानां नायिकां बोधयन्त्याः सख्या इयमुक्तिरिति ध्येयम् ॥

कापि पत्यावन्ययोषावकाशनिरासार्थं स्वसौभाग्यमात्मनश्च पत्यावनुरागमाह—

जं जं सो णिज्झाअइ [5]अङ्गोआसं महं अणिमिसच्छो ।
पच्छाएमि अ तं तं इच्छामि अ तेण दीसन्तम् ॥ ७३ ॥

[यद्यत्स निर्ध्यायत्य[6]ङ्गावकाशं ममानिमिषाक्षः ।
प्रच्छादयामि च तं तमिच्छामि च तेन दृश्यमानम् ॥]

जं जमिति । निर्ध्यायति पश्यति ॥

कलहान्तरितायाः सखी तत्कान्तमनुनयाय प्रोत्साहयितुमाह—

दिढमण्णुदू[7]मिआएँ वि गहिओ दइअम्मि पेच्छह इमाए ।
ओसरइ बालुआमुट्ठि [8]व्व माणो सुरसुरन्तो ॥ ७४ ॥

[दृढमन्युदूनयापि गृहीतो दयिते [10]प[9]श्यतानया ।
अपसरति वालुकामुष्टिरिव मानः सुरुसुरायमाणः ॥]

दिढेति । दृढमन्युदूनयाप्यनयया दयितया दयिते गृहीतो मानः सुरुसुरायमाणो वालुकामुष्टिरिवापसरतीत्यन्वयः ॥

---

१. 'मग्गइ छट्ठं' इति ग-पाठः. २. 'बहुलं' इति ख-पाठः. ३. 'मार्गयति' इति ग-पाठः. ४. 'मिष्टं' इति क-ख-पाठः. ५. 'अङ्गं आसम्मि मह' इति ग-पाठः. ६. 'अङ्गं पार्श्वे मम' इति ग-पाठः. ७. 'दुम्मिआए' इति ग-पुस्तके, 'दूणआइ' इति च ख-पुस्तके पाठः. ८. 'इव्व' इति ग-पुस्तके, 'ओव्व' इति च ख-पुस्तके पाठः. ९. 'दुर्मनस्कया' इति ग-पाठः. १०. 'प्रेक्षस्व' इति ग-पुस्तके, 'प्रेक्षध्वं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

सुरतासक्ता काचिच्चिररमणार्थं कान्तमन्यमनस्कं कर्तुमाह—

उअ पोम्मराअमरगअसंवलिआ णहअलाओ[1] ओ[2]अरइ ।
णहसिरिकण्ठब्भट्ठ व्व कण्ठिआ कीररिञ्छोली ॥ ७५ ॥

[पश्य पद्मरागमरकतसंवलिता नभस्तलादवतरति ।
नभःश्रीकण्ठभ्रष्टेव कण्ठिका कीरपङ्क्तिः ॥]

उएति । कीरपङ्क्तिर्नभस्तलादवतरतीति संबन्धः । नभःश्रियः कण्ठाद्भ्रष्टा कण्ठिकेवेत्युत्प्रेक्षा । कण्ठिका 'कण्ठा' इति ख्यात आभरणविशेषः । पद्मरागैर्मरकतैश्च संवलितेति कण्ठिकाविशेषणम् । शुकानां हरितवर्णत्वान्मरकतसाम्यम्, तत्तुण्डानां च लोहितत्वात्पद्मरागसाम्यं द्रष्टव्यम् ॥

कापि विदितदुश्चरितेन पत्या दुर्गस्थानाभिरुद्धा जारप्रहितां दूतीमन्यापदेशेनाह—

ण वि तह वि[3]एसवासो दो[4]गच्चं मह जणेइ संतावम् ।
आसंसिअत्थवि[5]मणो जह पणइजणो णिअत्तन्तो ॥ ७६ ॥

[नापि तथा विदेशवासो दौर्ग[6]त्यं मम जनयति संतापम् ।
आशंसितार्थविमनो यथा प्रणयिजनो निवर्तमानः ॥]

णवीति । विदेशे कुग्रामे बन्धनस्थाने च वासोऽवस्थानम्, दौर्गत्यं दारिद्र्यं गतिनिरोधश्च मम तथा संतापं न जनयति यथा आशंसिते आशावेशयुक्ते अर्थे धने प्रियसंगमे च विमना निष्प्रत्याशः सन्निवर्तमानः प्रणयिजनः सप्रश्रयो बन्धुजनः कान्तप्रहितदूतीजनश्च। इदानीं नाभिसर्तुं समयस्तेन निवर्तस्वेति जारं प्रत्युक्तिर्वा ॥

पथिकच्छलेनालिन्दकोषितस्य जारस्य रताभिलाषं सूचयन्ती दूती कुलटामाह—

खन्धग्गिणा वणेसुं तणेहिँ गामम्मि रक्खिओ पहिओ ।
णअरवसिओ ण[7]डिज्जइ साणुसएण व्व सीएण ॥ ७७ ॥

[स्कन्धाग्निना वनेषु तृणैर्ग्रामे रक्षितः पथिकः ।
नगरोषितः खे[8]द्यते सानुशयेनेव शीतेन ॥]

खन्धेति। स्कन्धाग्निना बृहत्काष्ठाग्निना। 'स्कन्धाग्निः स्थूलकाष्ठाग्निः' इति हारावली। खेद्यते इत्यर्थे णडिज्जइ इति देशी। अस्यां शिशिरनिशायामनन्यगतिकस्यास्य पथिकवराकस्य त्वमेव शरणमिति भावः। यद्वा नगरे तृणकाष्ठादेर्दुर्लभत्वान्नागरिकाणां च निर्द-

---

१. 'णहअलाहि' इति क-पुस्तके, 'णहअलाउ' इति च ग-पुस्तके पाठः. २. 'ओसरइ' इति क-पाठः. ३. 'विदेस' इति क-पाठः. ४. 'दोगच्चं व्व' इति ग-पाठः. ५ 'विमुहो' इति क-ख-पाठः ६ 'दौर्गत्यं वा' इति ग-पाठः. ७. 'णणिज्जइ' इति ग-पाठः. ८. 'न नीयते' इति ग-पुस्तके, 'न खेद्यते' इति च घ-पुस्तके पाठः.

यत्वाच्छीतभीतस्य तव मत्संनिधौ स्वाप एव शरणमिति स्वयंदूत्याः पथिकं प्रति स्वाशयाविष्करणमेतत् ॥

नागरिकः कामिन्यन्तरप्रलोभनार्थमात्मनो विदग्धकामुकतां दृढस्नेहतां च प्रकाशयन्नाह—

भरिमो से गहिआहरधुअसीस[1]पहोलिरालआउलिअम्।
वअणं परिमलतरलिअभमरालिपइण्णकमलं व ॥ ७८ ॥
[स्मरामस्[2]तस्या गृहीताधर[3]धुतशीर्ष[4]प्रघूर्णनशीलालकाकुलितम्।
वदनं परिमलतरलितभ्रमरालिप्रकीर्णकमलमिव ॥]

भरिमो इति। दशनक्षतार्थं गृहीतेऽधरे धुते शीर्षे प्रघूर्णनशीलैरलकैराकुलितं परिमलेन तरलिता इतस्ततो भ्रमन्ती या भ्रमराणामालिः पङ्क्तिस्तया प्रकीर्णं व्याप्तं कमलमिव स्थितं तस्या वदनं स्मराम इति संबन्धः ॥

सहचरप्रलोभनार्थं विटः कस्याश्चित्सौभाग्यगर्वसूचकं बिब्बोकमाह—

हल्लफलह्णाणपसाहिआणँ छणवासरे सवत्तीणम्।
[5]अज्जाएँ मज्जणाणाअरेण कहिअं व सोहग्गम् ॥ ७९ ॥
[[6]उत्साहतरलत्वस्नानप्रसाधितानां [7]क्षणवासरे सपत्नीनाम्।
[8]आर्यया [9]मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम् ॥]

हल्लेति। हल्लफलमुत्साहतरलत्वम्। तेन स्नानप्रसाधितानां क्षणवासरे उत्सवदिवसे सपत्नीनां मध्ये आर्यया श्रेष्ठयुवत्या मज्जनानादरेण स्नानावज्ञया सौभाग्यं कथितमिव। बिब्बोकाख्येनालंकारेण सौभाग्यप्रकटनादिति भावः। तल्लक्षणं च साहित्यदर्पणे—'बिब्बोकस्त्वतिगर्वेण वस्तुनीष्टेऽप्यनादरः' इति। हल्लफलशब्दः कदुष्णजलवाचक इति केचित्। पाठान्तरे तु मार्जनं प्रसाधनं तत्रानादरेणावज्ञयेति व्याख्येयम् ॥

कांचिद्धरिद्रादिना स्नानीयद्रव्येण कृतस्नानां केशसंमार्जनेन प्रकटितकुचबाहुमूलां कमनीयदर्शनामुद्दिश्य कश्चित्सस्पृहमाह—

ह्णाणहलिद्दाभरिअन्तराइँ जालाइँ जालवलअस्स।
सोहन्ति [10]किलिञ्चिअकण्टएण कं काहिसी कअत्थम् ॥ ८० ॥

---

१. 'पहुणआलआ' इति क-पाठः. २. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ३. 'धूत' इति घ-पाठः. ४. 'प्रघूर्णमान' इति ग-पाठः. ५. 'अज्जाइ' इति क-ख-पाठः. ६ 'किंचिदुष्णसुगन्धिचिक्कणजलस्नान' इति ग-पुस्तके, 'हारिद्रजलस्नान' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'उत्सववासरे' इति ग-पाठः. ८. 'ईश्वरसुतया' इति ग-पाठः. 'हल्लफलशब्दः कोष्णचिक्कणसुगन्धजले, अज्जाशब्दश्च देशी ईश्वरसुतायां वर्तते' इति कुलबालदेवव्याख्यानम्. ९. 'मज्जनानादरेण मार्जनानादरेण वा' इति ख-पाठः. १०. 'किलिञ्चिअ' इति क-पाठः.

[स्नानहरिद्राभृतान्तराणि जालानि जालवलयस्य ।
शोधयन्ती क्षुद्रकण्टकेन कं करिष्यसि कृतार्थम् ॥]

स्नाणेति । जालवलयं केशसंमार्जनी तस्या जालानि । किलिञ्चिअं सूक्ष्मकाष्ठं तदेव सूक्ष्माग्रत्वात्कण्टकस्तेन शोधयन्ती कं कृतार्थं करिष्यसीति साधारणशब्दप्रयोगात्तस्याः कुलटात्वं व्यज्यते । यद्वा कमिति काक्वा न कमपीति लभ्यते । कङ्कतिकासंस्कारेणैव कालातिपातादिति भावः । अथवा उद्वर्तनलग्नवलयमलापनयनप्रयत्नानुमितविशुद्धिस्नानां पुष्पवतीं प्रति साभिलाषस्य नागरिकस्येयमुक्तिः । अत्र जालप्रधानस्य वलयस्य कङ्कणस्य जालानि शोधयन्ती संधिलग्नं मलमपनयन्ती कं कृतार्थं करिष्यसि । त्वत्संगमेनाद्य कस्य जन्म सफलं भविष्यतीति भावः ॥

नायकस्य प्रवासनिषेधार्थं सततोपभोगेऽप्यवैरस्यार्थं खलवचनस्याग्रहणार्थमकारणस्नेहविच्छेदपरिहारार्थं च विदग्धनायिका, तत्सखी वा गाथाद्वयेनाह—

अद्दंसणेण पेम्मं अवेइ अइदंसणेण वि अवेइ ।
पिसुणजणजम्पिएण वि अवेइ एमेअ वि अवेइ ॥ ८१ ॥

[अदर्शनेन प्रेमापैत्यतिदर्शनेनाप्यपैति ।
पिशुनजनजल्पितेनाप्यपैत्येवमेवाप्यपैति ॥]

पूर्वगाथामेव स्फुटीकर्तुमाह—

अद्दंसणेण महिलाअणस्स अइदंसणेण णीअस्स ।
मुक्खस्स पिसुणअणजम्पिएण एमेअ वि खलस्स ॥ ८२ ॥

[अदर्शनेन महिलाजनस्यातिदर्शनेन नीचस्य ।
मूर्खस्य पिशुनजनजल्पितेनैवमेवापि खलस्य ॥]

अद्दंसणेणेति । महिलेति स्त्रीणां लघुहृदयत्वादिति भावः । नीचस्येति न तु त्वद्विधसत्पुरुषस्येति भावः । मूर्खस्येति न तु विज्ञस्येत्याशयः । एवमेवापि कारणं विनापि । खलस्य न तु त्वद्विधसुजनस्येति भावः ॥

प्रथमगर्भायाः सुभगायाः स्तनकालिमकथनच्छलेन प्रसवानन्तरं भाविस्तनपतनोत्तरकालमपि स्नेहानुवर्तनमङ्गीकारयितुं सखी तत्कान्तमाह—

पोट्टपडिएहिँ दुःखं अच्छिज्जइ उण्णएहिँ होऊण ।
इअ चिन्तआणँ मण्णे थणाणँ कसणं मुहं जाअम् ॥ ८३ ॥

---

१. 'वंशकण्टकेन' इति ग-पाठः. 'किलिञ्चिअशब्दो वंशे, जालवलयशब्दश्च केशपरिष्कारकद्रव्यविशेषे, जालशब्दश्च कङ्कतिकाखाते वर्तते' इति कुलबालदेवः. २. 'इत्थमेव' इति ग-पाठः.

[उदरपतिताभ्यां दुःखं स्थीयत उन्नताभ्यां भूत्वा ।
इति चिन्तयतोर्मन्ये स्तनयोः कृष्णं मुखं जातम् ॥]

पोट्टेति । लोकेऽपि यः प्रथमं प्रणयबहुमानादिना उन्नतो भूत्वा दैववशाद्दुर्गतः सन्नुदरभरणव्यग्रो भवति तस्यापि चिन्तया मुखं श्यामं भवतीति ध्वनिः ॥

अभियोज्यामभियोगं ग्राहयितुं दूती नायकस्यानुरागातिशयमाह—

सो तुज्झ कए सुन्दरि तह छीणो सुमहिलो हलिअउत्तो ।
जह से मच्छरिणीएँ वि दोच्चं जाआएँ पडिवण्णम् ॥ ८४ ॥

[स तव कृते सुन्दरि तथा क्षीणः सुमहिलो हालिकपुत्रः ।
यथा तस्य मत्सारिण्यापि दूत्यं जायया प्रतिपन्नम् ॥]

सो इति । सुमहिल इत्यनेन रूपवद्भार्योऽपि त्वय्यनुरक्त इति नायिकास्तुतिर्ध्वन्यते । हालिकपुत्र इत्यनेनार्जवं धनिकत्वं च प्रवृत्त्यङ्गं दर्शयति । मत्सरिण्यापि दूत्यं प्रतिपन्नं पतिमरणभयादिति भावः । तद्यदि नानुमन्यसे तदा पुरुषवधपातकं ते भविष्यतीत्याशयः ॥

कलहान्तरिता चिरागते कान्ते सस्नेहोपालम्भमाह—

दक्खिण्णेण वि एन्तो सुहअ सुहावेसि अम्ह हिअआइं ।
णिक्कइअवेण जाणं गओ सि का णिव्वुदी ताणम् ॥ ८५ ॥

[दाक्षिण्येनाप्यागच्छन्सुभग सुखयस्यस्माकं हृदयानि ।
निष्कैतवेन यासां गतोऽसि का निर्वृतिस्तासाम् ॥]

दक्खिण्णेणेति । यासां समीपमिति शेषः ॥

पतिं प्रत्यन्ययोषावकाशनिरासार्थं स्वाधीनभर्तृका ताडितस्यापि प्रियस्योपचारातिशयं प्रथयन्ती स्वसौभाग्यमाह—

एक्कं पहरुव्विण्णं हत्थं मुहमारुएण वीअन्तो ।
सो वि हसन्तीएँ मए गहिओ बीएण कण्ठम्मि ॥ ८६ ॥

[एकं प्रहारोद्विग्नं हस्तं मुखमारुतेन वीजयन् ।
सोऽपि हसन्त्या मया गृहीतो द्वितीयेन कण्ठे ॥]

एक्कमिति । प्रहारेणोद्विग्नमेकं मदीयं हस्तं मुखमारुतेन वीजयन्स मयापि द्वितीयेन हस्तेन कण्ठे गृहीत इति संबन्धः ॥

---

१. 'आस्यते उन्नतैर्भूत्वा' इति घ-पाठः. २. 'तुह कएण' इति ग-पाठः. ३. 'झीणो' इति क-पुस्तके, 'झिण्णो' इति च ख-पुस्तके पाठः. ४. 'तव कृतेन' इति ग-पाठः. ५. 'प्रहारघातं' इति घ-पाठः.

केलिकलहनिष्क्रान्तां कान्तानुगम्यमानां नायिकां निवर्तयितुं तत्सखी आह—

अवलम्बिअमाणपरम्मुहीएँ एन्तस्स माणिणि पिअस्स ।
पुट्ठपुलउग्गमो तुह कहेइ संमुहट्ठिअं हिअअम् ॥ ८७ ॥

[अवलम्बितमानपराङ्मुख्या आगच्छतो मानिनि प्रियस्य ।
पृष्ठपुलकोद्गमस्तव कथयति संमुखस्थितं हृदयम् ॥]

अवेति । अवलम्बितेन मानेन पराङ्मुख्याः न तु पारमार्थिकेनेति भावः । तव पृष्ठपुलकोद्गमः संमुखस्थितं हृदयमागच्छते प्रियाय कथयतीति संबन्धः । तदलीकरोषमिमं त्यजेत्याशयः ॥

दीर्घोद्भटरोषां मानिनीं शिक्षयितुं सखी मानिन्यन्तररस्तुतिमाह—

जाणइ जाणावेउं अणुणअविंद्दविअमाणपरिसेसम् ।
अइरिक्कम्मि वि विणआवलम्बणं सच्चिअ कुणन्ती ॥ ८८ ॥

[जानाति ज्ञापयितुमनुनयविद्रावितमानपरिशेषम् ।
विजनेऽपि विनयावलम्बनं सैव कुर्वती ॥]

जाणईति । विजनेऽपि एकान्तेऽपि । रतिसमये इति यावत् । विनयावलम्बनं कटाक्षभुजप्रक्षेपाद्यकरणात् धाष्टर्यपरिहारं कुर्वती सैव अनुनयेन विद्रावितस्य दूरीकृतस्य मानस्य परिशेषमवशेषं ज्ञापयितुं जानाति । नान्येत्यर्थः । मानिनी मानावस्थायामपि प्रियमेवानुवर्तते न तु त्वमिव परिभवतीति भावः ॥

एकस्यामेवानुरक्तं बहुवल्लभं नायकमुद्दिश्य कापि कृष्णव्याजेनाह—

मुहमारुएण तं कह्न गोरअं राहिआएँ अवणेन्तो ।
एताणँ बल्लवीणं अण्णाणँ वि गोरअं हरसि ॥ ८९ ॥

[मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन् ।
एतासां बल्लवीनामन्यासामपि गौरवं हरसि ॥]

मुहेति । हे कृष्ण, त्वं मुखमारुतेन राधिकाया गोरजश्चक्षूरजोऽपनयन् । चक्षुःप्रविष्टरजोऽपनयनच्छलेन चुम्बन्नित्यर्थः । एतासां पुरोवर्तिनीनामन्यासामपि बल्लवीनां

---

१. 'पुट्ठि' इति ख-पाठः. २. 'उग्गओ' इति क-पाठः. ३. 'सम्मुहट्ठिअं' इति क-पुस्तके, 'समुहट्ठिअं' इति च ख-पुस्तके पाठः. ४. 'विद्दाविइ' इति क-पाठः. ५. 'वीरेकामे वि' इति ख-पुस्तके, 'पइ रिक्कव्विअ' इति च ग-पुस्तके पाठः. ६. 'अतिरिक्तमेव' इति ग-पाठः. 'पइरिकशब्दोऽतिरिक्ते। पइरिकेति विजने देशीति केचित्। तदा पइरिक्कम्मि वि इति पाठः । विजनेऽपीत्यर्थः ।' इति कुलबालदेवः. ७. 'सत्यं' इति घ-पाठः. ८. 'एआणं' इति ख-ग-पाठः. ९. 'राधाया' इति ग-पाठः.

गौरवं हरसि । सौभाग्यगर्वखण्डनादिति भावः । यद्वा गोरअं गौरतां हरसि । अपमानेन कृष्णीकरणादिति भावः ॥

खण्डिता बहुशः कृतापराधं क्षमस्वेति वदन्तं कान्तमाह—

किं दाव कआ अहवा करेसि [1]कारिस्सि सुहअ एत्ताहे ।
अवराहाणँ अलज्जिर [2]साहसु कअए खमिज्जन्तु ॥ ९० ॥
[किं तावत्कृता अथवा करोषि [3]करिष्यसि सुभगेदानीम् ।
अपराधानाम[4]लज्जाशील कथय कतरे क्षम्यन्ताम् ॥]

किमिति । ये पूर्वं कृता यानिदानीं करोषि करिष्यसि वा एतेषां भूतवर्तमानभविष्यतां मध्ये कतरे अपराधाः क्षम्यन्ताम् । न केऽपि क्षन्तुं शक्यन्त इति निषेधमुखेन के वा न सोढास्तवापराधा इति ध्वनितम् ॥

दूती दुर्विदग्धं नायकं शिक्षयितुमाह—

[5]णूमेन्ति जे [6]पहुत्तं कुविअं [7]दासा व्व जे पसाअन्ति ।
ते व्विअ महिलाणँ पिआ सेसा सामि व्विअ वराआ ॥ ९१ ॥
[गो[8]पायन्ति ये प्रभुत्वं कुपितां [9]दासा इव ये प्रसादयन्ति ।
त एव महिलानां प्रियाः शेषाः स्वामिन एव वराकाः ॥]

णूमेन्तीति । ये स्वकीयं प्रभुत्वं कान्ताविषये गोपायन्ति न प्रकटयन्ति । दण्डादिकं न प्रयुञ्जत इत्यर्थः । ये च कुपितां नायिकामनुनयपूर्वकं प्रसादयन्ति त एव महिलानां प्रिया वल्लभाः । शेषाः ततोऽन्ये दण्डप्रयोक्तारोऽनुनयपराङ्मुखाश्च महिलानां स्वामिन एव । न तु वल्लभा इत्यर्थः । वराकाः प्रेमसद्भावाप्राप्त्या शोच्या इत्यर्थः ॥

पूर्वमादरेण प्रवृत्तं पश्चाद्गर्भदशायामुदासीनं नायकमुपालब्धुं दूती भ्रमरापदेशेनाह—

तइआ कअग्घ महुअर ण रमसि अण्णासु [10]पुप्फजाईसु ।
बद्धफलभारगुरुइं मालइँ एह्निं परिच्चअसि ॥ ९२ ॥
[[11]तदा कृतार्घ मधुकर न रमसेऽन्यासु पुष्पजातिषु ।
बद्धफलभारगुर्वीं मालतीमिदानीं परित्यजसि ॥]

---

१. 'कारिसि' इति क-ग-पाठः. २. 'कहेसु' इति ग-पाठः. ३. 'करिष्यसि वा सुभग एतावत्काले' इति ग-पाठः. ४. 'निर्लज्ज' इति ग-पुस्तके, 'अलज्जाशीलायां स कतरे' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'ण कुणन्ति इति ग-पाठः. ६. 'पहुत्थं' इति ख-पाठः. ७. 'दासव्व' इति ख-ग-पाठः. ८. 'न कुर्वन्ति' इति ग-घ-पाठः. ९. 'दासवत्' इति ग-पाठः. १० 'पुष्पजाइसु' इति ग-पाठः. ११. 'तदा कृतघ्न' इति ग-पुस्तके, 'तया कृतार्थे' इति च घ-पुस्तके पाठः.

तइआ इति । कृतोऽर्घः पूजाविधिर्येन । कृतादरेति यावत् । 'मूल्ये पूजाविधावर्घः' इत्यमरः । 'किअग्घ' इति पाठे कृतघ्नेत्यर्थः । बद्धेन फलभारेण गुर्वीमित्यनेन लताया मकरन्दराहित्यं नायिकायाश्च विपरीतरताक्षमत्वं व्यज्यते । तेन प्रथमं तथा चाटुशतप्रपञ्चितप्रणयस्य तवेदं स्वार्थपरतामात्रमनुचितमित्युपालम्भो व्यङ्ग्यः । संप्रति नोपभोगयोग्येति जारं प्रति दूत्या उक्तिरिति कश्चित् ॥

नागरिकानुरोधेन प्रतिपन्नदूतीभावया मातुलान्या कथितसौन्दर्यं तं प्रत्यनुरक्ता नायिका तामाह—

अविअह्लपेक्[1]खणिज्जेण तक्खणं मामि तेण दिट्ठेण ।
सिविणअपीएण व पाणिएण तह्न व्विअ ण फिट्टा ॥ ९३ ॥

[अवितृष्णप्रेक्षणीयेन तत्क्षणं मातुलानि[2] तेन दृष्टेन ।
स्वप्नपीतेनेव पानीयेन तृष्णैव न[3] भ्रष्टा ॥]

अवीति । अथ वा तत्रैव स्थितं जारं प्रत्यन्यापदेशेन त्वद्दर्शनाभिलाषो मम न गत इति व्यज्यते ॥

संकेतस्थानान्तरानुसरणाय जारं प्रति प्रथमसंकेतभङ्गं श्रावयन्ती कुलटा सुजनप्रशंसाछलेनाह—

सुअणो[4] जं देसमलंकरेइ तं विअ करेइ पवसन्तो ।
गामासण्णुम्मूलिअमहावडट्ठाणसारिच्छम् ॥ ९४ ॥

[सुजनो यं देशमलंकरोति तमेव करोति प्रवसन् ।
ग्रामासन्नोन्मूलितमहावटस्थानसदृक्षम्[5] ॥]

सुअणो इति । सुजनो यं देशं निवासेनालंकरोति तमेव देशं प्रवसन्सन् ग्रामासन्न उन्मूलितो यो महावटस्तत्स्थानसदृशं करोतीत्यर्थः । यथा प्रोषितसुजनो देशो रहोवृत्तविश्रामाद्यभावाद्विदग्धान्दुःखयति तथा उन्मूलितवटस्थानमपि दुःखयतीत्यर्थः ॥

स्मर्तव्योऽहमिति गमनसमये वदन्तं भविष्यत्पथिकं प्रति प्रिया आह—

सो णाम संभरिज्जइ पब्भसिओ जो खणं[6] पि हिअआहि ।
संभरिअव्वं च कअं गअं च पेम्मं णिरालम्बम् ॥ ९५ ॥

[स नाम संस्मर्यते प्रभ्रष्टो यः क्षणमपि हृदयात् ।
स्मर्तव्यं[7] च कृतं गतं च प्रेम निरालम्बम् ॥]

१. 'पेछणिज्जेण' इति ख-ग-पाठः. २. 'भगिनि' इति ग-पुस्तके, 'अतुलितेन' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'नापगता' इति ग-घ-पाठः. ४. 'सुजणो' इति क-पाठः. ५. 'सदृशम्' इति ग-घ-पाठः. ६. 'खणम्मि हिअआहिं' इति ग-पाठः. ७. 'स्मरणीयं च' इति ग-पुस्तके, 'संस्मृत्ययं च कृतं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

सो इति । प्रेम यदैव स्मर्तव्यमर्थात्प्रियस्मरणार्हं कृतं तदैव निरालम्बं सद्गतम् । निराश्रयत्वान्नष्टमिति भावः ॥

दूती मन्दस्नेहं विरलदर्शनं नायकं नायिकानुरागकथनेनानुकूलयितुमाह—

णासं व सा कवोले अज्ज वि तुह दन्तमण्डलं बाला ।
उब्भिण्णपुलअवइवेढपरिगअं रक्खइ वराई ॥ ९६ ॥

[न्यासमिव सा कपोलेऽद्यापि तव दन्तमण्डलं बाला ।
उद्भिन्नपुलकवृतिवेष्टपरिगतं रक्षति वराकी ॥]

णासमिति । बाला प्रथमं त्वत्कृतशीलखण्डना सा वराकी उद्भिन्नपुलकवृतिमण्डलेन परिगतं सर्वतो वेष्टितं तव दन्तमण्डलं मण्डलाकारं दन्तक्षतं न्यासनिक्षेपमिवाद्यापि रक्षति । शठे त्वयि तस्यास्तादृशोऽनुरागो न युक्त इति वराकीपदेन ध्वन्यते । तदेवमनुरक्तामनुकम्पार्हामनुवर्तस्वेति भावः ॥

कार्यगौरवलङ्घितावधिस्ते वल्लभस्तत्समाह्यनन्तरमेवागमिष्यतीत्याश्वासयन्तीं मातुलानीं प्रोषितभर्तृका सनिर्वेदं सासूयं चाह—

दिट्ठा चूँआ अग्घाइआ सुरा दक्खिणाणिलो सहिओ ।
कज्जाइं व्विअ गरुआइँ मामि को वल्लहो कस्स ॥ ९७ ॥

[दृष्टाश्चूता आघ्राता सुरा दक्षिणानिलः सोढः ।
कार्याण्येव गुरुकाणि मातुलानि को वल्लभः कस्य ॥]

दिट्ठेति । मन्मथोन्मादहेतव आम्राङ्कुरा दृष्टाः । वसन्ते कान्तेन सह पानकेलिशीलनार्थं परिष्कृतायाः सुराया गन्धोऽनुभूतः । मलयानिलः सोढः । अतः कार्याण्येव गुरुकाणि । दुःखैकभागिन्या मम जीवितस्य एतान्येव महान्ति प्रयोजनानि । एतदनुभवार्थमेव हतजीवितं न त्यजामि । तथा च कः कस्य वल्लभः । येनाद्यापि तद्विरहे जीवामीत्यात्मानं प्रति निर्वेदो व्यज्यते । यद्वा कार्याण्येव गुरुकाणीति युवत्यन्तरसमागमं सूचयन्त्याः स्वयंदूत्या उक्तिरिति कश्चित् । कार्याण्येव तस्य बहुमतानि कथमन्यथा वसन्तेऽपि नागत इति भावः । किं च वाल्लभ्यमपि कार्यनिबन्धनं न तु स्वभावसिद्धमित्यभिप्रेत्याह—को वल्लभः कस्येति । तयैव संनिहितया तस्य प्रयोजनं न तु व्यवहितया मयेति वल्लभं प्रत्यसूया व्यज्यते । नायकान्तरविमोहनाय स्वनायके वैराग्यं सूचयन्त्याः स्वयंदूत्या उक्तिरियमिति कश्चित् ॥

---

१. 'वेष्टन' इति क-ख-पाठः. २. 'सूआ' इति ग-पाठः. ३. 'नूता' इति घ-पाठः. ४. 'भगिनि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः.

सदा संनिहितपतिके न त्वमभिज्ञासि प्रवासगतप्रियप्रेमनिर्भरसुरतविलसितानामिति सख्योक्ता स्वाधीनभर्तृका तामाह—

रमिऊण पअं पि गओ जाहे [1]उवऊहिउं पडिणिउत्तो ।
अह अं [2]पेउत्थपइआ व्व तक्खणं सो पवासि व्व ॥ ९८ ॥

[[3]रन्त्वा पदमपि गतो यदो[4]पगूहितं [5]प्रतिनिवृत्तः ।
[6]अहं प्रोषितपतिकेव तत्क्षणं स प्रवासीव ॥]

रमिऊणेति । मानं धत्स्वेति बोधयन्तीं सखीं प्रति स्वस्य मानासामर्थ्यं प्रकाशयन्त्या नायिकाया उक्तिरिति कश्चित् ॥

कस्मिन्नपि यूनि जाताभिलाषा कुलटा निजपतिं प्रति वैराग्यं व्यञ्जयन्ती तमाह—

[7]अविइह्णपेच्छणिज्जं समसुहदुःखं विइण्णसब्भावम् ।
अण्णोण्णहिअअलग्गं पुण्णेहिँ जणो जणं लहइ ॥ ९९ ॥

[अवितृष्णप्रेक्षणीयं समसुखदुःखं वितीर्णसद्भावम् ।
अन्योन्यहृदयलग्नं पुण्यैर्जनो जनं लभते ॥]

अवीति । मम त्वत्कृतपुण्यायाः कुत एवंविधप्रियप्राप्तिरित्याशयः । मन्दस्नेहस्य पत्युश्चित्तमनुकूलयितुं पतिव्रताया इयमुक्तिरिति कश्चित् ॥

कथं दुःखप्रदेऽपि पत्यौ न विरक्तासीति भेदयन्तीं दूतीं प्रत्याख्यातुं पतिव्रता पत्यावनुरागातिशयमाह—

दुःखं देन्तो वि सुहं जणेइ जो जस्स वल्लहो होइ ।
दइअणह[8]दूणिआणं वि वड्ढइ [9]थणाणँ रोमञ्चो ॥ १०० ॥

[दुःखं ददद‍पि सुखं जनयति यो यस्य वल्लभो भवति ।
दयितनख[10]दूनयोरपि वर्धते स्तनयो रोमाञ्चः ॥]

---

१. 'अवऊहिउं पडिणिअत्तो' इति ग-पाठः. २. 'पढल्लवइअव्व' इति ग-पाठः. ३. 'रमित्वा' इति ग-पुस्तके, 'रमयित्वा' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'अवगूहितुं' इति ग-घ-पाठः. ५. 'प्रतिनिवर्तमानः' इति ग-पाठः. ६. 'अथाहं' इति ग-पाठः. ७. कुलबालदेवस्त्वस्या गाथायाः प्राक् 'धण्णा बहिरा अन्धा ते व्विअ जीअन्ति माणुसे लोए। ण सुणन्ति पिसुणवअणं खलाण ऋद्धिं ण पेक्खन्ति ॥' [धन्या बधिरा अन्धास्त एव जीवन्ति मानुषे लोके । न श्रृण्वन्ति पिशुनवचनं खलानामृद्धिं न प्रेक्षन्ते ॥]' इत्येकां गाथामधिकां पठति । घ-पुस्तकेऽप्यस्या गाथाया 'धन्या बधिरा–' इत्यादिच्छाया वर्तते. ८. 'दुम्मिआणं' इति ग-पाठः. ९. 'थणआणं' इति ग-पाठः. १०. 'दुर्मनस्कयोरपि' इति ग-पाठः. घ-पुस्तके 'दुःखं दददपि–' इत्यादिगाथाछाया द्वितीयशतकप्रारम्भे लिखितास्ति.

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मविए ।
सत्तसअम्मि समत्तं पढमं गाहासअं एअम् ॥ १०१ ॥
[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्तं प्रथमं गाथाशतकमेतत् ॥]

द्वितीयं शतकम् ।

[1]मानमवलम्ब्य पत्युरनुनयसुखं तावदनुभवेति स्वसखीं शिक्षयेति वदन्तीं कामपि सखी सपरिहासमाह—

[2]धरिओ धरिओ विअलइ उअएसो पिहसहीहिँ दिज्जन्तो ।
मअरद्धअबाणपहारज[3]ज्जरे तीएँ हिअअम्मि ॥ १ ॥
[धृतो धृतो विगलत्युपदेशः प्रियसखीभिर्दीयमानः ।
मकरध्वजबाणप्रहारजर्जरे तस्या हृदये[4] ॥]

धृतो धृतः पुनः पुनर्धृतः । विगलति नावतिष्ठते ॥

नदीतटनिकुञ्जे दत्तसंकेतेन कान्तेन विप्रलब्धा नायिका तत्रात्मगमनं नदीपूरेण संकेतस्थानभङ्गं स्त्रीजातेश्च प्रेमानुबन्धदार्ढ्यं जारं प्रति श्रावयन्ती स्वसखीमाह—

तडसंठिअणीडेक्कन्तपीलुआरक्खणेक्कदिण्णमणा ।
अगणिअविणिवाअभआ पूरेण समं वहइ काई ॥ २ ॥
[तटसंस्थितनीडैकान्तशा[5]वकरक्षणैकदत्तमनाः ।
अगणितविनि[6]पातभया पूरेण समं वहति काकी ॥

तटसंस्थितस्य नोडस्यैकान्ते विद्यमाना ये शावकास्तेषां रक्षणे दत्तं मनो यया एतादृशी काकी अगणितविनिपातभया तरुणा सहैवानन्तरभावि स्वस्य मज्जनमगणयन्ती सती पूरेण नवजलौघेन समं वहति ॥

---

१. कुलबालदेवस्तु अस्मिन्नेव शतके वर्तमानामेकपञ्चाशत्संख्याकाम् 'तं णमह जस्स वच्छे—' इत्यादिगाथामत्र द्वितीयशतकारम्भे मङ्गलाचरणत्वेन पठति. २. 'धरिअ धरिओ वि' इति क-पुस्तके, 'धिरिअं धिरिअं' इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. 'जज्जरिए' इति क-पाठः. ४. घ-पुस्तके 'धृतो धृतो—' इत्यादिगाथाच्छायानन्तरं 'करयुगगृहीतयशोदास्तनभरनिवेशिताधरदलस्य । संस्मृतपाञ्चजन्यस्य नमत कृष्णस्य रोमाञ्चम् ॥' इयं गाथाच्छायाधिकास्ति. ५. 'पीलुकरक्षणैक' इति ग-पाठः. 'पीलुकः शावकः' इति कुलबालदेवः. ६. 'विनिपातभरा' इति घ-पुस्तकपाठः.

मधूकपुष्पावचयव्याजेन कृताभिसारा कुलटा जारं प्रत्यात्मनश्चिररताभिलाषं सूचयन्ती मधूकतरुमाह—

बहुपुप्फभरोणामिअभूमीगअसाह सुणसु विण्णत्तिम् ।
गोलातडविअडकुडङ्गमहुअ सणिअं गलिज्जासु ॥ ३ ॥

[बहुपुष्पभरावनामितभूमीगतशाख शृणु विज्ञप्तिम् ।
गोदातटविकटनिकुञ्जमधूक शनैर्गलिष्यसि ॥]

बहुपुष्पभरेणावनमिता भूमिगताः शाखा यस्येति मधूकविशेषणम् । शनैः क्रमेण गलिष्यसीत्यनेन चिरं मया ते संगमो भविष्यतीति सूचितम् ॥

कस्याश्चिन्मधूककुसुमावचयप्रसङ्गेन मधूकतरुसमीपनिकुञ्जः संकेतस्थानमासीत् । स च क्रमेण कुसुमापगमे सति भग्न इति परिशिष्टकुसुमावचयं कुर्वतीं रुदतीं दृष्ट्वा नागरिकः सहचरमाह—

णिप्पच्छिमाइँ असई दुःखालोआइँ महुअपुप्फाइं ।
चीए बन्धुस्स व अट्ठिआइँ रुअई समुच्चिणइ ॥ ४ ॥

[निष्पाश्चिमान्यसती दुःखालोकानि मधूकपुष्पाणि ।
चितायां बन्धोरिवास्थीनि रोदनशीला समुच्चिनोति ॥]

निष्पश्चिमानि परिशिष्टानि । दुःखालोकानि तदवचयव्याजलभ्यजारसमागमस्य तदपाये दुर्लभत्वादिति भावः ॥

नायकस्यास्थिरप्रेमतया तद्वचनमस्वीकुर्वतीं नायिकामभिमुखीकर्तुं कश्चिद्विदग्ध आह—

ओ हिअअ मडहसरिआजलरअहीरन्तदीहदारु व्व ।
ठाणे ठाणे व्विअ लग्गमाण केणावि डज्झिहसि ॥ ५ ॥

[हे[4] हृदय स्वल्पसरिज्जलरयह्रियमाणदीर्घदारुवत् ।
स्थाने स्थाने एव लगत्केनापि धक्ष्यसे ॥]

स्वल्पसरितो जलरयेण ह्रियमाणं काष्ठं यथा स्थले स्थले लगत्केनापि दह्यते तथा त्वमपि कस्यामपि सुभगायां लग्नं सत्तया क्षणविरहेणापि धक्ष्यस इत्यर्थः । एतेनाभिमतजनाप्राप्त्या ममास्थिरस्नेहत्वम्, न तु दुर्विदग्धत्वादिति ध्वनितम् । मडहशब्दः स्वल्पवाचकः ॥

---

१. 'शनैर्मे गलिष्यसि' इति घ-पाठः २. 'उप्फाइं' इति क-ख-पाठः. ३. 'रुदती' इति ग-पाठः. ४. 'हा हृदय' इति घ-पाठः. ५. 'क्षुद्रनदी' इति ग-पाठः.

बन्धुजनं प्रति सख्याः सौभाग्यं काचिदाह—

जो तीएँ अहरराओ रत्तिं उव्वासिओ पिअअमेण ।
सो व्विअ दीसइ गोसे सवत्तिणअणेसु संकन्तो ॥ ६ ॥

[यस्तस्या अधररागो रात्रावुद्वासितः प्रियतमेन ।
स एव दृश्यते प्रातः सपत्नीनयनेषु संक्रान्तः ॥]

गोसे प्रातः । तथाविधाधरदर्शनजनितेर्ष्यया सपत्नीनयनेष्वरुणिमोदयादिति भावः । एकस्याः सौभाग्यवर्णनेन तत्सपत्नीनां सुखसाध्यत्वं सूचयन्त्या दूत्या इयमुक्तिरिति कश्चित् ॥

हलिकवध्वा पतिस्नेहपरीक्षोपायं दर्शयन्ती काचित्सखीं शिक्षयितुमाह—

गोलाअडट्ठिअं पेच्छिऊण गहवइसुअं हलिअसोह्णा ।
आढत्ता उत्तरिउं दुःखुत्ताराऍ पअवीए ॥ ७ ॥

[गोदावरीतटास्थितं प्रेक्ष्य गृहपतिसुतं हलिकस्नुषा ।
आरब्धा उत्तरीतुं दुःखोत्तारया पदव्या ॥]

किमयं मामवलम्बते न वेति जिज्ञासया विषममार्गेणावतरीतुमारब्धेत्यर्थः ॥

अभिलषितनायकं प्रलोभयितुं तं प्रत्यात्मसौभाग्यं श्रावयन्ती कापि सखीमाह—

चलणोआसणिसण्णस्स तस्स भरिमो अणालवन्तस्स ।
पाअङ्गुट्ठावेट्ठिअकेसदिढाअड्ढणसुहेल्लिम् ॥ ८ ॥

[चरणावकाशनिषण्णस्य तस्य स्मरामोऽनालपतः ।
पादाङ्गुष्ठावेष्टितकेशदृढाकर्षणसुखम् ॥]

प्रणयकोपेनानुनयमगृह्णन्त्या मम चरणावकाशे निषण्णस्य तस्य मदीयपादाङ्गुष्ठेनावेष्टितानां केशानां दृढाकर्षणेन जातं यत्सुखं तत्स्मराम इत्यर्थः ॥

संकेतस्थाने जारं प्रति पथिकस्यावस्थितिं श्रावयन्ती कुलटा सखीमाह—

फालेइ अच्छभल्लं व उअह कुग्गामदेउलद्दारे ।
हेमन्तआलपहिओ विज्झाअन्तं पलालग्गिम् ॥ ९ ॥

[पाटयत्यच्छभल्लमिव पश्यत कुग्रामदेवकुलद्वारे ।
हेमन्तकालपथिको विध्मायमानं पलालाग्निम् ॥]

---

१. 'तीअ' इति ख-ग-पाठः. २. 'प्रभाते दृश्यते' इति घ-पाठः. ३. 'आरद्दा' इति ग-पाठः. ४. 'दुक्खुत्ताराइ' इति ख-ग-पाठः. ५.'अवतरितुं' इति घ-पुस्तके, 'उत्तर्तुं' इति च ग-पुस्तके पाठः. ६. 'दुःखोत्तारायाः पदव्याः' इति घ-पाठः. ७. 'सुहम्' इति क-पाठः. ८. 'सुखकेलिम्' इति ग-पाठः. ९. 'वुज्झाअन्तं' इति ग-पाठः. १०. 'निर्वाप्यमाणं' इति ग-पुस्तके, 'निर्वातं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

अच्छभल्लो भल्लूकः । पाच्यमानस्य पलालक्षारकूटस्य बहिः श्यामत्वात् अन्तश्च लोहिताकारवह्निसंबन्धाद्भल्लूकसाम्यं बोध्यम् ॥

ग्रामतडागसमीपनिभृतदेशे दत्तसंकेतेन जारेण विप्रलब्धा विमलजलावयनच्छलेनातिप्रभाते तत्रात्मगमनं तं प्रति श्रावयन्ती तत्र दृष्टाद्भुतकथनच्छलेन पितृभगिनीमाह—

कमलाअरा ण मलिआ हंसा उड्डाविआ ण अ पिउच्छा ।
केणॉवि गामत[1]डाए अब्भं उत्ताणअं व्वूढम् ॥ १० ॥

[कमलाकरा न मृदिता हंसा उड्डायिता न च पितृष्वसः ।
केनापि ग्रामतडागे अभ्रमु[2]त्तानितं क्षिप्तम् ॥]

विमलजलप्रतिबिम्बितस्याकाशस्योत्तानतया भानादियमुत्प्रेक्षा ॥

जारप्रवासं श्रुत्वा विमनस्कां गृहकृत्यपराङ्मुखीं वधूं प्रति श्वश्रूरुपालम्भच्छलेनाह—

केण मणे भग्गमणोरहेण सं[3]लाविअं पवासो त्ति ।
सविसाइँ व अलसाअन्ति जेण वहुआएँ अङ्गाइं ॥ ११ ॥

[केन मन्ये भग्नमनोरथेन संलापितं प्र[4]वास इति ।
सविषाणीवालसायन्ते ये[5]न वध्वा अङ्गानि ॥]

यद्वा पतिप्रवासवार्ताश्रवणेन विमनस्कायाः प्रोष्यत्पतिकायाः पत्यावनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती तस्या असाध्यतां जारं प्रति सूचयतीति बोध्यम् ॥

कापि सखीमिङ्गिताकारगोपनं शिक्षयितुं गोपीनां कृष्णतारुण्यानुभवाभिव्यञ्जकहसितगुप्तिमाह—

अज्जवि बालो दामोअरो त्ति इअ जम्पिए जसोआए ।
कह्णमुहपेसिअच्छं णिहुअं हसिणं वअवहूहिं ॥ १२ ॥

[अद्यापि बालो दामोदर इ[6]ति इति जल्प्यते यशोदया ।
कृष्णमुखप्रेषिता[7]क्षं निभृतं हसितं व्रजवधूभिः ॥]

अनुभूतविविधसुरतविमर्दे कृष्णे अस्य वचनस्यासंबद्धार्थत्वेन हास्यहेतुत्वाज्जातोऽपि हासो वैदग्ध्यान्न प्रकाशित इति भावः ॥

---

१. 'तलाए अब्भं उत्ताणिअं' इति ख-पाठः. २. 'उत्तानकं' इति ग-पाठः. ३. 'उल्लाविअं' इति ग-पाठः. ४. 'प्रगे प्रवासीति' इति घ-पाठः. ५. 'येन' इति घ-पुस्तके नास्ति. ६. 'इति किल जल्पितं यशोदाये' इति घ-पाठः. ७. 'प्रहिताक्षं' इति ग-पाठः.

कापि सज्जनस्तुतिव्याजेन दृढस्नेहानुवृत्त्यर्थं नायकमाह—

ते विरला सप्पुरिसा जाण सिणेहो अहिण्णमुहराओ।
अणुदिअहवड्ढमाणो [1]रिणं व पुत्तेसु संकमइ ॥ १३ ॥
[ते विरलाः सत्पुरुषा येषां स्नेहोऽभिन्नमुखरागः।
अनुदिवसवर्धमानो ऋणमिव [2]पुत्रेषु संक्रामति ॥]

अभिन्नेति आदिमध्यान्तेषु तुल्यमुखप्रसाद इत्यर्थः ॥

कापि जनसमक्षमुद्भटभावां सखीं शिक्षयितुं कृष्णानुरक्तगोप्या वैदग्ध्यमाह—

णच्चणसलाहणणिहेण पासपरिसंठिआ णिउणगो[3]वी।
[4]सरिसगोविआणँ चुम्बइ कवोलपडिमागअं कह्णम् ॥ १४ ॥
[नर्तनश्लाघननिभे[5]न पार्श्व[6]परिसंस्थिता निपुणगोपी।
[7]सदृशगोपीनां चुम्बति कपोलप्रतिमागतं कृष्णम् ॥]

नर्तनेति सम्यङ्नृत्यतीति कर्णे कथनव्याजेनेत्यर्थः ॥

कापि कान्तगमनाक्षेपार्थं वर्षागममाह—

सव्वत्थ दि[8]सामुहपसारिएहिँ अण्णोण्णकडअलग्गेहिं।
छल्लिं व्व मुअइ विञ्झो मेहेहिँ विसंघडन्तेहिं ॥ १५ ॥
[[9]सर्वत्र दिशामुखप्रसृतैरन्योन्यकटकलग्नैः।
[10]छल्लीमिव मुञ्चति विन्ध्यो मेघैर्विसंघटमानैः ॥]

अन्योन्यं कटके पर्वतनितम्बे लग्नैर्विसंघटमानैर्विश्लिष्यद्भिः। छल्लीं वल्कलम्। त्वचमिति यावत्। 'छल्ली वीरुधि संताने वल्कले कुसुमान्तरे' इति मेदिनीकोषः ॥

तथैवापरगाथामाह—

आलोअन्ति पुलिन्दा पव्वअसिहरट्ठिआ [11]धणुणिसण्णा।
हत्थिउलेहिँ व विञ्झं पूरिज्जन्तं णवब्भेहिं ॥ १६ ॥
[आलोकयन्ति पुलिन्दाः पर्वतशिखरस्थिता [12]धनुर्निषण्णाः।
हस्तिकुलैरिव विन्ध्यं पूर्यमाणं नवाभ्रैः ॥]

---

१. 'ऋणं' इति ग-पाठः. २. 'पुत्रे' इति घ-पाठः. ३. 'गोपी' इति ख-पाठः. ४. 'सरिगोविआण' इति क-ख-पाठः. ५. 'व्याजेन' इति ग-पाठः. ६. 'परिष्ठिता' इति ग-पुस्तके, 'परिस्थिता' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'सदृग्गोपीनां' इति घ-पाठः. ८. 'दिम्मुह' इति ग-पाठः. ९. 'सर्वदिशामुखप्रसृतै' इति घ-पुस्तके, 'सर्वत्रदिङ्मुखप्रसारभि' इति च ग-पुस्तके पाठः. १०. 'कञ्चुकमिव' इति ग-पुस्तके, 'त्वचमिव' इति च घ-पुस्तके पाठः. ११. 'धणुम्मि णिसण्णा' इति क-पाठः. १२. 'अध्वनि निषण्णाः' इति घ-पाठः.

पुलिन्दाः शबराः । धनुषि निषण्णाः क्षितितलनिहिताटनीकं धनुरवलम्ब्य स्थिताः सन्तो वर्णध्वनिमहत्त्वादिना हस्तिकुलसदृशैर्नवमेघैः पूर्यमाणं विन्ध्यं पश्यन्तीत्यर्थः। शबराणां पर्वतशिखरेऽवस्थानात् विन्ध्यवनेऽभिसारभयं प्रतिपादयन्त्या नायिकाया जारं प्रतीयमुक्तिरिति केचित् ॥

प्रोषितभर्तृकामाश्वासयन्ती सखी पथिकागमनयोग्यं वर्षात्ययमाह—

वणदवमसिमइलङ्गो रेहइ विञ्झो घणेहिँ धवलेहिं ।
खीरोअमन्थणुच्छलिअदुद्धसित्तो व्व महुमहणो ॥ १७ ॥

[वनदवमषीमलिनाङ्गो राजते विन्ध्यो घनैर्धवलैः ।
क्षीरोदमथनोच्छलितदुग्धसिक्त इव मधुमथनः ॥]

वनदवेत्यादिविशेषणेन तृणकण्टकादिदाहाद्वर्त्मनः सुगमता दर्शिता । धवलैरिति जलापायादिति भावः ।

कस्मिन्नप्युज्ज्वलवेषे पुंसि जायायाश्चक्षुःप्रीतिमुपलभ्य कुपितं नायकं बोधयितुं विनापि सुरतेच्छां चक्षूरागो भवत्येवेति सखी निदर्शयितुमाह—

वन्दीअ णिहअबन्धवविमणाइ वि पेक्कलो त्ति चोरजुआ ।
अणुराएण पैलोइओ गुणेसु को मच्छरं वहइ ॥ १८ ॥

[वन्द्या निहतबान्धवविमनस्कयापि प्रवीर इति चोरयुवा ।
अनुरागेण प्रलोकितो गुणेषु को मत्सरं वहति ॥]

निहतबान्धवत्वेन विमनस्कयापि वन्द्या चोरयुवा प्रवीर इति हेतोरनुरागेण प्रलोकितः । गुणानुरागादालोकितवती, नतु सुरताभिलाषादिति भावः ॥

नायकान्तरं प्रत्यसाध्यत्वं सूचयन्ती दूती व्याधवधूसौभाग्यं वर्णयति—

अज्ज कइमो वि दिअहो वाहवहू रूवजोव्वणुम्मत्ता ।
सोहग्गं धणुरुम्पच्छलेण रच्छासु विकिरइ ॥ १९ ॥

[अद्य कतमोऽपि दिवसो व्याधवधू रूपयौवनोन्मत्ता ।
सौभाग्यं धनुस्तष्टत्वक्छलेन रथ्यासु विकिरति ॥]

सततसुरतासक्तिकृतदौर्बल्यादाक्रष्टुमशक्यत्वात्कृतावतक्षणस्य धनुषस्त्वक्छलेन सौ-

---

१. 'छीरोअ' इति ग-पाठः. २. 'एक्कलो' इति क-पाठः. ३. 'पक्कल' इति ग-पाठः. 'पक्कलशब्दो दर्पवति यूनि वर्तते' इति कुलबालदेवः. ४. 'विलोकितो' इति ग-पुस्तके, 'विलोमितो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'रम्प' इति ग-पाठः. ६. 'धनूरम्पच्छलेन' इति ग-पाठः. 'रम्पशब्दः कच्छे वर्तते' इति कुलबालदेवः. ७. 'धनुस्तक्षण' इति घ-पाठः.

भाग्यं विकिरतीत्यर्थः । रुम्पशब्देन तत्क्षणप्रभवसूक्ष्मत्वगुच्यते । अतिसुरतासक्तं मित्रं प्रति तन्निवृत्त्यर्थं सहचरोक्तिरिति कश्चित् ॥

तमेवार्थं भङ्गयन्तरेणाह—

उक्खिप्पइ मण्डलिमारुएण गेहङ्गणाहि वाहीए ।
सोहग्गधअवडाअ व्व उअह [1]धणुरुम्परिञ्छोली ॥ २० ॥

[उत्क्षिप्यते मण्डलीमा[2]रुतेन गेहा[3]ङ्गणाद्व्याधस्त्रियाः ।
सौभाग्यध्वजपताकेव [4]पश्यत [5]धनुःसूक्ष्मत्वक्पङ्क्तिः ॥]

मण्डलीमारुतेन वातमण्डल्या । सौभाग्यमेव ध्वजस्तस्य पताकेव । आत्मनो विज्ञत्वख्यापनार्थं नागरिकस्य सहचरं प्रतीयमुक्तिरिति कश्चित् ॥

अनुक्तमप्यर्थं लिङ्गदर्शनाज्जनो जानातीति दर्शयन्ती काचित्सखीमिङ्गितरक्षणार्थमाह—

गअगण्डत्थलणिहसणमअमइलीकअकरञ्जसाहाहिं ।
एन्तीअ कुलहराओ णाअं वाहीअ पइमरणम् ॥ २१ ॥

[गजगण्डस्थलनिघर्षणमदमलिनीकृतकरञ्जशाखाभिः ।
[6]आगच्छन्त्या कुलगृहाज्ज्ञातं [7]व्याधस्त्रिया पतिमरणम् ॥]

गजानां गण्डस्थलनिघर्षणे सति मदेन मलिनीकृताभिरित्यर्थः । कुलगृहात्पितृगृहात् । पतिभयेन पलायितानां गजानां पुनरागमनस्य पतिमरणाव्यभिचारित्वेन पतिमरणमनुमितमित्यर्थः । नायिकान्तरासक्तस्य पूर्ववद्गजमारणसामर्थ्याभावात्पतिर्मरिष्यतीति निश्चितमित्यर्थ इति कश्चित् ॥

पूर्वप्रियाप्रेमानुवृत्तिशिक्षार्थं नागरिकः सहचरं प्रति कस्यचिद्व्याधस्य दक्षिणनायकतां वर्णयति—

णववहुपेम्मतणुइओ पणअं पढमघरणीअ रक्खन्तो ।
[8]आलिहिअदुप्परिल्लं पि णेइ रण्णं धणुं वाहो ॥ २२ ॥

---

१. 'धणुहरोरम्प' इति ग-पाठः. २. 'मारुतैः' इति घ-पाठः. ३. 'गृहाङ्गणाद्व्याध्याः' इति ग-पुस्तके, 'गेहाङ्गणाद्व्याध्यात्' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'पश्यत' इति ग-पुस्तके नास्ति. ५. 'धनुर्मनोरम्परिञ्छोली' इति ग-पुस्तके, 'पश्य धनुस्तक्षणरिञ्छोलो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'आगत्य' इति घ-पाठः. ७. 'व्याधवध्वा' इति ग-पुस्तके, 'व्याध्या' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'अलिहिअदुप्परिअल्लं' इति ख-पाठः.

[नववधूप्रेमतनूकृतः प्रणयं प्रथमगृहिण्या रक्षन् ।
तनूकृतदुराकर्षमपि नयत्यरण्यं धनुर्व्याधः ॥]

तक्षणादिना तनूकृतमपि दुराकर्षमित्यर्थः । प्रथमगृहिण्याः साध्यत्वं सूचयितुं जारं प्रति दूत्या उक्तिरियमिति कश्चित् ॥

सुभगां प्रति कथमपि कुपितस्य प्रियस्य पुनः पुनः सप्रतिज्ञं यत्तत्संगमोपेक्षावचनं तस्यासंबद्धार्थत्वेन हास्यैकहेतुतामपरा तन्महिला सोपालम्भमाह—

**हासाविओ जणो सामलीअ पढमं पसूअमाणाए ।
वल्लहवाएण अलं मम त्ति बहुसो भणन्तीए ॥ २३ ॥**

[हासितो जनः श्यामया प्रथमं प्रसूयमानया ।
वल्लभवादेनालं ममेति बहुशो भणन्त्या ॥]

यथा श्यामया वरस्त्रिया प्रथमं प्रसूयमानया वल्लभसमागमस्य प्रसवदुःखहेतुत्वाद्वल्लभवादेन वल्लभाभिधानेन । वल्लभस्य नामग्रहणेनापीति यावत् । ममालं नास्ति प्रयोजनमिति बहुशो भणन्त्या पुनः प्रियोपगमाल्लोको हासितस्तथा तवापीदं वचनमिति भावः ॥

अकैतवे प्रियेऽलमलीकप्रसक्तिशङ्कयेत्याश्वासयन्तीं मातुलानीं प्रोषितभर्तृका सनिर्वेदमाह—

**कैअवरहिअं पेम्मं णत्थि व्विअ मामि माणुसे लोए ।
अह होइ कस्स विरहो विरहे होत्तम्मि को जिअइ ॥ २४ ॥**

[कैतवरहितं प्रेम नास्त्येव मातुलानि मानुषे लोके ।
अथ भवति कस्य विरहो विरहे भवति को जीवति ॥]

भवति जायमाने । कथमन्यथा तद्विरहेऽप्यहं जीवामि स च मां परित्यज्य तिष्ठतीति भावः ॥

कस्याश्चिदभीष्टनायिकायाः स्नानावसरेऽङ्गप्रक्षालनार्थं वस्त्रपरिवर्तनोद्घाटितावयवदर्शनेन त्रस्तः कामिनीजनमनोहरणार्थमात्मनः कामुकत्वातिशयं कश्चिदाह—

**अच्छेरं व णिहिं विअ सग्गे रज्जं व अमअपाणं व ।
आसि म्ह तं महुत्तं विणिअंसणदंसणं तीए ॥ २५ ॥**

---

१. 'प्रेम्णा' इति ग-पाठः. २. 'अलिखिततदुरा—' इति ग-घ-पाठः. 'अलिखितमतनूकृतम्' इति कुलबालदेवः. ३. 'राएण' इति ग-पाठः. ४. 'श्यामलया' इति घ-पाठः. ५. 'रागेणालं' इति ग-घ-पाठः. ६. 'भगिनि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'भवत्यपि' इति ग-पाठः. ८. 'आसं ह' इति ग-पाठः.

[आश्चर्यमिव निधिमिव स्वर्गे राज्यमिवामृतपानमिव ।
आसीदस्माकं तन्मुहूर्तं विनि[1]वसनदर्शनं तस्याः ॥]

अस्माकं तस्यास्तद्विनिवसनदर्शनम् । विवस्त्रायास्तस्या आलोकनमिति यावत् । मुहूर्तमात्रं नेत्रोल्लासहेतुत्वादाश्चर्यमिव । परमसुखहेतुत्वान्निधिमिव । निधिरिवेत्यर्थः । प्राकृते लिङ्गविभक्त्यादेरनियमात् । निधीश्वरत्वलाभात्स्वर्गराज्यमिव । अतिशयिततृप्तिकारित्वान्मदनानलक्रान्तसकलशरीरनिर्वृतिकरणाच्चामृतपानमिवासीदित्यर्थः ॥

आत्मन्यनुरागं सपत्न्यां च विद्वेषमुत्पादयितुं काप्यस्थिरप्रेमाणं नायिकान्तरासक्तं नायकमाह—

सा तुज्झ वल्लहा तं सि मज्झ वेसो सि तीअ तुज्झ अहम् ।
बालअ फुडं भणामो पेम्मं किर बहुविआरं त्ति ॥ २६ ॥

[सा तव व[2]ल्लभा त्वमसि मम द्वेष्योऽसि तस्यास्तवाहम् ।
बालक स्फुटं भणामः प्रेम कि[3]ल बहुविकारमिति ॥]

त्वमसि मम वल्लभ इति विपरिणतानुषङ्गः । तवाहमित्यत्रापि द्वेष्येति विपरिणतानुषङ्गः । बालक उचितानभिज्ञ । बहुविकारमिति प्रकृतिभेदेन बहुप्रकारमित्यर्थः । अनुरक्तां मां विहायाननुरक्तायां तस्यामासक्तिस्तव रसाभासावहेति भावः ॥

पत्युर्वैदग्ध्यमात्मनश्च सौभाग्यविनयादिगुणं सूचयन्ती स्वाधीनभर्तृका प्रसाधिकामाह—

अ[4]हअं लज्जालुइणी तस्स अ उम्मच्छराइँ पेम्माइं ।
सहिआअणो वि[5] णिउणो अलाहि[8] किं पाअराएण ॥ २७ ॥

[अ[6]हं ल[7]ज्जालुस्तस्य चोन्मत्सराणि प्रेमाणि ।
सखीजनोऽपि निपुणोऽपगच्छ किं पादरागेण ॥]

उन्मत्सराण्युद्भटानि । उदरालक्तकादिष्वव्याजप्रवृत्तानीत्यर्थः । सखीजनश्च निपुणः । किंचिच्चिह्नमात्रेण लक्षयतीत्यर्थः । अलाहिशब्दो निवारणे । अपगच्छेत्यर्थः । किं पादरागेणेति चरणयोरारुण्यस्य स्वतःसिद्धत्वात् । उदरादिषु चरणचिह्नोदयहेतुना लाक्षारसेन किं प्रयोजनमिति भावः ॥

---

१. 'विनिवसन्' इति घ-पाठः. २. 'वल्लभा मम त्वं द्वेष्योऽसि' इति ग-पुस्तके, 'वल्लभा त्वमसि मम प्रियस्त्वमसि तस्या' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'खलु विकारमिति' इति घ-पाठः. ४. 'अहंअ' इति ग-पाठः. ५. 'अ' इति ग-पाठः. ६. 'अहं च' इति ग-पाठः. ७. 'लज्जालुकिनी' इति घ-पाठः. ८. 'अलाभि' इति घ-पाठः.

अरण्ये दत्तसंकेताया गोप्या विरहपीडां संकेतस्थानगमनं च सूचयन्ती दूती जारं प्रत्याह—

महुमसामारुआहअमहुअरझंकारणिब्भरे रण्णे ।
गाअइ विरहक्खरॉबद्धपहिअमणमोहणं गोवी ॥ २८ ॥

[मधुमासमारुताहतमधुकरझंकारनिर्भरेऽरण्ये ।
गायति विरहाक्षराबद्धपथिकमनोमोहनं गोपी ॥]

मधुमासमारुतेन दक्षिणानिलेनाहते मधुकरझंकारैः पूरिते अरण्ये विरहाभिव्यञ्जकैरक्षरैराबद्धत्वात्पथिकमनोमोहनं यथा भवति तथा गोपी गायति । अस्मद्वनितानामपीदृशः क्लेशो भविष्यतीति पथिकानां मोहो भवतीति भावः । गृहगमनाय पथिकान्तरं त्वरयितुं पथिकस्येयमुक्तिरिति केचित् ॥

कलहान्तरिताया निष्कारणमानग्रहनिन्दाछलेन दूती जारस्यागमनावसरमाह—

तह माणो माणधणाएँ तीअ एमेअ दूरमणुबद्धो ।
जह से अणुणीअ पिओ एक्कग्गाम व्विअ पउत्थो ॥ २९ ॥

[तथा मानो मानधनया तया एवमेव दूरमनुबद्धः ।
यथा तस्या अनुनीय प्रिय एकग्राम एव प्रोषितः ॥]

एवमेव कारणं विनैव । एकग्रामे विद्यमानस्यापि प्रियादर्शनाभावात्प्रवास एवेति भावः ॥

विदग्धाः पत्युः परवनितासक्तिमुपायेन वारयन्तीति कापि सखीं शिक्षयितुमाह—

सालोए व्विअ सूरे घरिणी घरसामिअस्स घेत्तूण ।
णेच्छन्तस्स वि पाए धुअइ हसन्ती हसन्तस्स ॥ ३० ॥

[सालोक एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिनो गृहीत्वा ।
अनिच्छतोऽपि पादौ धावति हसती हसतः ॥]

असमय एव पादप्रक्षालनादन्यस्त्रीसमीपगमनप्रतिषेधे गृहिण्यास्तात्पर्यमवगत्य हसतो गृहस्वामिनः पादौ गृहिणी विदिताभिप्रायाहमनेनेति हसती सती प्रक्षालयतीत्यर्थः ॥

---

१. 'बद्धं' इति घ-पाठः. २. 'माणहणाए' इति ग-पाठः. ३. 'मानहताया इत्थमेव' इति ग-पाठः. ४. 'तस्या मे अदूरमनुबद्धः' इति घ-पाठः. ५. 'यथास्या' इति ग-घ-पाठः ६. 'गृहस्वामिकस्य' इति ग-पाठः. ७. 'धावयति' इति ग-पुस्तके, 'प्रक्षालयति' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'हसन्ती हसमानस्य' इति घ-पाठः.

अन्यस्त्रीनाम्ना व्यवहरन्तं कान्तं प्रति किं ते दृष्टिबलमपि क्षीणमिति वदन्तीं सखीं निवारयन्ती खण्डिता सविनयोपालम्भमाह—

वाहरउ मं सहीओ तिस्सा गोत्तेण किं त्थ भणिएण ।
थिरपेम्मा[1] होउ जहिं[2] तहिं पि मा किं पि णं भणह ॥ ३१ ॥

[व्याहरतु मां सख्यस्तस्या गोत्रेण किमत्र भणितेन ।
स्थिरप्रेमा भवतु यत्र[3] तत्रापि मा किमप्येनं भणत ॥]

गोत्रेण नाम्ना । 'गोत्रं तु नाम्नि च' इत्यमरः ॥

दुष्टदूतीप्रत्याख्यानार्थं कापि साध्वी प्रोषितभर्तृका दैवोपालम्भच्छलेनात्मनः पत्यावनुरागातिशयमाह—

रूअं अच्छीसु ठिअं फरिसो अङ्गेसु जम्पिअं कण्णे ।
हिअअं हिअए[4] णिहिअं विओइअं किं त्थ देव्वेण ॥ ३२ ॥

[रूपमक्ष्णोः स्थितं स्पर्शोऽ[5]ङ्गेषु जल्पितं कर्णे[6] ।
हृदयं हृदये निहितं वियोजितं[7] किमत्र दैवेन ॥]

तस्य रूपसौकुमार्यप्रियवचनसद्भाववर्तनानि भावयन्तीं मां न विरहः पीडयतीति भावः ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तसमीपगामिनं पथिकं प्रति सख्या विषमां विरहावस्थामाह—

सअणे चिन्तामइअं काऊण पिअं णिमीलिअच्छीए ।
अप्पाणो उवऊढो पसिढिलवलआहिँ बाहाहिं ॥ ३३ ॥

[शयने चिन्तामयं कृत्वा प्रियं निमीलिताक्ष्या ।
आत्मा[8] उपगूढः प्रशिथिलवलयाभ्यां बाहुभ्याम् ॥]

आनन्दातिशयान्मुकुलितनेत्रया विरहदौर्बल्यात्प्रशिथिलवलयाभ्यां बाहुभ्यामात्मा उपगूढः । स्वशरीरमालिङ्गितमित्यर्थः । तद्यावद्दशमीमवस्थां न गच्छति तावदनुकम्पस्वेति तत्कान्तं प्रति वक्तव्यमिति भावः ॥

कलहान्तरितयोर्यूनोः समञ्जसकरणाय गतागतखिन्ना दूती तावनुकूलयितुमात्मनिन्दामाह—

परिह्नूएण वि दिअहं घरघरभमिरेण अण्णकज्जम्मि ।
चिरजीविएण इमिणा खविअह्मो दड्ढकाएण ॥ ३४ ॥

---

१. 'पेम्मो' इति ग-पाठः. २. 'कहिं' इति ग-पाठः. ३. 'यत्र कुत्रापि' इति ग-पाठः. ४. 'हिअएण समं' इति क-पाठः. ५. 'स्पर्शं' इति क-ख-पाठः. ६. 'कर्णयोः' इति ग-पाठः. ७. 'वियोतितं किं खलु दैवेन' इति घ-पाठः. ८. 'आत्मना पश्य रूढः' इति घ-पाठः.

[परिभूतेनापि दिवसं गृहगृहभ्रमणशीलेनान्यकार्ये ।
चिरंजीवितेनानेन क्षपिताः स्मो दग्धकायेन ॥]

पक्षे दग्धकाकेन । रोषकटुवचनैः परिभूतेनापि अन्यकार्ये परप्रयोजनार्थं गृहगृहभ्रमणशीलेन चिरजीवितेन वृद्धेनानेन दग्धकायेन क्षपिताः स्म उद्वेजिताः स्मः । अन्योऽपि लोष्टप्रक्षेपादिना परिभूतेन अन्नकार्ये अन्नप्राप्त्यर्थमनुदिवसं प्रतिगृहं भ्रमता चिरजीवितेन दीर्घायुषा काकेन दध्याद्युपघातादुद्विग्नो भवतीति । अण्णकज्जम्मि दड्ढकाएण इत्यादि श्लिष्टशब्दशक्तिमूलको ध्वनिः । क्षपिताः स्म इत्यर्थे क्षुब्धाः स्म इति वा ॥

दुर्जनसङ्गपरिहारार्थं कोऽपि सहचरमाह—

वसइ जहिं चेअ खलो पोसिज्जन्तो सिणेहदाणेहिं ।
तं चेअ आलअं दीअओ व्व अइरेण मइलेइ ॥ ३५ ॥

[वसति यत्रैव खलः पोष्यमाणः स्नेहदानैः ।
तमेवालयं दीपक इवाचिरेण मलिनयति ॥]

स्नेहदानैः स्नेहपूर्वकैर्दानैः । पक्षे तैलादिदानैः । पोष्यमाणः संवर्ध्यमानः । पक्षे संदीप्यमानः । खलो यत्रैव वसति । यदाश्रयेण वसतीत्यर्थः । तमेवालयमाश्रयभूतं जनं भूभागं चाचिरेण मलिनयति सापवादं सान्धकारं च करोतीत्यर्थः ॥

भुजंगं दानोन्मुखं कर्तुं कुट्टनी कृपणनिन्दामाह—

होन्ती वि णिप्फलच्चिअ धणरिद्धी होइ किविणपुरिसस्स ।
गिह्माअवसंतत्तस्स णिअअच्छाहि व्व पहिअस्स ॥ ३६ ॥

[भवन्त्यपि निष्फलैव धनऋद्धिर्भवति कृपणपुरुषस्य ।
ग्रीष्मातपसंतप्तस्य निजकच्छायेव पथिकस्य ॥]

यथा स्वीया छाया नात्मनो न वा परस्य संतापं हरति तद्वत्कृपणधनमिति भावः ॥

स्फुरितवामनेत्रा प्रोषितभर्तृका स्त्रीणां वामाक्षिस्पन्दनस्य शुभसूचकतया प्रियागमनमाकलय्य सपरितोषमाह—

फुरिए वामच्छि तुए जइ एहिइ सो पिओ ज्ज ता सुइरम् ।
संमीलिअ दाहिणअं तुइ अवि एहं पलोइस्सम् ॥ ३७ ॥

---

१. 'चिरजीविनामुना खादिताः स्मो' इति ग-पाठः. २. 'व्वेअ' इति क-पाठः. ३. 'दीप इव' इति क-ख-घ-पाठः. ४. 'धणऋद्धी' इति ग-पाठः. ५. 'धनवृद्धि' इति क-ख-पुस्तकयोः, 'धनार्द्धि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'तुए अविह्नं पलोइस्सम्' इति ग-पाठः.

[स्फुरिते वामाक्षि त्वयि यद्येष्यति स प्रियोऽद्य तत्सुचिरम्।
संमील्य दक्षिणं त्वयैवैतं प्रेक्षिष्ये ॥]

हे वामनेत्र, त्वया स्फुरिते स्फुरणे कृते सति यदि स प्रियोऽद्यागमिष्यति तदा दक्षिणमक्षि निमील्य तं त्वयैव प्रेक्षिष्ये। त्वामेवैकं प्रियावलोकनेन कृतार्थयिष्यामीत्यर्थः॥

शुनकापदेशेन कामुकान्तरसंभोगभयं प्रदर्शयन्ती दूती नायकं प्रति नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

सुणअपउरम्मि गामे हिण्डन्ती तुह कएण सा बाला।
पासअसारिव्व घरं घरेण कइआ वि खज्जिहिइ ॥ ३८ ॥

[शुनकप्रचुरे ग्रामे हिण्डमाना तव कृतेन सा बाला।
पाशकशारीव गृहं गृहेण कदापि खादिष्यते ॥]

शुनकप्रायकामुकप्रचुरे ग्रामे त्वद्दर्शनार्थं प्रतिगृहं भ्रमन्ती सा बाला कदापि केनापि खादिष्यते। उपभोक्ष्यत इत्यर्थः। अतो नवयौवना एषा यावदन्येन नोपभुज्यते तावदेनां भजस्वेति भावः॥

यं युवानं प्रति त्वं बद्धानुरागा सोऽस्थिरप्रेमेति कथयन्तीं सखीं नायिका स्वसौभाग्यगर्वमाह—

अण्णण्णं कुसुमरसं जं किर सो महइ महुअरो पाउम्।
तं णीरसाणँ दोसो कुसुमाणं णेअ भमरस्स ॥ ३९ ॥

[अन्यमन्यं कुसुमरसं यत्किल स इच्छति मधुकरः पातुम्।
तन्नीरसानां दोषः कुसुमानां नैवं भ्रमरस्य ॥]

यथा इच्छानुरूपस्य मधुन एकत्रालाभान्मधुकरो भ्रमति तद्वदयमपीच्छानुकूलनायिकामलभमानश्चाञ्चल्यमवलम्बते। तदेतस्य चाञ्चल्यं मया शमयितव्यमिति भावः॥

मन्दस्नेहं नायकमभिमुखीकर्तुं दूती नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

रत्थापइण्णणअणुप्पला तुमं सा पडिच्छए एन्तम्।
दारणिहिएहिँ दोहिँ वि मङ्गलकलसेहिँ व थणेहिं ॥ ४० ॥

---

१. 'स्फुरति' इति ग-पाठः. २. 'यद्यागमिष्यति प्रियतमस्तदा सुचिरम्' इति ग-पाठः. ३. 'त्वया अविघ्नं प्रलोकयिष्ये' इति ग-पाठः. ४. 'हिण्डती' इति घ-पाठः. ५. 'सारीव' इति घ-पाठः. ६. 'गृहे न' इति घ-पाठः. ७. 'पाणलोइण्णो' इति ग-पाठः. ८. 'स महति पानलोलुपः' इति ग-पाठः. ९. 'नेह' इति घ-पाठः. १०. 'रच्छा' इति ख-ग-पाठः.

[रथ्याप्रकीर्णनयनोत्पला त्वां सा प्रतीक्षते आयान्तम्[1] ।
द्वारनिहिताभ्यां द्वाभ्यामपि मङ्गलकलशाभ्यामिव स्तनाभ्याम् ॥]

'तुमं सा पडिच्छए एन्तम्' इति स्थाने 'तुमं पुत्ति कं पलोएसि' इति क्वचित्पुस्तके पाठो दृश्यते । 'त्वं पुत्रि कं प्रलोकयसि' इति तस्यार्थः । तत्रेत्थं व्याख्या—रथ्यावलोकनद्वारस्थितिस्तनप्रदर्शनैः कलितशीलखण्डनां कुलवधूं प्रति दूती आह—रत्थेति। अयं भावः—नयनोत्पलाभ्यां कृतरथ्यापूजा द्वारि कलशाविव स्तनौ निधाय यस्य वर्त्म प्रतीक्षसे तं कथय मया तदानयने यत्नो विधेय इति ॥

अगृहीतानुनयविलक्षं पुनरनुनयविमुखं नायकं प्ररोचयितुं दूती कलहान्तरिताया नायिकायाः पश्चात्तापमाह—

ता रुण्णं जा रुव्वइ ता छीणं जाव छिज्जए अङ्गम् ।
ता णीसेसिअँ[2] वराइअ जाव अ सासा पहुप्पन्ति ॥ ४१ ॥

[तावद्रुदितं यावद्रुद्यते तावत्क्षीणं यावत्क्षीयतेऽङ्गम् ।
तावन्निःश्वासितं वराक्या यावत्[3] [च] श्वासाः प्रभवन्ति ॥]

यावद्रोदितुं शक्यते तावद्रुदितम् । अङ्गं यावत्क्षीयते यतोऽधिकं क्षीणं न भवति तावत्क्षीणम् । यावच्छ्वासाः प्रभवन्ति तावन्निःश्वसितम् । इदानीं क्षीणायाः श्वसितुमपि न शक्तिरिति त्वदुपेक्षया म्रियमाणां त्वय्यनुरक्तामनुकम्पस्वेत्यर्थः ॥

कश्चिदुपरतजायाविरहविधुरमात्मानमनुशोचन्नात्मनः स्थिरस्नेहतासूचनेन नायिकान्तरं प्ररोचयितुमाह—

समसोक्खदुक्खपरिवड्ढिआणँ कालेण रूढपेम्माणम् ।
मिहुणाणँ मरइ जं तं खु जिअइ इअरं मुअं होइ ॥ ४२ ॥

[समसौख्य[4]दुःखपरिवर्धितयोः कालेन रूढप्रेम्णोः ।
मिथुनयोर्म्रियते यत्तत्खलु जीवति इतरन्मृतं भवति ॥]

मिथुनं जायापती । 'स्त्रीपुंसौ मिथुनं द्वन्द्वम् । इत्यमरः । समुदायवाचकोऽप्ययं लक्षणया जायायां पत्यौ च प्रयुक्तः। तेनायमर्थः—समाभ्यामुभयोः साधारणाभ्यां सुखदुःखाभ्यां परिवर्धितयोः कालवशेन स्थिरप्रेम्णोर्मिथुनयोर्दम्पत्योर्मध्ये यन्मिथुनं जाया वा पतिर्वा म्रियते तज्जीवति । इतरज्जीवन्मृतं भवति विरहदुःखदग्धाज्जीवितान्मरणमेव वरमिति भावः ॥

---

१. 'आगच्छन्तम्' इति घ-पाठः. २. 'णीससइ' इति ग-पाठः. ३. 'यावन्निःश्वासाः' इति घ-पाठः. ४. 'सुखदुःख' इति ग-घ-पाठः.

वसन्ते प्रियप्रवासगमनश्रवणविधुरां कुलवधूमाश्वासयन्ती विदग्धा सखी सानुनयमाह—

हरिहिइ पिअस्स णवचूअपल्लवो पढममञ्जरिसणाहो ।
मा रुवसु पुत्ति पत्थाणकलसमुहसंठिओ गमणम् ॥ ४३ ॥

[हरिष्यति प्रि[1]यस्य नवचूतपल्लवः प्रथममञ्जरीसनाथः ।
मा रो[2]दीः पुत्रि प्रस्थानकलशमुखसंस्थितो गमनम् ॥]

हे पुत्रि, शकुनच्छलेन मया प्रस्थानकलशे स्थापितो नवचूतपल्लवः प्रियस्य गमनं हरिष्यति अतो मा रोदीरित्यन्वयः । वसन्तागमनचिह्नं दृष्ट्वा स्वयमेव स्थास्यतीति भावः ॥

अनुनयार्थमागतं कान्तं दृष्ट्वा कलहान्तरितात्मनोऽनुरागं सूचयन्ती सपरिहासमाह—

जो कह वि मह सहीहिँ छिद्दं लहिऊण पेसिओ हिअए ।
सो माणो चोरिअकामुअ व्व दिट्ठे पिए णट्ठो ॥ ४४ ॥

[यः कथमपि मम सखीभिश्छिद्रं लब्ध्वा प्र[3]वेशितो हृदये ।
स मानश्चोरै[4]कामुक इव दृष्टे प्रिये नष्टः ॥]

प्रणयकलहरूपं छिद्रं लब्ध्वा यो मानः सखीभिर्मम हृदये प्रवेशितः । न तु मया स्वीकृत इति भावः । स मानः प्रिये दृष्टे सति चोरकामुक इव नष्टः पलायितः ॥

कापि कुसुम्भपुष्पावचयार्थं गतायाः सपत्न्याः शीलखण्डनं जातमिति सूचयन्ती आह—

सहिआहिँ भण्णमाणा थणए लग्गं कुसुम्भपुप्फं त्ति ।
मुद्धबहुआ हसिज्जइ पप्फोडन्ती णहवआइं ॥ ४५ ॥

[सखीभिर्भण्यमाना स्त[5]ने लग्नं कुसुम्भपुष्पमिति ।
मुग्धव[6]धूर्हस्यते प्रस्फोटयन्ती नखपदानि ॥]

'शशप्लुतं पञ्च नखव्रणानि सान्द्राणि तच्चूचुकचिह्नमाहुः' इत्यादिकामशास्त्राभिज्ञेन नायकेन स्तनकुड्मलाग्रे निहितं शशप्लुतं दृष्ट्वा स्तने कुसुम्भपुष्पं लग्नमिति सखीभिर्भण्यमाना मुग्धवधूर्नखपदानि प्रस्फोटयन्ती प्रक्षिपन्ती हस्यते । मुग्धवधूरित्युपालम्भपरं वचनम् । प्रियदत्तं नखक्षतमपि न जानातीति भावः ॥

---

१. 'प्रियतमस्य' इति ग-पाठः. २. 'रुदिहि' इति घ-पाठः. ३. 'प्रेषितो' इति घ-पाठः. ४. 'चोरिकाकामुक' इति ग-पाठः. ५. 'स्तनयोः' इति ग-पाठः. ६. 'वधूरुपहस्यते' इति ग-पुस्तके, 'वधुका प्रहस्यते' इति च घ-पुस्तके पाठः.

काप्यात्मनो मरणभयं प्रदर्शयन्ती मन्दस्नेहं नायकमनुकूलयितुमाह—

उम्मूलेन्ति व हिअअं इमाइँ रे तुह विरज्जमाणस्स ।
[1]अवहीरणवसविसंठुलवलन्तणअणद्धदिट्ठाइं ॥ ४६ ॥

[उन्मूलयन्तीव हृदयं इमानि रे तव विरज्यमानस्य ।
[2]अवधीरणवशविसंष्ठुलवलन्नयनार्धदृष्टानि ॥]

रेशब्दः साक्षेपसंबोधने । विरज्यमानस्य तेऽवधीरणवशाद्विसंष्ठुलमबद्धलक्ष्यं यथा भवति तथा वलन्नयनार्धं येषु एतादृशानि दृष्टान्यालोकनानि मम हृदयमुन्मूलयन्तीवेत्यर्थः । एतेनास्तां तव विरागः । विरागसूचकेनावलोकनेनापि मम मरणावस्था भवतीति सूचितम् ॥

काप्यात्मनो विरहविधुरतां सूचयन्ती विरलदर्शनं नायकमाह—

ण मुअन्ति दीहसासं ण रुअन्ति चिरं ण होन्ति किसिआओ ।
[3]धण्णाओ ताओ जाणं बहुवल्लह वल्लहो ण तुमम् ॥ ४७ ॥

[न मुञ्चन्ति [4]दीर्घश्वासान्न रुदन्ति चिरं न भवन्ति [5]कृशाः ।
[6]धन्यास्ता यासां बहुवल्लभ वल्लभो न त्वम् ॥]

अस्माभिस्तु त्वामासाद्य सर्वमिदमनुभूयत इति भावः ॥

शय्यागारविनिर्गतायाः प्रियायाः परिवृत्त्यावलोकनं नायकः स्वसौभाग्यख्यापनार्थमाह—

णिद्दालसपरिघुम्मिरतंसवलन्तद्धतारआलोआ ।
कामस्स वि दुव्विसहा दिट्ठिणिवाआ ससिमुहीए ॥ ४८ ॥

[निद्रालस[7]परिघूर्णनशीलतिर्यग्वलदर्धतारकालोकाः ।
कामस्यापि दुर्विषहा दृष्टिनिपाताः शशिमुख्याः ॥]

सुरतजागरान्निद्रालसः अत एव, परिघूर्णनशीलः, अनुरागातिशयात्तिर्यग्वलन्नर्धतारकालोको येषु तादृशाः शशिमुख्या दृष्टिप्रपञ्चाः कामस्यापि धैर्यच्युतिं कुर्वन्ति, किं पुनः कामातुराणामिति भावः ॥

काप्यात्मनो जारं प्रत्यनुरागं चिरप्रोषितप्रियागमने च निष्प्रत्याशतां दर्शयन्ती हृदयोपालम्भच्छलेनाह—

जीविअसेसाइ मए गमिआ कहँ कहँ वि पेम्मदुद्दोली ।
एह्निं विरमसु रे डड्ढहिअअ मा रज्जसु कहिं पि ॥ ४९ ॥

---

१. 'अवहीरअसविसंठुल' इति ग-पाठः. २. 'अवधीरितसविसंष्ठुल' इति ग-पाठः. ३. 'धण्णाउ ताउ' इति ग-पाठः. ४. 'दीर्घश्वासं' इति ग-पाठः. ५. 'कृशाङ्ग्यः' इति घ-पाठः. ६. 'धन्यास्तु तास्तु' इति घ-पाठः. ७. 'परिघूर्णमान' इति ग-पाठः.

[जीवितशेषया मया गमिता कथं कथमपि प्रेम[१]दुर्दोली ।
इदानीं विरम रे दग्धहृदय मा र[२]ंज्यस्व कुत्रापि ॥]

पाशानामन्योन्यबन्धकृतो दुर्मोच्यो ग्रन्थिर्दुर्दोलीति प्रसिद्धा । विरहक्षीणतया जीवितशेषया मया प्रेमदुर्दोली तस्य मम च प्रेम्णः परस्परानुबन्धित्वाद्दुर्मोचो ग्रन्थिः कथं कथमपि आगमिष्यतीति प्रत्याशया सखीजनाभ्यर्थनया आत्मवधपातकभयाच्च गमिता । एतेन प्रियागमनप्रत्याशात्यागः सौभाग्यं दृढभक्तिता चात्मनः सूचिता । तादृशविरहदाहमनुभूय पुनरन्यत्रानुरज्यस इति सनिर्वेदमाह—रे दग्धहृदयेति । इदानीं विरम मा रज्यः कुत्रापि इत्यनेनाननुरक्तस्य निषेधायोगाज्जारं प्रत्यनुरागः सूचितः ॥

नायकस्यानुरागवृद्धये दूती कस्याश्चिद्दन्तनखक्षतावलोकनकौतुकमाह—

अज्जाएँ णवणहक्खअणिरीक्खणे गरुअजोव्वणुत्तुङ्गम् ।
पडिमागअणिअणअणुप्पलच्चिअं होइ थणवट्टम् ॥ ९० ॥

[[३]आर्याया नवनखक्षतनिरीक्षणे गुरुकयौवनोत्तुङ्गम् ।
प्रतिमागतनिजनयनोत्पलार्चितं भवति स्त[४]नपृष्ठम् ॥]

आर्याया वरस्त्रियाः ॥

स्त्रीसेवाविमुखं नायकमभिमुखयितुं विपरीतरतानभिज्ञां च नायिकां शिक्षयितुं निसृष्टार्थदूती भगवतः कृष्णस्य लक्ष्म्याश्च कामपरतां नमस्कारच्छलेनाह—

तं णमह जस्स वच्छे लच्छिमुहं कोत्थु[५]हम्मि संकन्तम् ।
दीसइ मअपरिहीणं ससिबिम्बं सूरबि[६]म्बं व्व ॥ ९१ ॥

[तं नमत यस्य वक्षसि लक्ष्मीमुखं कौस्तुभे संक्रान्तम् ।
दृश्यते मृगपरिहीनं शशिबिम्बं सूर्यबिम्ब इव ॥]

विपरीतरतावस्थायां यस्य वक्षसि कौस्तुभे प्रतिबिम्बितं लक्ष्मीमुखं सूर्यबिम्बे प्रतिबिम्बितं निष्कलङ्कं चन्द्रबिम्बमिव दृश्यते तं नमतेत्यन्वयः ॥

प्रियानुनयार्थं दूती कलहान्तरितामाह—

मा कुण पडिवक्खसुहं अ[७]णुणेहि पिअं पसाअलोहिल्लम् ।
अइगहिअगरुअमाणेण पुत्ति रासि व्व छिज्जिहिसि ॥ ९२ ॥

---

१. 'प्रेमदुर्गाथा' इति घ-पाठः. २. 'रञ्ज' इति घ-पाठः. ३. 'ईश्वरसुताया' इति ग-पाठः. ४. 'स्तनतटं' इति ग-पुस्तके, 'स्तनपट्टं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'कोत्थअम्मि' इति ग-पाठः. ६. 'बिम्बे' इति ग-पाठः. ७. 'अणुणेसु' इति ग-पाठः.

[मा कुरु प्रतिपक्षसुखमनुनय प्रियं प्रसादलोभयुतम्[1] ।
अतिगृहीतगुरुकमानेन पुत्रि राशिरिव क्षीणा[2] भविष्यसि ॥]

हे पुत्रि, प्रतिपक्षस्य सपत्नीजनस्यावकाशदानेन सुखं मा कुरु । प्रसादाभिलाषिणं प्रियमनुनय । अतिगृहीतगुरुकमानेन राशिरिव क्षीणा भविष्यसि । माषादिराशिरुपरि पाषाणादिना नियन्त्रितो यथा क्षीयत इत्यर्थः । अनुनयलुब्धोऽसौ मानी न त्वामनुनेष्यतीति भावः ॥

विरहोत्कण्ठिताया विरहार्तिं व्यञ्जयन्ती दूती तत्कान्तमाह—

विरहकरवत्तदूसहफा[3]लिज्जन्तम्मि तीअ हिअअम्मि ।
अंसू कज्जलमइलं पमाणसुत्तं व्व पडिहाइ ॥ ९३ ॥

[विरहकरपत्रदुःसहपाट्यमाने[4] तस्य हृदये ।
अश्रु कज्जलमलिनं प्रमाणसूत्रमिव प्रतिभाति ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानियमाद्दुःसहविरहलक्षणकरपत्रेण पाट्यमाने तस्या हृदये कज्जलमलिनमश्रु प्रमाणसूत्रमिव प्रतिभातीति संबन्धः । तदेवं विरहविधुरामनुकम्पस्वेति भावः ॥

विदग्धनायिकासंगमोत्सुकं नायकं दूती प्ररोचयितुं निषेधमुखेनाह—

दुण्णिक्खेवअमेअं पुत्तअ मा साहसं करि[5]ज्जासु ।
ए[6]त्थ णिहिताइँ मण्णे हिअआइँ पु[7]णो ण लब्भन्ति ॥ ९४ ॥

[दुर्निक्षेपकमेतत्पुत्रक मा साहसं करिष्यसि ।
अत्र निहितानि मन्ये हृदयानि पुनर्न लभ्यन्ते ॥]

पुत्रकेति विश्वासार्थं सस्नेहसंबोधनम् । एतद्धृदयनिक्षेपरूपं साहसं मा करिष्यसि । यतो दुर्निक्षेपकमेतदिति योजना । लोकेऽपि यो निक्षेपः पुनर्न लभ्यते स दुर्निक्षेप इत्युच्यते । एतेन चाटु चातुर्यसौन्दर्यादिभिर्नायिकाया मनोहरत्वं व्यज्यते ॥

रतावसाने नायिकाया अपरितोषमाकलय्य विलक्षं नायकं बोधयितुं दूती तस्याश्चिररततादोषपरिहारार्थमाह—

णि[9]व्वुत्तरआ वि वहू सुरअविरामट्ठिइं[8] अआणन्ती ।
अविरअहिअआ अण्णं पि किं पि अत्थि त्ति चिन्तेइ ॥ ९५ ॥

---

१. 'प्रसादलोभिष्ठम्' इति ग-पाठः. २. 'क्षीयसे' इति ग-पाठः. ३. 'फाडिज्जन्तस्स तीअ हिअअस्स' इति ग-पाठः. ४. 'पाट्यमानस्य तस्या हृदयस्य' इति ग-पाठः. ५. 'करेज्जासु' इति ग-पाठः. ६. 'इत्थ' इति ग-पाठः. ७. 'उणो' इति ग-पाठः. ८. 'इदं' इति ग-पाठः. ९. 'विणिवुत्त' इति ख-पाठः.

[निर्वृत्तरतापि वधूः सुरतविरामस्थितिमजानती ।
अविरतहृदयान्यदपि किमप्यस्तीति चिन्तयाति ॥]

एतेन नायकेच्छानुपालनं मौग्ध्यं च नायिकायाः सूचितम् ॥

भुजंगजनं रोचयितुं कुट्टनी वेश्याप्रेमस्तुतिमाह—

णन्दन्तु सुरअसुहरसतह्णावहराइँ सअललोअस्स ।
बहुकैअवमग्गविणिम्मिआइँ वेसाणँ पेम्माइं ॥ ५६ ॥

[नन्दन्तु सुरतसुखरसतृष्णापहराणि सकललोकस्य ।
बहुकैतवमार्गविनिर्मितानि वेश्यानां प्रेमाणि ॥]

उत्तममध्यमाधमरूपसकललोकस्य सुरते यः सुखरसस्तत्र या तृष्णा तदपहारकाणि यथाभिलषितसंपादकानि तथा बहुभिः कैतवमार्गैर्हसितशुष्करुदितचाटुप्रमुखैर्विनिर्मितानि वेश्यास्त्रीणां प्रेमाणि नन्दन्तु । लाभसत्कारादिभाञ्जि भवन्त्वित्यर्थः । 'सुरतरसरभसतृष्णापहराणि' इति पाठे सरभसानि च तानि तृष्णापहराणि चेति कर्मधारयः ॥

किमिति त्वं कृशासीति सहासं नायकेन पृष्टा विरहोत्कण्ठिता तमाह—

अप्पत्तमण्णुदुक्खो किं मं किसिअत्ति पुच्छसि हसन्तो ।
पावसि जइ चलचित्तं पिअं जणं ता तुह कहिस्सम् ॥ ५७ ॥

[अप्राप्तमन्युदुःखः किं मां कृशेति पृच्छसि हसन् ।
प्राप्स्यसि यदि चलचित्तं प्रियं जनं तदा तव कथयिष्यामि ॥]

प्रियापराधजश्चित्तक्षोभो मन्युः । न प्राप्तं मन्युकृतं दुःखं येन तादृशस्त्वं हसन्सन् किं मां कृशेति पृच्छसि । हसन्नित्यनेन स्नेहस्य हृदयबाह्यता सूचिता । तदेति । इदानीं कथितेऽपि न ते प्रत्ययो भविष्यति । तवास्थिरस्नेहत्वान्ममेयं दशेति भावः ॥

चिरागतं जारं विरहोत्कण्ठिता सनिर्वेदमाह—

अवहत्थिऊण सहिजम्पिआइँ जाणं कँए ण रमिओसि ।
एआइँ ताइँ सोक्खाइँ संसओ जेहिँ जीअस्स ॥ ५८ ॥

---

१. 'विनिवृत्तरता' इति घ-पाठः. २. 'बहुमग्गविणिम्मिआइं' इति ग-पाठः. ३. 'सुरआइं' इति ग-पाठः. ४. 'सुरतशुभरस' इति घ-पाठः. ५. 'बहुपतिकानां मार्गविनिर्मितानि' इति ग-पाठः. ६. 'वेश्यावनितानां' इति घ-पाठः. ७. 'सुरतानि' इति ग-पाठः. ८. 'मानदुःखः' इति ग-पाठः. ९. 'हसमानः' इति ग-पाठः. १०. 'प्राप्नुहि यावच्चलचित्तं प्रियं जनं तावत्प्रक्ष्यामि' इति घ-पाठः. ११. 'प्रियाजनं ततस्ते कथयिष्ये' इति ग-पाठः. १२. 'कए तुमं रमिओ' इति ग-पाठः.

[अपहस्तयित्वा[1] सखीजल्पितानि येषां कृते[2] न रमितोऽसि।
एतानि तानि सौख्यानि संशयो यैर्जीवस्य ॥]

अस्तु तावत्सुखम्, त्वद्विरहादिदानीं जोवितमेव संदिग्धमिति भावः॥

प्रतिवेशिन्यालापच्छलेन दूती मधूकनिकुञ्जे दत्तसंकेतं जारमाह—

ईसालुओ पई से रत्तिं महुअं ण देइ उच्चेउम्।
उच्चेइ अप्पण च्चिअ माए अइउज्जुअसुहाओ॥ ५९॥

[ईर्ष्याशील:[3] पतिस्तस्या[4] रात्रौ मधूकं न ददात्युच्चेतुम्।
उच्चिनोत्यात्मनैव मातरतिऋजुकस्वभावः[5] ॥]

गृहे जायमानस्य जारसमागमस्याज्ञानादृजुस्वभावत्वम्। मधूकनिकुञ्जं मा गच्छ तस्या गृहमेव गच्छेति जारं प्रति व्यज्यते॥

धृतवस्त्राञ्चलं बलादाकृष्यानुनयमगृहीत्वा गच्छन्तीं नायिकां नायक आह—

अच्छोडिअवत्थद्धन्तपत्थिए[6] मन्थरं तुमं वच्च।
चिन्तेसि थणहराआसिअस्स मज्झस्स वि ण भङ्गम्॥ ६०॥

[बलादाकृष्टवस्त्रार्धान्तप्रस्थिते[7] मन्थरं त्वं व्रज।
चिन्तयसि स्तनभरायासितस्य मध्यस्यापि न भङ्गम्॥]

बलादाकृष्टं वस्त्रार्धान्तं वस्त्राञ्चलो यया सा चासौ प्रस्थिता चेति कर्मधारयः। अस्तु तावन्मम प्रणयभङ्गः, द्रुतगमनेन स्तनभरायासितस्य मध्यस्यापि भङ्गं न चिन्तयसि अहो ते मौग्ध्यमिति भावः॥

नागरिकः सहचरं प्रत्यात्मनो विज्ञत्वख्यापनाय पथिकप्रपापालिकयोरन्योन्यानुरागमाह—

उद्धच्छो पिअइ जलं जह जह विरलङ्गुली चिरं पहिओ।
पावालिआ वि तह तह धारं तणुइं पि तणुएइ॥ ६१॥

[ऊर्ध्वाक्षः पिबति जलं यथा यथा विरलाङ्गुलिश्चिरं पथिकः।
प्रपापालिकापि तथा तथा धारां तनुकामपि तनू करोति[8] ॥]

पिपासापगमेऽपि जलपानच्छलेन मुखावलोकनकुतूहलादूर्ध्वाक्षः पथिको यथा यथा

---

१. 'अपहत्य' इति घ-पाठः. २. 'कृते त्वं रमितः' इति ग-पाठः. ३. 'ईर्ष्यालुः' इति ग-पाठः. ४. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ५. 'ऋजुस्वभावः' इति घ-पाठः. ६. 'अक्कोलिअ' इति ग-पाठः. ७. 'बलात्' इति ग-पुस्तके नास्ति. ८. 'तन्वीमपि तन्वीं करोति' इति ग-पाठः.

जलगलनाय विरलाङ्गुलिः संश्चिरं जलं पिबति तथा तथा प्रपापालिकापि तदनुरोधात्तन्मुखावलोकनकुतूहलार्थं तनुकामपि धारां तनूकरोतीत्यर्थः ॥

कोऽपि कामुकः कामपि दुर्लभां नायिकामुपायान्तरेण प्राप्तुमसमर्थो भिक्षाप्रार्थनव्याजेन तदीयगृहं गतः । सा च तं दृष्ट्वा स्वयमेव भिक्षां दातुं गता । ततो भिक्षादानाय निर्गता वधूः किमिति चिरयतीति जिज्ञासमानां श्वश्रूं प्रति सपत्नी भिक्षाचरभिक्षादात्रोरन्योन्यानुरागमाह—

भिच्छाअरो पेच्छइ णाहिमण्डलं सावि तस्स मुहअन्दम् ।
तं चटुअं अ करङ्कं दोह्ण वि काआ विलुम्पन्ति ॥ ६२ ॥

[भिक्षाचरः प्रेक्षते नाभिमण्डलं सापि तस्य मुखचन्द्रम् ।
तच्चटुकं च करङ्कं द्वयोरपि काका विलुम्पन्ति ॥]

चटुकं भिक्षादानपात्रम् । दर्वीमिति यावत् । करङ्कं भिक्षाग्रहणपात्रं च काका विलुम्पन्ति । तद्गतमन्नं खादन्तीत्यर्थः । द्वयोः परस्परदर्शनमात्रेणानुरागात्स्तम्भोत्पादनात्काकानां निर्भयत्वमिति भावः ॥

प्रियमनुनेतुं प्रोचयन्ती सखी कलहान्तरितामाह—

जेण विणा ण जिविज्जइ अणुणिज्जइ सो कआवराहो वि ।
पत्ते वि णअरदाहे भण कस्स ण वल्लहो अग्गी ॥ ६३ ॥

[येन विना न जीव्यतेऽनुनीयते स कृतापराधोऽपि ।
प्राप्तेऽपि नगरदाहे भण कस्य न वल्लभोऽग्निः ॥]

कस्येति अपि तु सर्वस्येत्यर्थः । कृतापराधस्याप्यग्नेः पाकार्थं सर्वैरुपादानादिति भावः ॥

विदग्धनायकं प्रोचयितुं कापि ग्रामनिन्दाछलेनात्मनो वैदग्ध्यमाह—

वङ्कं को पुलइज्जउ कस्स कहिज्जउ सुहं व दुक्खं वा ।
केण समं वे हसिज्जउ पामरपउरे हअग्गामे ॥ ६४ ॥

[वक्रं कः प्रलोक्यतां कस्य कथ्यतां सुखं वा दुःखं वा ।
केन समं वा हस्यतां पामरप्रचुरे हतग्रामे ॥]

इङ्गितज्ञाभावेन कटाक्षादेर्निष्फलत्वादिति भावः ॥

---

१. 'तच्च चटुकं करङ्कं' इति घ-पाठः. २. 'विहसिज्जउ पामरपौरे' इति ग-पाठः. ३. 'विहस्यतां' इति ग-पुस्तके, 'चाहस्यतां' इति च घ-पुस्तके पाठः.

मनोरथप्राप्ताविव मनोरथसिद्धिहेतावपि मनोविकारा भवन्तीति निदर्शयन्नागरिकः सहचरमाह—

फलहीवाहणपुण्णाहमङ्गलं लङ्गले कुणन्तीए ।
असईअ मणोरहगब्भिणीअ हत्था थरहरन्ति ॥ ६९ ॥

[[1]कार्पासीक्षेत्रकर्षणपुण्याहमङ्गलं लाङ्गले कुर्वत्याः ।
असत्या मनोरथगर्भिण्या हस्तौ [2]थरथरायेते ॥]

कार्पासीक्षेत्रकर्षणार्थे पुण्याहे शुभदिने यन्मङ्गलमालेपनादिदानं तल्लाङ्गले कुर्वत्या मनोरथगर्भिण्याः अस्यां कार्पासवाट्यां मया रन्तव्यमिति हृदि न्यस्तमनोरथाया असत्याः कुलटाया हस्तौ थरथरायेते कम्पं प्राप्नुतः ॥

सख्याः शिक्षार्थं सखीजनो धूर्ताचरितमाह—

पहिउल्लूरणसङ्काउलाहिँ असईहिँ बहलतिमिरस्स ।
आइप्पणेण णिहुअं वडस्स सित्ताइँ पत्ताइं ॥ ६६ ॥

[[3]पथिकच्छेदनशङ्काकुलाभिरसतीभिर्बहलतिमिरस्य ।
[4]आलेपनेन निभृतं वटस्य सिक्तानि पत्राणि ॥]

उल्लूरणं छेदनम् । अन्धकारबहुलत्वेन संकेतस्थानस्य वटस्य पत्राणि पथिकाश्छेत्स्यन्तीति शङ्कया आकुलाभिरसतीभिरालेपनेन द्रुततण्डुलपिष्टेन निभृतं सिक्तानि । काकविष्ठाशङ्कया पान्था न च्छेत्स्यन्तीति भावः ॥

दन्तधावनार्थं संकेतस्थानकरञ्जशाखाभञ्जकं धार्मिकं कुलटा सोपालम्भमाह—

भञ्जन्तस्स वि तुह सग्गगामिणो णइकरञ्जसाहाओ ।
[5]पाआ अज्ज वि धम्मिअ तुह कहँ धरणिं विअ छिवन्ति ६७

[[6]भञ्जतोऽपि तव स्वर्गगामिनो नदीकरञ्ज[7]शाखाः ।
[8]पादावद्यापि धार्मिक तव कथं धरणीमेव[9] स्पृशतः ॥]

क्रान्त्वैव स्वर्गं जिगमिषुरग्रपादिकया स्थितो दूरस्थशाखाभङ्गं कुर्वन् कथमद्यापि स्वर्गं न गतोऽसीति भावः ॥

---

१. 'फलहीवाहनपुण्याह—' इति ग-पाठः. २. 'थरथरायेते' इति ग-घ-पाठः. ३. 'पथिकोल्लूनन' इति ग-पाठः. ४. 'आतर्पणेन' इति घ-पाठः. ५. 'भण कह पाआ अज्ज वि धम्मिअ धरणिं' इति ग-पाठः. ६. 'भञ्जमानस्यापि' इति ग-घ-पाठः. ७. 'शाखायाः' इति ग-पुस्तके, 'शाखाभिः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'तव कथं पादावद्यापि धार्मिक धरणीमेव' इति ग-पाठः. ९. 'अपि' इति घ-पाठः.

नायिकान्तरप्रलोभनार्थमात्मनः स्थिरस्नेहतां कामुकतां च नागरिकः सहचरमाह—

अच्छउ दाव मणहरं पिआइ मुहदंसणं अइमहग्घम् ।
तग्गामछेत्तसीमा वि झत्ति दिट्ठा सुहावेइ ॥ ६८ ॥

[अस्तु तावन्मनोहरं प्रियाया मुखदर्शनमतिमहार्घम् ।
तद्ग्रामक्षेत्रसीमापि झटिति दृष्टा सुखयति ॥]

सा यत्र ग्रामे वसति तस्य ग्रामस्य यत्क्षेत्रं तस्य सीमापीत्यर्थः ॥

मृतायामपि जायायां हलिकस्य प्रेम्णः प्रशंसाव्याजेन कापि मन्दस्नेहं नायकमभिमुखीकर्तुमाह—

णिक्कम्माहिँ वि छेत्ताहिँ पामरो णेअ वच्चए वसइम् ।
मुअपिअजाआसुण्णइअगेहदुःक्खं परिहरन्तो ॥ ६९ ॥

[निष्कर्मणोऽपि क्षेत्रात्पामरो नैव व्रजति वसतिम् ।
मृतप्रियजायाशून्यीकृतगेहदुःखं परिहरन् ॥]

मृता चासौ प्रियजाया च तया शून्यीकृतं यद्गेहं तत्र यद्दुःखं तत्परिहरन् पामरो निष्कर्मणः कार्यरहितादपि क्षेत्राद्वसतिं न व्रजति । ईदृशं तत्प्रेम येन मृतभार्यः पामरो गृहवासादप्यरण्यवासमेव बहु मन्यत इति भावः ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तसमोपगामिनं पथिकमाह—

झञ्झावाउत्तिणिअघरविवरपलोट्टसलिलधाराहिं ।
कुड्डलिहिओहिदिअहं रक्खइ अज्जा करअलेहिं ॥ ७० ॥

[झञ्झावातोत्तृणीकृतगृहविवरप्रपतत्सलिलधाराभिः ।
कुड्यलिखितावधिदिवसं रक्षत्यार्या करतलैः ॥]

अवधिदिवसेऽतिक्रान्ते दुष्करं तस्या जीवनमिति भावः ॥

---

१. 'ताव' इति ग-पाठः. २. 'सुण्णकइअ' इति ग-पाठः. ३. 'शून्यनिजगृहदुःखं' इति घ-पाठः. ४. 'झञ्झावाउच्छलिअधर' इति ग-पाठः. ५. 'मुद्धा' इति ग-पाठः. ६. 'वर्षवातोच्छलितगृहविवरप्रवर्तमानसलिल' इति ग-पुस्तके, 'झञ्झावातोत्तृणितगृहविवरप्रत्यावर्तमानसलिलधाराभ्यः' इति घ-पुस्तके पाठः. ७. 'मुग्धा करतलाभ्याम्' इति ग-पुस्तके, 'वरस्त्री करतलाभ्याम्' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कुलटाया संकेतस्थानगमनत्वरार्थं तत्रान्यगमननिषेधार्थं च दूती राजिकापत्रचर्वणाकुलमर्कटापदेशेन कामार्तनायकस्य संकेतगतस्य स्थितिमाह—

गोलाणइए कच्छे चक्खन्तो राइआइ पत्ताइं ।
उप्पडइ मक्कडो खोक्खएइ पोट्टं च पिट्टेइ ॥ ७१ ॥

[गोदावरीनद्याः कच्छे [1]चर्वयन्राजिकायाः पत्राणि ।
उत्पतति [2]मर्कटः खोक्खशब्दं करोत्युदरं च ताडयति ॥]

मुहुर्मुहुरुद्ग्रीविकया त्वां पश्यंस्त्वयि विलम्बमानायां कामार्तिं नाटयन्नस्तीति भावः ॥

पूर्वसुभगायाः सखी तदलंकारेणान्यामसमानां मण्डयितुमिच्छोस्तत्कान्तस्याक्षेपार्थं स्वभर्तुः स्नेहोचितविधिस्थैर्यमाह—

गहवइणा मुअसैरिह[3]डुंण्डुअदामं चिरं वहेऊण ।
[4]वग्गसआइं णेउण णवरिअ अज्जाघरे बद्धम् ॥ ७२ ॥

[गृहपतिना मृतसैरि[5]भबृहद्घण्टादाम चिरमूढ्वा ।
वर्गशतानि नीत्वानन्तरमार्यागृहे बद्धम् ॥]

डुण्डुभशब्दो बृहद्घण्टायां वर्तते । गृहपतिना मृतसैरिभस्य बृहद्घण्टायुक्तं दाम चिरमूढ्वा तत्सदृशापरमहिषालंकरणार्थं वर्गशतान्यनेकमहिषयूथानि नीत्वा तत्सदृशापरमहिषाप्राप्त्या आर्यागृहे चण्डिकायतने बद्धमित्यर्थः । मम भर्त्रा मृतस्य पशोरपि स्नेहवशेनैवं कृतम्, त्वं तु जीवन्त्यामेव प्रियभार्यायां तदलंकारेणान्यामतदनुरूपामलंकर्तुमिच्छसीत्यनुचितमेतदिति भावः ॥

सपत्नीसंपदुत्कर्षोद्विग्नामभिनवसुभगां सान्त्वयन्ती सखी विभवादपि सौभाग्यं गरीय इति प्रदर्शयन्ती आह—

सिहिपेहुणावअंसा वहुआ वाहस्स [6]गव्विरी भमइ ।
गअमोत्तिअरइअपसाहणाणँ मज्झे सवत्तीणम् ॥ ७३ ॥

[शिखिपिच्छावतंसा वधूर्व्याधस्य [7]गर्विता भ्रमति ।
[8]गजमौक्तिकरचितप्रसाधनानां मध्ये सपत्नीनाम् ॥]

---

१. ‘खादन्’ इति घ-पाठः. २. ‘मर्कटः काशते उदरं चाहन्ति’ इति घ-पाठः. ३. ‘डुण्डुअह’ इति ग-पाठः. ४. ‘वग्गसआइं वि णेउण णवरं अज्जाहरे बद्धम्’ इति ग-पाठः. ५. ‘सैरिभडुण्डुभदाम चिरं वोढ्वा । यूथशतान्यपि नीत्वा’ इति ग-पाठः. ‘डुण्डुभशब्दो डोण्डायां वर्तते । डोण्डा मालाविशेषो लोकप्रसिद्ध एव । वर्गशब्दः पशुसमूहे वर्तते’ इति कुलबालदेवः. ६. ‘गव्विणी भमए । गअमोत्तागहिअपसा’ इति ग-पाठः. ७. ‘गर्वशीला’ इति घ-पाठः. ८. ‘गजमुक्तागृहीतप्रसा–’ इति ग-पाठः.

येन करिवरान्हत्वा तत्कुम्भमुक्ताफलैर्यूयं प्रसाधिताः स एवेदानीं मत्संभोगातिप्रसक्तिक्षीणो मयूरमात्रमारणक्षमः संवृत्त इति सौभाग्येन जातगर्वा भ्रमतीत्यर्थः ॥

कुट्टनी भुजंगप्रोत्साहनार्थमाह—

वङ्कच्छिपेच्छिरीणं वङ्कुल्लविरीणँ वङ्कभमिरीणम् ।
वङ्कहसिरीणँ पुत्तअ पुण्णेहिँ जणो पिओ होइ ॥ ७४ ॥

[वक्राक्षिप्रेक्षणशीलानां वक्रोल्लपनशीलानां[1] वक्रभ्रमणशीलानाम् ।
वक्रहासशीलानां पुत्रक पुण्यैर्जनः प्रियो भवति ॥]

वक्रेत्यादेः कटाक्षनिरीक्षणं साभिप्रायवचनप्रयोगो विभ्रमभङ्गुरं भ्रमणमाशयनिर्देशकं हसितं चार्थः । पुण्यैरिति धन्यस्त्वमसि येनैवंविधापि मम दुहिता त्वां प्रत्येवमनुरक्तेति भावः ॥

विजने गोदावरीतीरलतागृहे ध्यानाद्यवस्थितया संकेतविघ्नकारिणं धार्मिकं कुलटा काचिदाह—

भम[2] धम्मिअ वीसत्थो सो सुणहो अज्ज मारिओ तेण ।
गोलाअडविअडकुडङ्गवासिणा दरिअसीहेण ॥ ७५ ॥

[भ्रम[3] धार्मिक विस्रब्धः स शुनकोऽद्य मारितस्तेन ।
गोदातटविकटकुञ्जवासिना दृप्तसिंहेन ॥]

अत्र लतागृहे सिंहसंचारेण गमननिषेधो व्यज्यते ॥

विदिताभिप्रायोऽसि मयेति बोधयन्कश्चित्परिहासशीलः कमपि युवानमाह—

वाएरिएण भरिअं अच्छि कण्णऊरउप्पलरएण[4] ।
फुंकन्तो[5] अविइह्णं चुम्बन्तो[6] को सि देवाणम् ॥ ७६ ॥

[वातेरितेन भृतमाक्षि कर्णपूरोत्पलरजसा[7] ।
फूत्कुर्वन्नवितृष्णं चुम्बन्कोऽसि देवानाम् ॥]

वातप्रेरितेन कर्णावतंसीकृतस्योत्पलस्य रजसा भृतं नायिकाया अक्षि तद्रजोपनयनार्थं फूत्कुर्वन् फूत्कारव्याजेनैवावितृष्णं चुम्बन् तदवलोकनकौतुकेनानिमिषनयनत्वाद्देवानां मध्ये कतमो देवस्त्वम् । प्रसिद्धानां देवानामेवंविधपुण्यफलभागित्वाभावादिति भावः ॥

---

१. 'चक्रोद्दीपनशिलानां' इति घ-पाठः; 'वक्रहसनशीलानां' इति च ग-पाठः. २. 'धम्मिअ भम' इति ग-पाठः. ३. 'धार्मिकभ्रम विश्रब्धः स श्वा व्यापादितस्तेन । गोदावरीतटनिकटकुञ्ज' इति ग-पाठः. ४. 'कण्णरइअउप्पल' इति ग-पाठः. ५. 'फुक्कन्तअ' इति ग-पाठः. ६. 'चुम्बन्तअ' इति ग-पाठः. ७. 'कर्णरचितोत्पलरजसा' इति ग-पाठः.

कान्तानयनत्वरार्थं मदनार्तिमभिनयन्ती प्रोषितभर्तृका सखीमाह—

सहि दुम्मेन्ति [1]कलम्बाइं जह मं तह ण सेसकुसुमाइं ।
णूणं इमेसु दि[2]अहेसु वहइ गुडिआधणुं कामो ॥ ७७ ॥

[सखि [3]व्यथयन्ति कदम्बानि यथा मां तथा न शेषकुसुमानि ।
नूनमेषु दिवसेषु वहति गुटिकाधनुः कामः ॥]

गुटिकाकारेण कदम्बकुसुमेन कुसुमास्त्रो मां तापयतीति भावः । एतेन वसन्तापेक्षयापि वर्षाकालो विरहिणां दुःसह इति ध्वनितम् ॥

विरहोत्कण्ठितायाः सखी स्त्रीवधपातकभयं दर्शयन्ती तत्कान्तं तदुपगमनार्थमाह—

णाहं दूई ण तुमं पिओ त्ति को अह्म एत्थ वावारो ।
सा मरइ तुज्झ [4]अअसो तेण अ धम्मक्खरं भणिमो ॥ ७८ ॥

[नाहं दूती न त्वं [5]प्रियं इति कोऽस्माकमत्र व्यापारः ।
सा म्रियते [6]तवायशस्तेन च धर्माक्षरं [7]भणामः ॥]

कोऽस्माकमिति प्रियत्वात्तवैव तदनुकम्पनमुचितमित्याशयः ॥

कृतचरणपातमनुनयन्तं कान्तं खण्डिता युवत्यन्तरसङ्गचिह्नं दर्शयन्ती सोपालम्भमाह—

तीअ मुहाहिं तुह मुहँ तुज्झ मुहाओ अ मज्झ चलणम्मि ।
[8]हत्थाहत्थीअ गओ अइदुक्करआरओ तिलओ ॥ ७९ ॥

[तस्या मुखात्तव मुखं तव मुखाच्च मम [9]चरणे ।
हस्ताहस्तिकया गतोऽति[10]दुष्करकारकस्तिलकः ॥]

अत्र तिलकोपालम्भच्छलेन युवत्यन्तरसङ्गचिह्नमाविष्कृतम् ॥

इयमस्मिन्ननुरक्तेति नागरिकः सहचरमवगमयन्नाह—

सामाइ [11]सामलिज्जइ अद्धच्छिपलोइरीअ मुहसोहा ।
अम्बूदलकअकण्णावअंस[12]भमिरिए हलिअपुत्ते ॥ ८० ॥

---

१. 'कअम्बाइं' इति ग-पाठः. २. 'दिअसेसु' इति ग-पाठः. ३. 'दुर्मनायन्ते' इति ग-पाठः; 'दूनयन्ति' इति घ-पाठः. ४. 'विरहे' इति ग-पाठः. ५. 'वल्लभ' इति ग-पाठः. ६. 'तव विरहे' इति ग-घ-पाठः. ७. 'भणामि' इति ग-पाठः. ८. 'हत्थिव्व' इति ग-पाठः. ९. 'चरणं' इति ग-पुस्तके, 'चरणयोः' इति च घ-पुस्तके पाठः. १०. 'दुस्तर' इति घ-पाठः. ११. 'सामलीए' इति ग-पाठः. १२. 'भमिरे हलिअउत्ते' इति ग-पाठः.

[[1]श्यामायाः श्यामलायतेऽर्धाक्षिप्रलोकनशीलाया मुखशोभा ।
जम्बूदलकृतकर्णावतंसभ्र[2]मणशीले हलिकपुत्रे ॥]

संकेतस्थानसूचकेन जम्बूपत्रेण कृतः कर्णावतंसो येन तादृशश्चासौ भ्रमणशीलश्चेति कर्मधारयः । तथाभूते हलिकपुत्रे सति निह्नवार्थमर्धाक्षिप्रेक्षणशीलायाः श्यामाया मुखशोभा संकेतसमयलङ्घनवैलक्ष्येण खेदेन च श्यामलायते । स्वयमेव मलिना भवतीत्यर्थः ॥

कलहान्तरिता कान्तानुनयाय दूतीमाह—

दूइ तुमं विअ कुसला कक्खडमउआइँ जाणसे वो[3]ल्लुम् ।
कण्डूइअपण्डुरं जह ण होइ तह तं [4]करेज्जासु ॥ ८१ ॥

[दूति त्वमेव कुशला [5]कर्कशमृदुकानि [6]जानासि वक्तुम् ।
[7]कण्डूयितपाण्डुरं यथा न भवति तथा तं करिष्यसि ॥]

यथा कण्डूयनकौशलेन कण्डूः शाम्यति वैरूप्यं च न भवति, तथा त्वमपि मृदुकटुकेन तथा वक्ष्यसि यथासौ नोद्विजते मां च भजत इत्याशयः ॥

कमपि बहुवल्लभं नायकं प्रति दूती कस्याश्चिदनुरागमाह—

महिलासहस्सभरिए तुह हिअए [8]सुहअ सा अमाअन्ती ।
दिअहं अणण्णकम्मा अङ्गं तणुअं पि तणुएइ ॥ ८२ ॥

[महिलासहस्रभृते तव हृदये [9]सुभग सा अमान्ती ।
दिवस[10]मनन्यकर्मा अङ्गं तनुकमपि तनूकरोति ॥]

अमान्ती स्थानमलभमाना । दिवसं व्याप्य । प्रतिदिनमिति यावत् । प्रतिदिनं त्वत्समागमोपायचिन्तया क्षीयत इत्यर्थः ॥

कोऽपि कस्यांचिदनुरागातिशयं सूचयन्सहचरमाह—

खणमेत्तं पि ण फिट्टइ अणुदिअहविइण्णगरुअसंतावा ।
पच्छण्णपावसङ्के व्व सामली मज्झ हि[11]अआओ ॥ ८३ ॥

---

१. 'श्यामायते श्यामलायाः' इति ग-पाठः. २. 'वतंसे भ्रमति' इति ग-पाठः. ३. 'वत्तुम् । कण्डूइपण्डुराणं' इति क-ख-पाठः. ४. 'कुणेज्जासु' इति क-पाठः. ५. 'कठिनमृदुकानि' इति ग-पाठः. ६. 'जानीषे' इति घ-पाठः. ७. 'कण्डूतिपाण्डुरं' इति क-ख-पुस्तकयोः, 'कण्डूयति पाण्डुरं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'सुहअ ठाणमलहन्ती' इति ग-पाठः. ९. 'सुभगस्थानमलभन्ती' इति ग-पाठः. १०. 'अनन्यव्यापारा' इति ग-पाठः. ११. 'हिअआहिं' इति ग-पाठः.

[क्षणमात्रमपि नापयात्यनुदिवसवितीर्णगुरुकसंतापा ।
प्रच्छन्नपापशङ्केव श्यामला मम हृदयात् ॥]

अनुदिवसं वितीर्णो गुरुकः संतापो विरहकृतः पक्षे अनुस्मरणकृतश्च यया सा । तथा श्यामला श्यामा ॥

कापि सुशीला नायिका कृतापराधमनुनयन्तं कान्तं सप्रणयरोषमाह—

अज्जअ णाहं कुविआ अवऊहसु किं मुहा पसाएसि ।
तुह मण्णुसमुप्पाअएँण मज्झ माणेण वि ण कज्जम् ॥ ८४ ॥

[अज्ञ नाहं कुपिता उपगूह किं मुधा प्रसादयसि ।
तव मन्युसमुत्पादकेन मम मानेनापि न कार्यम् ॥]

अनभिज्ञे स्वामिनि मानो निष्फल इति भावः ॥

विरहोत्कण्ठितायाः सखी तत्कान्तमाह—

दीहुह्णपउरणीसासपआविओ वाहसलिलपरिसित्तो ।
साहेइ सामसवलं वं तीएँ अहरो तुह विओए ॥ ८५ ॥

[दीर्घोष्णप्रचुरनिःश्वासप्रतप्तो बाष्पसलिलपरिसिक्तः ।
साधयति श्यामशबलमिव तस्या अधरस्तव वियोगे ॥]

श्यामशबलं व्रतविशेषः । यत्राग्नौ प्रविश्य जले प्रविश्यते ॥

कापि मध्याह्नाभिसारिका 'संकेतितह्रदतीरलतागृहमहं गता, त्वं तु न गतः' इति जारं प्रति प्रतिपादयन्ती सत्यपि हृदयस्य स्थिरस्नेहतां सज्जनहृदयप्रशंसाछलेनाह—

सरए महद्धदाणं अन्ते सिसिराइँ वाहिरुह्णाइं ।
जाआइँ कुविअसज्जणहिअअसरिच्छाइँ सलिलाइं ॥ ८६ ॥

[शरदि महाह्रदानामन्तः शिशिराणि बहिरुष्णानि ।
जातानि कुपितसज्जनहृदयसदृक्षाणि सलिलानि ॥]

दूती कस्याश्चिन्मौग्ध्यवर्णनच्छलेन प्रथमाभिसारस्वीकारं सूचयति—

आअस्स किं णु करिहिम्मि किँ बोलिस्सं कहं णु होइहि[इमि]ति ।
पढमुग्गअसासहआरिआइ हिअअं थरहरेइ ॥ ८७ ॥

---

१. 'नापैति' इति ग-पाठः. २. 'उज्जुअ' इति ख-पाठः. ३. 'ऋजुक' इति घ-पाठः. ४. 'अवगूहस्व' इति ग-घ-पाठः. ५. 'प्रतापितो' इति घ-पाठः. ६. 'परिषिक्तः' इति ग-घ-पाठः. ७. 'साधयत्यग्निपानीयव्रतमिव' इति ग-पाठः. ८. 'शीतानि' इति ग-पाठः. ९ 'सदृशानि' इति ग-घ-पाठः.

[आगतस्य किं नु करिष्यामि किं वक्ष्यामि[1] कथं नु भविष्यति [इदम्] इति।
प्रथमोद्गतसाहसकारिकाया[2] हृदयं थरथरायते ॥]

इदमभिसरणसाहसम्। थरथरायते कम्पते॥

कलहान्तरिताया ग्रहिलत्वदोषपरिहारार्थं दूती तत्कान्तमगृहीतानुनयविलक्षमाह—

णेउरकोडिविलग्गं चिउरं दइअस्स पाअपडिअस्स।
हिअअं पउत्थमाणं उम्मोअन्ति व्विअ कहेइ॥ ८८॥

[नूपुरकोटिविलग्नं चिकुरं दयितस्य पादपतितस्य।
हृदयं प्रोषितमानमुन्मोचयन्त्येव[3] कथयति॥]

नूपुरकोटिविलग्नं दयितस्य चिकुरमुन्मोचयन्त्येव हृदयं प्रोषितमानं कथयतीति संबन्धः। अयमाशयः—अखण्डितप्रणया मानिन्यो वाचा मुखरागेण वानाविष्कृतं प्रसादं चेष्टाविशेषेणाविष्कुर्वन्ति। तया च नूपुरावलग्नं तव केशमुन्मोचयन्त्यैव हठपरिरम्भलोलुपं हृदयं कथितमेव। त्वया तु तदनुरूपं न कृतम्। अतस्तवैवेदमवैदग्ध्यम्, न तु तस्या ग्रहिलत्वदोष इति॥

दूती कस्याश्चिदनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

तुज्झङ्गराअसेसेण[4] सामली तह खरेण सोमारा।
सा किर गोलाऊले ह्णाआ जम्बूकसाएण॥ ८९॥

[तवाङ्गरागशेषेण श्यामला[5] तथा खरेण सुकुमारा।
सा किल गोदाकूले[6] स्नाता जम्बूकषायेण॥]

कृताङ्गोद्वर्तनस्य तवाङ्गरागशेषेण तीक्ष्णेन जम्बूकषायेण सा सुकुमाराङ्गी स्नातेत्यर्थः। किलेति स्नानारुचौ किलशब्दः। स्नानच्छलेन तया त्वदङ्गसङ्गाभिलाषिण्या तवाङ्गरागोच्छिष्टग्रहणं कृतमिति भावः॥

वल्लभस्य गोष्ठीनायकतां वर्णयन्ती विरहोत्कण्ठिता सखीजनमाह—

अज्ज व्वेअ पउत्थो अज्ज व्विअ सुण्णआइँ जाआइं।
रत्थामुहदेउलचत्तराइँ अह्मं च हिअआइं॥ ९०॥

[अद्यैव प्रोषितोऽद्यैव शून्यकानि जातानि।
रथ्यामुखदेवकुलचत्वराण्यस्माकं च हृदयानि॥]

---

१. 'वक्ष्ये' इति ग-पाठः. २. 'साहसिकाया हृदयं भयेन कम्पते' इति ग-पाठः. ३. 'उन्मूलयन्त्येव' इति ग-पाठः. ४. 'तुझङ्ग' इति ग-पाठः. ५. 'श्यामली' इति ग-पाठः. ६. 'गोदावरीप्रवाहे' इति ग-पुस्तके, 'गोदावरीतीरे' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कस्याश्चिद्वणिकाया भुजंगजनेन क्रियमाणां श्लाघामसहमाना निजगुणगर्वमभिव्यञ्जयन्ती काचिदाह—

चिरंडिं पि अआणन्तो लोआ लोएहिँ गोरवब्भहिआ ।
सोणारतुले व्व णिरक्खरा वि खन्धेहिँ उब्भन्ति ॥ ९१ ॥

[सिद्धिरस्तु इत्यादि]वर्णावलीमप्यजानन्तो लोका लोकैर्गौरवाभ्यधिकाः ।
सुवर्णकारतुला इव निरक्षरा अपि स्कन्धैरुह्यन्ते ॥]

यथोक्तार्थकश्चिरडीति देशीशब्दः । निरक्षरा अक्षरेखारहिताः । पक्षे अविद्या अपि स्कन्धैरुह्यन्ते । सादरं नीयन्त इत्यर्थः ॥

कलहान्तरितायाः कान्त उत्कण्ठाविनोदार्थं सहचरमाह—

आअम्बन्तकवोलं खलिअक्खरजम्पिरिं फुरन्तोट्ठिम् ।
मा छिवसु त्ति सरोसं समोसरन्तिं पिअं भरिमो ॥ ९२ ॥

[आताम्रान्तःकपोलां स्खलिताक्षरजल्पनशीलां स्फुरदोष्ठीम् ।
मा स्पृशेति सरोषं समपसर्पन्तीं प्रियां स्मरामः ॥]

आत्मनो विज्ञत्वख्यापनाय नागरिकः सहचरमाह—

गोलाविसमोआरच्छलेण अप्पा उरम्मि से मुक्को ।
अणुअम्पाणिद्दोसं तेण वि सा आढमुवऊढा ॥ ९३ ॥

[गोदावरीविषमावतारच्छलेनात्मा उरसि तस्य मुक्तः ।
अनुकम्पानिर्दोषं तेनापि सा गाढमुपगूढा ॥]

मन्दस्नेहं नायकं दूती नायिकानुरागकथनेनानुकूलयितुमाह—

सा तुइ सहत्थदिण्णं अज्ज वि रे सुहअ गन्धरहिअं पि ।
उव्वसिअणअरघरदेवद व्व णोमालिअं वहइ ॥ ९४ ॥

[सा त्वया स्वहस्तदत्तामद्यापि रे सुभग गन्धरहितामपि ।
उद्वसितनगरगृहदेवतेव अवमालिकां वहति ॥]

---

१. 'विणइं' इति ग-पाठः. २. 'विनतिमप्यजानन्तो' इति ग-पुस्तके, 'वर्णमप्यजानन्तो' इति च घ-पुस्तके पाठः. 'विनतिं सिद्धिपादिकां सिद्धिरस्तु इत्यादिकाम्' इति कुलबालदेवः. ३. 'गौरवाभ्यर्हिताः' इति घ-पुस्तके, 'गौरवेणार्चिताः' इति च ग-पुस्तके पाठः. ४. 'अङ्करेखारहिता' इति कुलबालदेवः. ५. 'आताम्रायमाणकपोलां' इति घ-पाठः. ६. 'जल्पिनीं स्फुरदोष्ठाम्' इति ग-पाठः. ७. 'स्मरामि' इति ग-पाठः. ८. 'गाढ' इति क-पाठः. ९. व्याजेन' इति ग-पाठः. १०. 'अन्धरहिअं' इति ग-पाठः. ११. 'हरदेवते' इति ग-पाठः. १२. 'देवतामिव नवमालिकां' इति घ-पाठः.

परिधानेन पर्युषितत्वेन च मर्दिता माला अवमालिका। रे सुभगेति सखेदं संबोधनम्। सा सुन्दरी त्वया स्वकेशपाशादाकृष्य स्वहस्तदत्तां गन्धरहितामप्यवमालिकां त्वत्करस्पर्शबहुमानादद्यापि वहति। उद्वसितनगरगृहदेवतेवेति। अयं भावः—त्वद्विरहादिदानीमकृतप्रसाधना सहजसौन्दर्यमात्राभरणा त्वद्गतचित्ततया निर्जीवालेख्यपुत्रिकेव शोच्यां दशामुपगता, अतस्तामनुकम्पस्वेति भावः॥

मानग्रहणार्थे शिक्षयन्ती बन्धुपुरंध्री कांचिदाह—

केलीअ वि रूसेउं ण तीरए तम्मि चुक्कविणअम्मि।
[1]जाइअएहिँ व माए इमेहिँ अवसेहिँ अङ्गेहिं॥ ९५॥

[[2]केल्यापि [3]रुषितुं न [4]शक्यते तस्मिं[5]श्च्युतविनये।
[6]याचितकैरिव मातरेभिरवशैरङ्गैः॥]

च्युतविनये रतिलौल्यलङ्घितलज्जे तस्मिन् याचितकैरिव अभ्यर्थ्यानीतैरिव एभिरवशैरस्वाधीनैरङ्गैर्हे मातः, केल्या परिहासेनापि रोषः कर्तुं न शक्यत इत्यर्थः। एतेन कान्ते प्रणयातिशयो व्यज्यते॥

कामुकजनानुरञ्जनार्थमात्मनो विपरीतरताभिज्ञतां सूचयन्ती काचिदुत्फुल्लिकया क्रीडन्तीं बालिकां निवारयन्तीमाह—

उप्फुल्लिआइ खेल्लउ मा णं वारेहि होउ परिरूढा।
मा जहणभारगरुई पुरिसाअन्ती किलिम्मिहिइ॥ ९६॥

[उत्फुल्लिकया खेलतु मैनां वारयत भवतु [7]परिक्षामा।
मा जघनभारगुर्वी [8]पुरुषायितं कुर्वती क्लमिष्यति॥]

पादोपविष्टानां मुहुः पतनोत्पतनरूपा क्रीडा उत्फुल्लिकेत्युच्यते। भवत्विति। श्रमेण जितश्वासा कृशमध्या च भवत्विति भावः॥

शीलखण्डनविलक्षायाः कुलजायाश्चित्तसमाधानार्थं तत्पक्षपातिनी काचिदाह—

पउरजुवाणो गामो महुमासो जोअणं पई ठेरो।
जुण्णसुरा साहीणा असई मा होउ किं मरउ॥ ९७॥

---

१. 'जाअइ अह्मिव माए' इति ग-पाठः. २. 'क्रीडयापि' इति ग-पाठः. ३. 'रोषितुं' इति घ-पाठः. ४. 'शक्नोमि' इति ग-घ-पाठः. ५. 'अपगतविनये' इति ग-पुस्तके, 'गतविनये' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'जायतेऽस्माकं मातरेभि' इति ग-पाठः. ७. 'परिगूढा' इति घ-पाठः. ८. 'पुरुषायन्ती क्लमिष्यति' इति घ-पाठः.

[¹प्रचुरयुवा ग्रामो मधुमासो यौवनं पतिः स्थविरः ।
जीर्णसुरा स्वाधीना असती मा भवतु किं ²म्रियेताम् ॥]

तदेवमप्रतीकारदारुणेषु विनाशकारणेषु सत्सु शीलखण्डनं नापराधापादकमिति भावः॥

नायकस्य मनोहरणार्थं दूती नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

बहुसो वि कहिज्जन्तं तुह वअणं मज्झ हत्थसंदिट्ठम् ।
ण सुअं त्ति ³जम्पमाणा पुणरुत्तसअं कुणइ अज्जा ॥ ९८ ॥

[बहुशोऽपि कथ्यमानं तव वचनं मम हस्तसंदिष्टम् ।
⁴न श्रुतमिति जल्पन्ती पुनरुक्तशतं ⁵करोत्यार्या ॥]

पुनःपुनः श्रवणानुरागाच्छ्रुतमपि न श्रुतमित्येव वदतीति भावः ॥

दूती कस्याश्चित्कुलजायाः कमपि युवानं प्रत्यनुरागं संवरणकौशलं चाह—

पाअडिअणेहसब्भावणिब्भरं तीअ जह तुमं दिट्ठो ।
संवरणवावडाए अण्णो वि जणो तह व्वेअ ॥ ९९ ॥

[प्रकटितस्नेहसद्भावनि⁶र्भरं तया यथा त्वं दृष्टः ।
संवरणव्यापृतया अन्योऽपि ⁷जनस्तथैव ॥]

एतस्मिन्ननुरक्तेयमिति कश्चिन्मा ज्ञासीदिति संवरणार्थमन्योऽपि तथैव दृष्ट इत्यर्थः ॥

प्रसवानन्तरं स्वामिना संनिधिं परित्याजिता काचित्पुत्रस्य दन्तोद्गमकथनच्छलेन संभोगसुखानुभवसमयप्राप्तिमाह—

गेह्णह पलोअह इमं पहसिअवअणा पइस्स अप्पेइ ।
जाआ सुअपढमुब्भिण्णदन्तजुअलङ्किअं बोरम् ॥ १०० ॥

[⁸गृह्णीत प्रलोकयतेदं ⁹प्रहसितवदना ¹⁰पत्युरर्पयति ।
जाया सुतप्रथमोद्भिन्नदन्तयुगलाङ्कितं ¹¹बदरम् ॥]

जाया इदं बदरं गृह्णीत प्रलोकयतेति पत्युरर्पयतीति संबन्धः । स्वयमेव क्षतं संपाद्य पुत्रेण क्षतमिति मिथ्यैव दर्शयतीति प्रहसितवदनेति पदेन ध्वन्यते ॥

---

१. 'प्रचुरयुवको' इति ग-घ-पाठः. २. 'स्मरतु' इति घ-पाठः. ३. 'जम्पमाणं' इति ग-पाठः. ४. 'न शृणोति जल्पमानं' इति ग-पाठः. ५. 'करोतीश्वरसुता' इति ग-घ-पाठः. ६. 'निर्भरतया' इति ग-घ-पाठः. ७. 'जनस्तथाविध एवम्' इति ग-पुस्तके, 'जनः कथं तथैव' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'मन्दं प्रलोकयेमं' इति घ-पाठः. ९. 'विहसित' इति ग-पाठः. १०. 'पत्युरात्मनि' इति घ-पाठः. ११. 'वदनम्' इति क-घ-पाठः.

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए।
सत्तसअम्मि समत्तं बीअं गाहासअं एअम्॥ १०१॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविविनिर्मिते[1]।
सप्तशतके समाप्तं द्वितीयं गाथाशतकमेतत्॥]

तृतीयं शतकम्।

मिथ्या जनो वदतीत्यनुनयन्तं कान्तं मानिनी सप्रणयरोषमाह—

अच्छउ ता जणवाओ हिअअं विअ अत्तणो तुह पमाणम्।
तह तं सि मन्दणेहो जह ण उवालम्भजोग्गो सि॥ १॥

[अस्तु तावज्जनवादो[2] हृदयमेवात्मनस्तव प्रमाणम्।
तथा त्वमसि मन्दस्नेहो यथा नोपालम्भयोग्योऽसि॥]

अयमस्यां मन्दस्नेह इत्येवंरूपो जनवादोऽस्तु तावत्। हृदयमेवेति। आत्महृदयेनैव त्वं जानासीत्यर्थः। यथेति। स्निग्धो हि दाक्षिण्येनोपालम्भं सहते, त्वं तूदासीन इति नोपालम्भयोग्य इति भावः॥

हृदयोपालम्भच्छलेन यथाभिमतकान्ताप्राप्तिं सूचयन्ती कुलटा कमपि युवानं रोचयितुमाह—

अप्पच्छन्दपहाविर दुल्लहलम्भं जणं वि मग्गन्त।
आआसपहेहिँ भमन्त हिअअ कइआवि भज्जिहिसि॥ २॥

[आत्मच्छन्दप्रधावनशील[3] दुर्लभलम्भं जनं [अपि] मृगयमाण।
आकाशपथैर्भ्रमद्धृदय कदापि भङ्क्ष्यसे॥]

स्वेच्छाचारित्वसूचनार्थमात्मच्छन्दप्रधावनशीलेति संबोधनम्। दुर्लभस्य सुरतसुखस्य लम्भः प्राप्तिर्यस्मात्तम्। आकाशपथैर्निरवलम्बनमार्गैर्भ्रमत्। दूतीप्रमुखोपायादिति भावः। पाठान्तरे आयासवशैरित्यर्थः। कदापीत्यपिशब्दः संभावनायाम्। कः खलु सुभगो यस्तव भ्रमणं शमयिष्यतीति भावः॥

---

१. 'विनिर्मितौ' इति ग-पाठः. २. 'तत्' इति ग-पाठः. ३. 'आत्मच्छन्दप्रम-विष्णुं दुर्लभलभ्यं जनं विमार्गमान।—कदापि दह्यसे॥' इति ग-पुस्तके, 'आत्मच्छन्दप्रभावशीले दुर्लभलभ्यं जनमपि मार्गमाण। अशपथैर्हृदयक्रियापि भग्ना भवति॥' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कापि गुणगर्विता गणिका सकृत्प्रवृत्तं पश्चान्मन्दादरं भुजंगं निन्दन्ती दूतीमाह—

अह्व गुणच्चिअ लहुआ अह्वा गुण[1]अणुओ ण सो लोओ ।
अह्व च्चि [2]णिग्गुणा वा बहुगुणवन्तो जणो तस्य ॥ ३ ॥

[अथवा गुणा एव लघवोऽथवा [3]गुणज्ञो न स लोकः ।
अथवास्मि निर्गुणा वा बहुगुणवाञ्जनस्तस्य ॥]

तस्य जनः प्रियारूपो बहुगुणवान्वेति योजना । येन मां न बहु मन्यत इत्यभिप्रायः ॥

अन्यासक्तं प्रियमात्मनो दुःखाभिव्यञ्जनेन कथं निवारयसीति वदन्तीं मातुलानीं कापि प्रियस्यास्निग्धतां सूचयन्ती दृष्टान्तेन सनिर्वेदमाह—

फुट्टन्तेण वि हिअएण मामि कह णिव्वरिज्जए तम्मि ।
[4]आदंसे पडिबिम्बं व्व जम्मि दुःखं ण संकमइ ॥ ४ ॥

[[5]स्फुटतापि हृदयेन मातुलानि कथं निर्वेद्यते तस्मिन् ।
[6]आदर्शे प्रतिबिम्बमिव यस्मिन्दुःखं न संक्रामति ॥]

प्रयत्नसाधितामपि युवतीं विमृश्यकारितया नोपगच्छन्तं नायकमुत्साहयितुं दूती सोपालम्भमन्यापदेशेनाह—

पासासङ्की काओ णेच्छदि[7] दिण्णं पि पहिअघरणीए ।
ओ[8]अन्तकरअलोगलिअवलअमज्झट्ठिअं पिण्डम् ॥ ५ ॥

[पाशाशङ्की काको नेच्छति[9] दत्तमपि पथिकगृहिण्या ।
[10]अवनतकरतलावगलितवलयमध्यस्थितं पिण्डम् ॥]

यथा पथिकगृहिण्या दत्तमप्यवनतादधोमुखीकृतात्करतलाद्गलितस्य वलयस्य मध्ये स्थितं भक्तपिण्डं काकः पाशशङ्कया नेच्छति तथा त्वमप्येनां मया दीयमानामपि भयशङ्कया परिहरसीति भावः ॥

---

१. 'गुणअएलओ' इति ग-पाठः. २. 'णिग्गुणाओ' इति ग-पाठः. ३. 'गुणार्णवो न स लोकः । अथवा वयं निर्गुणा अधिकगुणः स जनस्तस्य ॥' इति घ-पुस्तके, 'गुणज्ञ एव न स जनः । अथवा वयमेव निर्गुणा बहुगुणवन्तो जनास्तस्य ॥' इति च ग-पुस्तके पाठः. ४. 'अद्दाए' इति ख-ग-पाठः. ५. 'स्फुटितेनापि हृदयेन कथं भगिनि निर्वृतीभूयते तस्मिन् ।' इति ग-पुस्तके, 'स्फुटं तेनापि हृदये मातुलि कथं निवारिते तस्मिन् ।' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'अवदाते प्रतिबिम्बमिव' इति घ-पाठः. ७. 'णेच्छवइ' इति ख-ग-पाठः. ८. 'ओणन्त' इति ग-पाठः. ९. 'न स्पृशति दत्तमपि बलिं' इति ग-पाठः. १०. 'उन्नत' इति घ-पाठः.

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तस्यागमनत्वरार्थं तत्समीपगामिनं पान्थमाह—

ओहिदिअहागमासंकिरीहिँ सहिआहिँ कुड्डलिहिआओ ।
दोतिण्णि तहिं विअ चोरिआएँ रेहा पुसिज्जन्ति ॥ ६ ॥

[अवधिदिवसागमाशङ्किनीभिः सखीभिः कुड्यलिखिताः ।
द्वित्रास्तत्रैव चोरिकया रेखाः प्रोञ्छयन्ते ॥]

अवधिदिनेऽपि त्वयि नागच्छति नूनमियं प्राणानपि जह्यादिति भावः ॥

कोऽपि कामुकश्चन्द्रवर्णनच्छलेनात्मनोऽभिलाषं प्रकाशयन्नायिकामाह—

तुह मुहसारिच्छं ण लहइ त्ति संपुण्णमण्डलो विहिणा ।
अण्णमअं व्व घडइउं पुणो वि खण्डिज्जइ मिअङ्को ॥ ७ ॥

[तव मुखसादृश्यं न लभत इति संपूर्णमण्डलो विधिना ।
अन्यमयमिव घटयितुं पुनरपि खण्ड्यते मृगाङ्कः ॥]

अन्यमयमन्यप्रकारम् ॥

ग्रामान्तरगमनाय कृतप्रस्थानस्य गेहान्तरे स्थितस्य नायकस्य गमननिषेधार्थं सखी तत्प्रियावृत्तान्तमाह—

अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति गणरीए ।
पढम व्विअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहिँ चित्तलिओ ॥ ८ ॥

[अद्य गत इत्यद्य गत इत्यद्य गत इति गणनशीलया ।
प्रथम एव दिवसार्धे कुड्यं रेखाभिश्चित्रितम् ॥]

तदेवं त्वद्विरहविक्लवां तां विहाय गन्तुं नोचितमिति भावः ॥

पूर्वमकृतस्वीकारायाः पश्चाच्चिरप्रार्थनया स्वीकारं कृतवत्याः प्रथमसमागम एव नायकगुणरञ्जितायाः प्रथमास्वीकारजनितविलक्षं वदनमालोक्य निजगुणगर्वितो नायकः सहचरमाह—

ण वि तह पढमसमागमसुरअसुहे पाविएवि परिओसो ।
जह वीअदिअह सविलक्खलक्खिए वअणकमलम्मि ॥ ९ ॥

---

१. 'तीअ लिहिआए' इति ग-पाठः. २. 'संकीर्तिनीभिः सखीभिस्तस्यालिखन्त्याः । द्वित्रास्तास्मिंश्चोरिकया रेखाः प्रक्षिप्यन्ते ॥' इति ग-पाठः. ३. 'भित्तिलिखिताः । द्वित्रित्वमेव गता तस्या रेखाः प्रसार्यन्ते ॥' इति घ-पाठः. ४. 'पुनः पुनः' इति घ-पाठः. ५. 'गओ इति' इति ग-पाठः. ६. 'दिवसद्धे' इति ग-पाठः. ७. 'कुड्यो रेखाभिश्चित्रितः' इति ग-पुस्तके, 'भित्ती रेखाभिश्चित्रिता' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'सुहेणावि परिओसो' इति ग-पाठः. ९. 'जह वीअदिअहरम्भे चुम्बणवलिए वअणकमलम्मि' इति ख-पाठः.

[नापि तथा प्रथमसमागमसुरतसुखे[1] प्राप्तेऽपि परितोषः ।
यथा द्वितीय[2]दिवससविलक्षलक्षिते वदनकमले ॥]

अपि सत्यं कुसुममया बाणा मन्मथस्येति सख्या पृष्टा सखी सवैदग्ध्यं तामाह—

जे[3] समुहागअबोलन्तवलिअपिअपेसिअच्छिविच्छोहा ।
अह्मं ते मअणसरा जणस्स जे होन्ति ते होन्तु ॥ १० ॥

[ये[4] संमुखागतव्यतिक्रान्तवलितप्रियप्रेषिताक्षिविक्षोभाः ।
अस्माकं ते मदनशरा जनस्य ये भवन्ति ते भवन्तु ॥]

संमुखागतेन व्यतिक्रम्य गच्छता परिवृत्तेन प्रियेण प्रेषिता ये अक्षिविक्षोभा लीलातरलकटाक्षा इत्यर्थः ॥

कामपि रमणीं प्रति साभिलाषः कश्चिदात्मनोऽभिप्रायं प्रकाशयन्नाह—

इअरो जणो ण पावइ तुह जघणारुहणसंगमसुहेल्लिम् ।
अणुहवइ कणअडोरो हुअवहवरुणाणँ माहप्पम् ॥ ११ ॥

[इतरो जनो न प्राप्नोति[5] तव जघनारोहणसंगमसुखकेलिम् ।
अनुभवति कनकदोरो[6] हुतवहवरुणयोर्माहात्म्यम् ॥]

तव जघनारोहणपूर्वकेण संगमेन यत्सुखं तदितरो जनोऽग्निपानीयाख्यव्रतरहितो न प्राप्नोति । मुहुरग्नौ मुहुर्जले प्रवेशस्य फलं कनकदोरोऽनुभवतीत्यर्थः ॥

कामुकं प्ररोचयितुं दूती नायिकायाः सौभाग्यातिशयमाह—

जो[7] जस्स विहवसारो तं सो देइ त्ति किं एत्थ[8] अच्छेरम् ।
अणहोन्तं पि खु दिण्णं दोहग्गं तइ सवत्तीणम् ॥ १२ ॥

[यो[9] यस्य विभवसारस्तं स ददातीति किमत्राश्चर्यम् ।
अभवदपि[10] खलु दत्तं दौर्भाग्यं त्वया सपत्नीनाम्[11] ॥]

अभवत् अविद्यमानम् ॥

---

१. 'सुखेनापि भवति परितोषः' इति ग-पुस्तके, 'सुखेन विद्यते परितोषः' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'द्वितीयदिवसविलक्षं लक्षिते' इति ग-पुस्तके, 'द्वितीयरतारम्भे चुम्बनवलिते' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'जे पमुहागअ' इति ग-पाठः. ४. 'ये प्रमुखागतव्युत्क्रामद्वलितप्रियप्रेक्षिताक्षि' इति ग-पाठः. ५ 'प्राप्यते' इति घ-पाठः. ६. 'कनकसूत्रं हुतवहवर्णज्ञानमाहात्म्यम्' इति घ-पाठः. ७. 'जं जस्स विभवसारं' इति ख-पाठः. ८. 'एत्थ' इति ग-पाठः. ९. 'यद्यस्य विभवसारं तत्स' इति ग-पाठः. १०. 'अविद्यमानमपि' इति घ-पाठः. ११. 'सपत्नीभ्यः इति घ-पाठः.

प्रोषितः कश्चिदुत्कण्ठाविनोदनार्थं प्रियां स्मरन्सहचरमाह—

चन्दसरिसं मुहं से सरिसो अमअस्स मुहरसो तिस्सा ।
सकअग्गह[1]रहसुज्जलचुम्बणअं कस्स सरिसं से ॥ १३ ॥

[चन्द्रसदृशं मुखं [2]तस्याः सदृशोऽमृतस्य मुखरसस्तस्याः ।
सकचग्रह[3]रभसोज्ज्वलचुम्बनकं कस्य सदृशं [4]तस्याः ॥]

विमृश्यकारिणं नायकमुत्साहयितुं दूत्याह—

उप्पण्णत्थे कज्जे अइचिन्तन्तो गुणागुणे तम्मि ।
चिर[5]आलमन्दपेच्छित्तणेण पुरिसो हणइ कज्जम् ॥ १४ ॥

[[6]उत्पन्नार्थे कार्येऽतिचि[7]न्तयन्गुणागुणौ तस्मिन् ।
[8]चिरकालमन्दप्रेक्षित्वेन पुरुषो हन्ति कार्यम् ॥]

उत्पन्नः सिद्धोऽर्थोऽभिलषितपदार्थो यत्र तस्मिन् । फलाभिमुखे कार्ये इति यावत् ॥

विरहमसहमाना कापि प्रणयकुपितं कान्तमनुनयन्त्याह—

बालअ तुमाहि अहिअं णिअअं विअ वल्लहं महं जीअम् ।
तं तइ विणा ण होइ त्ति तेण कुविअं पसाएमि ॥ १५ ॥

[बालक [9]त्वत्तोऽधिकं नि[10]जकमेव वल्लभं मम जीवितम् ।
तत्त्वया विना न भवतीति तेन कुपितं प्रसादयामि ॥]

प्रथमं कुपितां चरणप्रणामोत्तरं प्रसन्नां 'मिथ्या खलवचनदूषितचित्तया मया खेदितोऽसि' इति वदन्तीं प्रियां प्रियः पुनरपि खलवचने प्रत्येष्यसीति काक्वा विधिमुखेन निषेधयन्नाह—

[11]पत्तिअ ण पत्तिअन्ती जइ तुज्झ इमे ण मज्झ रुअईए ।
पुट्ठीअ बाहबिन्दू पुलउब्भेएण भि[12]ज्जन्ता ॥ १६ ॥

---

१. 'रहसुव्वेल्लचुम्बणं' इति ग-पाठः. २. अस्याः' इति ग-पाठः. ३. 'रभसोद्वेल्लचुम्बनं' ग-पाठः. ४. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ५. अइ सुन्दर सह्णपेच्छित्तणेण' इति ग-पाठः. ६. 'उपन्यस्ते' इति घ-पाठः ७. 'चिन्तयमानः' इति ग-पाठः. ८. 'अतिसुन्दरश्लक्ष्णप्रेक्षित्वेन' इति ग-पुस्तके, 'चिरकालशून्यप्रेक्षित्वेन' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'त्वत्तोऽप्यधिकं' इति ग-पाठः. १०. 'नियतमेव' इति घ-पाठः. ११. 'पत्तअ ण पत्तअन्ती' इति ग-पाठः. १२. 'भिज्जन्तो' इति ग-पाठः.

[प्रतीहि न प्रतीयन्ती यदि तवेमे न मम रोदनशीलायाः ।
पृष्ठस्य बाष्पबिन्दवः पुलकोद्भेदेन भिद्यमानाः ॥]

प्रतीहि प्रत्ययं कुर्विति सशिरश्चालनकाकूक्त्या खलवचसि प्रत्ययमन्यदापि न करिष्यसीत्यर्थः । एतदेव द्रढयन्नाह—न प्रतीयन्तीत्यादिना । रोदनशीलायास्तव इमे बाष्पबिन्दवो मम पृष्ठस्य पुलकोद्भेदेन यदि न भिद्यमाना भिन्ना नाभविष्यन्, तदा त्वं न प्रतीयन्ती प्रत्ययं नाकरिष्य एवेत्यर्थः । तवाश्रुजलस्पर्शादपि मम पृष्ठे पुलकः संजातः । तत्किं खलवचसा मामननुरक्तं कलयसीति भावः ॥

नायकस्य दृढसौहृदमिच्छन्ती नायिका दूतीं सदृष्टान्तमाह—

तं मित्तं काअव्वं जं किर वसणम्मि देसआलम्मि ।
आलिहिअभित्ति वाउल्लअं व ण परम्मुहं ठाइ ॥ १७ ॥

[तन्मित्रं कर्तव्यं यत्किल व्यसने देशकालेषु ।
आलिखितभित्तिपुत्तलकमिव न पराङ्मुखं तिष्ठति ॥]

व्यसने विपदि । देशे देशान्तरे काले यौवनाद्यपगमे । वाउल्लअं पुत्तलिकेति देशी ॥

निभृतमपि धूर्ताः कलयन्तीति विज्ञत्वं ख्यापयन्नागरिकः सहचरमाह—

बहुआइ णइणिउञ्जे पढमुग्गअसीलखण्डणविलक्खम् ।
उड्डेइ विहंगउलं हा हा पक्खेहिँ व भणन्तम् ॥ १८ ॥

[वध्वा नदीनिकुञ्जे प्रथमोद्गतशीलखण्डनविलक्षम् ।
उड्डीयते विहंगकुलं हा हा पक्षैरिव भणत् ॥]

पक्षैर्हाहेति भणदिवेति योजना ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तमागमनत्वरार्थमाह—

सच्चं भणामि बालअ णत्थि असक्कं वसन्तमासस्स ।
गन्धेण कुरवआणं मणं पि असइत्तणं ण गआ ॥ १९ ॥

[सत्यं भणामि बालक नास्त्यशक्यं वसन्तमासस्य ।
गन्धेन कुरबकाणां मनागप्यसतीत्वं न गता ॥]

---

१. 'प्रतीहि न प्रत्ययमस्या' इति ग-पुस्तके, 'प्रतीय न प्रतियन्ती' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'रुदन्त्याः' इति ग-पाठः. ३. 'पृष्ठे' इति ग-पुस्तके, 'पृष्ठीय' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४ 'भिद्येरन्' इति ग-पुस्तके, 'भिन्नाः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'वाउल्लओ' इति ग-पाठः. ६. 'यदेव' इति ग-पाठः. ७. 'देशकालयोः' इति घ-पाठः. ८. 'आलिखितचित्रबक इव' इति ग-पाठः. ९. 'उड्डयते' इति ग-पाठः. १०. 'असज्झं' इति ग-पाठः. ११. 'असाध्यं' इति ग-पाठः.

नास्त्यशक्यमिति तथा च स्खलितमेव मन इति भावः । मनागपीति त्वदागमनप्रत्याशया शीलं रक्षतीत्यर्थः । तद्यावदस्याः शीलखण्डनं न भवति तावत्त्वरितं संभावयैनामिति भावः ॥

नायकं प्रति दूती कस्याश्चिदनुरागातिशयमाह—

एक्केक्कम[1]वइवेठणविवरन्तरदिण्णतरलणअणाए ।
तइ बोलन्ते बालअ पञ्जरसउणाइअं तीए ॥ २० ॥
[[2]ऐकैकवृतिवेष्टनविवरान्तरदत्ततरलनयनया ।
त्वयि [3]व्यतिक्रान्ते बालक पञ्जरशकुनायितं तया ॥]

एकैकस्मिन् वृतिवेष्टनस्य विवरान्तरे दत्तं तरलं नयनं यया एतादृश्या तया पञ्जरशकुनवदाचरितम् । यथा पञ्जरबद्धः पक्षी प्रतिविवरं दत्तदृष्टिर्भ्रमति तथा तयापि त्वद्दर्शनलालसया भ्रान्तमित्यर्थः ॥

तद्गेहमार्गेण गतोऽप्यहं तया न दृष्ट इति वदन्तमुपनायकं दूती नायिकादोषं परिहरन्त्याह—

ता किं करेउ जइ तं सि तीअ वइवेठपे[4]ल्लिअथणीए ।
पाअङ्गुट्ठद्धक्खित्तणीसहङ्गीअ वि ण दिट्ठो ॥ २१ ॥
[तत्किं करोतु यदि [5]त्वमसि तया वृतिवेष्टनप्रे[6]रितस्तनया ।
पादाङ्गुष्ठार्धक्षि[7]प्तनिःसहाङ्ग्यापि न दृष्टः ॥]

वृतिवेष्टनस्योच्चतया कृतयत्नयापि तया यदि न दृष्टस्तदा कस्तस्या दोष इति भावः॥

पथिकजायाभिलाषिणं कामुकं दूती नायिकाया निजनायकेऽनुरागातिशयसूचनेनासाध्यत्वं प्रतिपादयितुमाह—

पिअसंभरणपलोट्टन्तवाहधाराणिवाअभीआए ।
दिज्जइ वङ्कग्गीवाएँ दीवओ पहिअर्जाआए ॥ २२ ॥
[[9]प्रियसंस्मरण[10]प्रलुठद्बाष्पधारानिपातभीतया ।
दीयते वक्रग्रीवया दीपकः [11]पथिकजायया ॥]

---

१. 'वइवेठणविवरन्तरतरलदिण्णणअणाए' इति क-पाठः. २. 'एकक्रमवृतिवेष्टनविवरान्तरतरलदत्तनयनया' इति घ-पाठः. ३. 'व्युत्क्रामति' इति ग-पाठः. ४. 'पेल्लण' इति क-पाठः. ५. 'तया त्वमसि' इति ग-पाठः. ६. 'प्रेरितस्तन्या' इति ग-पाठः. ७. 'निक्षिप्त' इति ग-पाठः. ८. 'घरणीए' इति ग-पाठः. ९. 'प्रियस्मरणप्रत्यागतबाष्प' इति ग-पाठः. १०. 'प्रगलद्बाष्प' इति घ-पाठः. ११. 'पथिकगृहिण्या' इति ग-पाठः.

कमपि युवानमनुरञ्जयितुं दूती कस्याश्चित्स्नेहदैन्यसूचकं परिवृत्त्यावलोकनमाह—

तइ बोलन्ते बालअ तिस्सा अङ्गाइँ तह णु वलिआइं ।
जह पुट्ठिमज्झणिवतन्तवाहधाराओँ दीसन्ति ॥ २३ ॥

[त्वयि [1]व्यतिक्रामति बालक तस्या अङ्गानि तथा नु वलितानि ।
यथा पृष्ठमध्यानिपतद्बाष्पधारा दृश्यन्ते ॥]

वलितानि परिवृत्तानि ॥

कापि प्रियतमविरहस्य दुःसहत्वमन्यापदेशेनाह—

ता [2]मज्झिमो व्विअ वरं दुज्जणसुअणेहिँ दोहिँ वि ण कज्जम् ।
जह दिट्ठो तवइ खलो तहे अ सुअणो अईसन्तो ॥ २४ ॥

[तन्मध्यम एव वरं दुर्जनसुजनाभ्यां द्वाभ्यामपि [3]न कार्यम् ।
यथा दृष्टस्[4]तापयति खलस्तथैव सुजनोऽदृश्यमानः ॥]

काप्यात्मनः पतिं साभिलाषमवलोकयन्तीं सेर्ष्यमाह—

अद्धच्छिपेच्छिअं मा करेहि साहाविअं पलोएहि ।
सो वि सुदिट्ठो [5]होहिइ तुमं पि मुद्धा कलिज्जिहिसि ॥ २५ ॥

[अर्धाक्षिप्रेक्षितं मा [6]कुरु स्वाभाविकं प्रलोकय ।
सोऽपि सुदृष्टो भविष्यति त्वमपि मुग्धा कलिष्यसे ॥]

अर्धाक्षिप्रेक्षितं कटाक्षनिरीक्षणम् ॥

प्रोषितः कश्चित्कुलपालिकाया निजवनितायाश्चरितमनुस्मरन्वयस्यमाह—

दिअहं खुडक्किआए तीए काऊण गेहवावारम् ।
गरुए वि मण्णुदुःखे मरिमो पाअन्तसुत्तस्स ॥ २६ ॥

[[7]दिवसं [8]रोषमूकायास्तस्याः कृत्वा गेहव्यापारम् ।
गुरुकेऽपि मन्युदुःखे स्मरामः पादान्तसुप्तस्य ॥]

खुडक्किआ रोषमूका । गुरुके मन्युदुःखे दिवसं व्याप्य गेहव्यापारं कृत्वा रोषमूकायास्तस्याः पादान्तशयनं स्मराम इति संबन्धः ॥

---

१. 'व्यतिक्रान्ते' इति ग-पाठः २. 'मज्झमो' इति ग-पाठः. ३. 'न मे कार्यम्' इति ग-पाठः. ४. 'तपति' इति घ-पाठः. ५. 'होइहि' इति क-पाठः. ६. 'कुरुष्व' इति ग-पाठः. ५. 'दिवसं व्याप्य' इति क-ख-ग-पाठः. ८. 'कुपितायाः' इति ग-पाठः.

कमप्यनुरक्तं धनिकमधमस्त्रीसङ्गदोषेण परिहरन्तीं दुहितरं वेश्यामाता शिक्षयितुमाह—

पाणउडीअ विं जलिऊण हुअवहो जलइ जण्णवाडम्मि ।
ण हु ते परिहरिअव्वा विसमदसासंठिआ पुरिसा ॥ २७ ॥

[पानकुट्यामपि ज्वलित्वा हुतवहो [1]ज्वलति यज्ञवाटे[2]ऽपि ।
[3]न खलु ते[4] परिहर्तव्या विषमदशासंस्थिताः पुरुषाः ॥]

पानकुटी चण्डालकुटी ॥

स्वभर्तरि विरागं सूचयन्तीं कमप्यसती सतीं निजभार्यां बहुमन्यमानं युवानं सवैदग्ध्यानुरागमाह—

जं तुज्झ सई जाआ असईओ जं[5] च सुहअ अह्ये वि ।
ता किं फुट्टउ बीअं तुज्झ समाणो जुआ णत्थि ॥ २८ ॥

[यत्तव सती जाया असत्यो यच्च [6]सुभग वयमपि ।
तत्किं स्फुटतु बीजं [7]तव समानो युवा नास्ति ॥]

स्फुटतु प्रकटीभवतु । तदेव बीजमाह—तव समान इति । एतदेव बीजमिति भावः॥

कापि कस्मिन्नप्यनुरागातिशयं प्रकाशयन्ती दूतीमाह—

सव्वस्सम्मि वि दद्धे तहवि हु हिअअस्स णिव्वुदि च्चेअ ।
जं तेण गामडाहे हत्थाहत्थिं कुडो गहिओ ॥ २९ ॥

[सर्वस्वेऽपि दग्धे तथापि [8]खलु हृदयस्य निर्वृतिरेव ।
यत्तेन ग्रामदाहे हस्ताहस्तिकया कुटो गृहीतः ॥]

कुटो घटः ॥

गृहकर्मव्यापृता काचिदसती कामुकमनोरथसंपादनासमर्था तत्प्रहितां दूतीमन्यापदेशेनाह—

जाएज्ज वणुद्देशे कुज्जो वि हु [9]णीसहो झडिअपत्तो ।
मा माणुसम्मि लोए [10]ताँई रसिओ दरिद्दो अ ॥ ३० ॥

---

१. 'ज्वलयति' इति ग-पाठः. २. 'अपि' इति घ-पुस्तके नास्ति. ३. 'नैव ते' इति ग-पाठः. ४. 'ते' इति घ-पुस्तके नास्ति. ५. 'सुहअ जं च' इति ग-पाठः. ६. 'सुभग यच्च' इति ग-पाठः. ७. 'त्वत्समो' इति ग-पाठः. ८. 'च' इति ग-पाठः. ९. 'खालुओ गलितवत्तो' इति ग-पाठः. १०. 'वाई सारसो' इति क-पाठः.

[जायतां[1] वनोद्देशे कुब्जोऽपि[2] खलु निःशाखः शिथिलपत्रः[3] ।
मा मानुषे लोके त्यागी रसिको दरिद्रश्च ॥]

त्यागी दित्सुः । रसिकः सानुरागः, शृङ्गारी च । दरिद्रो निर्धनः । अवसररहितश्च त्यागित्वादिगुणयुक्तो मा जायतामिति संबन्धः ॥

जारं प्रत्यनुरागातिशयं सूचयन्ती कापि तन्मित्रमाह—

तस्स अ सोहग्गगुणं अमहिलसरिसं च साहसं मज्झ ।
जाणइ गोलाऊरो वासारत्तोद्धरत्तो अ ॥ ३१ ॥

[तस्य च सौभाग्यगुणममहिलासदृशं च साहसं मम ।
जानाति गोदापूरो[4] वर्षारात्रार्धरात्रश्च ॥]

वर्षास्वर्धरात्रे जलपूर्णगोदावरीतरणं तदभिसरणार्थं करोमीति भावः ॥

कथमधुना सतीत्वमवलम्बितमिति केनापि कामुकेन सपरिहासमुक्ता कुलटा तमाह—

ते वोलिआ वेअस्सा[5] ताण कुडङ्गाण थाणुआ सेसा ।
अम्हे वि गअवआओ मूलुच्छेअं गअं पेम्मम् ॥ ३२ ॥

[ते व्यतिक्रान्ता[6] वयस्यास्तेषां कुञ्जानां[7] स्थाणवः[8] शेषाः ।
वयमपि गतवयस्का मूलोच्छेदं[9] गतं प्रेम ॥]

ते वयस्याः समानशीला व्यतिक्रान्ता दूरं गताः । येषु तैः सह सुरतसुखमनुभूतं तेषां लतागृहाणां स्थाणवोऽवशिष्टाः । अतो मूलोच्छेद्यमुच्छिन्नमूलं प्रेम गतम् । नष्टमित्यर्थः ॥

कामपि गतयौवनां कुलटां प्रति नागरिकः सपरिहासमाह—

थणजहणणिअम्बोवरि णहरङ्का[10] गअवआण वणिआणम्[11] ।
उव्वसिआणङ्गणिवासमूलबन्ध व्व दीसन्ति ॥ ३३ ॥

[स्तनजघननितम्बोपरि नखराङ्का[12] गतवयसां वनितानाम् ।
उद्वसितानङ्गनिवासमूलबन्धा[13] इव दृश्यन्ते ॥]

---

१. 'उत्पश्यामि' इति ग-पुस्तके, 'जायेत' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'कुब्जकोऽपि स्थाणुको गलितपत्रः' इति ग-पाठः. ३. 'गलितपत्रः' इति घ-पाठः. ४. 'गोदावरीपूरे' इति क-ख-पाठः. ५. 'वेअस्सा' इति ग-पाठः. ६. 'व्यतीता वेतसाः' इति ग-पाठः. ७. 'कुरङ्गाणां' इति घ-पाठः. ८. 'स्थाणुकाः' इति ग-पाठः. ९. 'मूलोच्छेदं' इति ग-पाठः. १०. 'दशणङ्का' इति ग-पाठः. ११. 'विलआणम्' इति ख-ग-पाठः. १२. 'दशनाङ्गा गतवयस्कानां स्त्रीणाम्' इति ग-पाठः. १३. 'बन्धमिव' इति घ-पाठः.

उद्वसितस्य शून्यीकृतस्यानङ्गनिवासस्य मूलबन्धा इवेत्यर्थः ।

बहुभिर्युष्माभिस्तां दृष्ट्वा आगतम्। तदुच्यतां कीदृक्तस्या रूपमिति नायकेन पृष्टाः सहचराः प्राहुः—

जस्स जहं विअ पढमं तिस्सा अङ्गम्मि णिवडिआ दिट्ठी ।
तस्स तहिं चेअ ठिआ सव्वङ्गं केण वि ण दिट्ठम् ॥ ३४ ॥

[यस्य यत्रैव[1] प्रथमं तस्या अङ्गे[2] निपातिता दृष्टिः ।
तस्य तत्रैव[3] स्थिता सर्वाङ्गं केनापि न दृष्टम् ॥]

अत्यन्तविरहसंतप्तः प्रवासादागतः प्रियासंगमेन संतुष्टः कश्चिदाह—

विरहे विसं व विसमा अमअमआ होइ संगमे अहिअम् ।
किं विहिणा समअं विअ दोहिं वि पिआ विणिम्मिअआ ॥ ३५ ॥

[विरहे विषमिव विषमामृतमया[4] भवति संगमेऽधिकम् ।
किं[5] विधिना सममेव द्वाभ्यामपि प्रिया विनिर्मिता ॥]

द्वाभ्यां विषामृताभ्याम् ॥

चिरप्रवासागतेन भुजंगेनोपालब्धा वेश्यामाता भुजंगान्तरलग्नाया दुहितुर्दोषं परिहरन्ती आह—

अद्दंसणेण पुत्तअ[6] सुट्ठु वि णेहाणुबन्धघडिआइं[7] ।
हत्थउडपाणिआइँ व कालेण गलन्ति पेम्माइं ॥ ३६ ॥

[अदर्शनेन पुत्रक सुष्ठ्वपि स्नेहानुबन्धघटितानि[8] ।
हस्तपुटपानीयानीव कालेन गलन्ति प्रेमाणि ॥]

स्त्रीणां बहुच्छलत्वं दर्शयन्ती दूती कमपि युवानं साभिप्रायमाह—

पइपुरओ व्विअ णिज्जइ विंच्छुअदट्ठेत्ति[9] जारवेज्जघरं[10]म् ।
णिउणसही[11]करधारिअ भुअजुअलन्दोलिणी बाला ॥ ३७ ॥

[पतिपुरत एव नीयते वृश्चिकदष्टेति जारवैद्यगृहम् ।
निपुणसखी[12]करधृता भुजयुगलान्दोलनशीला बाला ॥]

---

१. 'यस्मिन्नेव' इति ग-पाठः. २. 'अङ्गेषु' इति घ-पाठः. ३. 'तस्मिन्नेव' इति ग-पाठः. ४. 'अमृतमयी' इति ग-घ-पाठः. ५. 'किं सममेव विधिना' इति ग-पाठः. ६. 'बालअ' इति ग-पाठः. ७. 'घडिआणम्' इति ग-पाठः. ८. 'घटितानाम्' इति ग-पाठः. ९. 'विछुआडक्कत्ति' इति ग-पाठः. १०. 'हरम्' इति ग-पाठः. ११. 'सहीकरलम्बिअकरवलअन्दोलिरी' इति क-ख-पाठः. १२. 'सखीकरलम्बितकरवलयान्दोलशीला' इति घ-पाठः.

निपुणाभिरभिप्रायज्ञाभिः सखीभिः करे धृता विषजनितमूर्च्छाछलेन भुजयुगलान्दोलनशीला । बालेति प्रगल्भायास्तु कैतवं किं वक्तव्यमिति भावः ॥

नीचजनस्य कार्यैकपरतां सूचयन्ती पूर्वसुभगा नववधूसंक्रान्तस्नेहं कान्तमन्यापदेशेनाह—

विक्किणइ माहमासम्मि पामरो पाइडिं वइल्लेण ।
णिद्धूममुम्मुर व्विअ सामलीअ थणो पडिच्छन्तो ॥ ३८ ॥

[विक्रीणीते माघमासे पामरः प्रावरणं बलीवर्देन ।
निर्धूममुर्मुरनिभौ श्यामल्याः स्तनौ पश्यन् ॥]

सोष्मत्वेन शीतनिस्तारहेतुत्वान्निर्धूमतुषाग्निसादृश्यम् । तवापीदानीं लब्धाभिनववधूकस्य किं मया कार्यमिति भावः ॥

स्त्रीषु कदापि विश्वासो न कर्तव्य इति बन्धुजनशिक्षार्थं काचिदाह—

सच्चं भणामि मरणे ट्ठिअम्हि पुण्णे तडम्मि तावीए ।
अज्ज वि तत्थ कुडङ्गे णिवडइ दिट्ठी तह च्चेअ ॥ ३९ ॥

[सत्यं भणामि मरणे स्थितास्मि पुण्ये तटे ताप्याः ।
अद्यापि तत्र निकुञ्जे निपतति दृष्टिस्तथैव ॥]

मरणे स्थितास्मि गृहीतमरणव्रतास्मीत्यर्थः । तत्राभिसारस्थाने । तथैव अभिसारोत्सुकैव । अतः स्त्रीषु न विश्वसेदित्यर्थः ॥

असतीभिरभिसार्यमाणभर्तृका कुलवधूः सखीजनमाह—

अन्धअरबोरपत्तं व माउआ मह पइं विलुम्पन्ति ।
ईसाअन्ति महं विअ छेप्पाहिन्तो फणो जाओ ॥ ४० ॥

[अन्धकरबदरपात्रमिव मातरो मम पतिं विलुम्पन्ति ।
ईर्ष्यन्ति मह्यमेव लाङ्गूलेभ्यः फणो जातः ॥]

१.'पारिडिं' इति ख-पुस्तके, 'पावलिं' इति च ग-पुस्तके पाठः. २ 'मुम्मुरसच्छहे' इति ग-पाठः. ३. 'थणए पडीच्छन्तो' इति ख-पुस्तके, 'थणए णिअच्छन्तो' इति च ग-पुस्तके पाठः. ४. 'विक्रीणाति' इति ग-घ-पाठः. ५. 'पटीं' इति ग-पुस्तके, 'प्रावरं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६.'निर्धूमाङ्गारसदृशयोः श्यामायाः स्तनयोर्नियच्छन्' इति ग-पुस्तके, 'निर्धूममुर्मुराविव श्यामल्याः स्तनौ प्रतीक्षमाणः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'कुरङ्गे' इति घ-पाठः. ८.'पत्थिं' इति ख-ग-पाठः. ९. 'भाजनमिव' इति ग-पुस्तके, 'प्रस्थमिव' इति च घ-पुस्तके पाठः. १०. 'मायाविन्यः' इति ग-पाठः. ११.'ईर्ष्यन्ते मय्येव पुच्छादेव फणो' इति ग-पुस्तके, 'ईर्ष्यायति मह्यमेव पुच्छात्फणो' इति च घ-पुस्तके पाठः.

हे मातरः, अन्धहस्तस्थितं बदरपात्रमिव मम पतिं विलुम्पन्ति चौर्येणाभिसरन्ति। अथ च मह्यमेवेर्ष्यन्ति। अतो लाङ्गूलेभ्यः फणोत्पत्तिवद्विपरीतमेवैतदित्यर्थः॥

नीचस्याल्पधनेनैव गर्वातिशयो भवतीति प्रतिपादयन्ती दूती कस्याश्चिदल्पद्रव्यसाध्यत्वं सूचयितुं नायकमाह—

अप्पत्तपत्तअं पाविऊण णवरङ्गअं हलिअसोण्हा।
उअह तंणुई[1] ण माअइ रुन्दासु वि गामरच्छासु॥ ४१॥

[अप्राप्तप्राप्तं प्राप्य नवरङ्गकं हलिकस्नुषा।
पश्यत तन्वी[2] न माति विस्तीर्णास्वपि ग्रामरथ्यासु॥]

अप्राप्या अलभ्या प्राप्तिर्लाभो यस्य। अलभ्यलाभमिति यावत्। नवरङ्गकं कुसुम्भवस्त्रम्॥

कापि प्रत्यक्षदृष्टापराधपरिहारोचितप्रत्युत्तरकुशलां सखीं सबहुमानमाह—

आ[3]क्खेवआइँ पिअजम्पिआइँ परहिअअणिं[4]व्वुदिअराइं।
विरलो खु[5] जाणइ जणो उप्पण्णे जम्पिअव्वाइं॥ ४२॥

[वाँ[6]क्षेपकाणि प्रियजल्पितानि परहृदयनिर्वृतिकराणि।
विरलः खँ[7]लु जानाति जन उत्पन्ने जँ[8]ल्पितव्यानि॥]

वाक्क्षेपकाणि प्रतिवादिवचनास्कन्दकानि। संप्रत्ययोत्पादनकौशलात्परहृदयनिर्वृतिकराणि। उत्पन्ने अपराधादौ जल्पितव्यानि विरलो जनो जानातीत्यर्थः। त्वमेव परमीदृशानि प्रियवचनानि वक्तुं जानासीति भावः॥

नायकस्यानीप्सितां गृहीतमानां सखीं बोधयितुमाह—

छज्जइ पहुस्स ललिअं पिआइ माणो खमा समत्थस्स।
जाणन्तस्स अ भणिअं मोणं च अआणमाणस्स॥ ४३॥

[शोभते प्रभोर्ललितं प्रियाया मानः क्षमा समर्थस्य।
जा[9]नतश्च भणितं मौनं चाँ[10]जानतः॥]

प्रभोर्ललितं स्वेच्छाक्रीडितं शोभते। प्रियाया मानः। न त्वप्रियायाः। शोभत इति सर्वत्र योज्यम्॥

---

१. 'तणुइ वि ण' इति ग-पाठः. २. 'तन्व्यपि न माति बृहतीष्वपि' इति ग-पाठः. ३. 'सच्चं पिआइं पिअजम्पिआइं' इति ग-पाठः. ४. 'णिव्वुइ' इति ग-पाठः. ५. 'व्व' इति ग-पाठः. ६. 'सत्यं प्रियाणि' इति ग-पुस्तके, 'अभ्याहितानि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'एव' इति ग-पाठः. ८. 'जल्पितानि' इति घ-पाठः. ९. 'जानन्तस्य च' इति घ-पाठः. १०. 'जानमानस्य' इति घ-पाठः.

प्रियं प्रति मदनलेखं लिखेति सख्योक्ता प्रोषितभर्तृका तामाह—

वेविरसिण्णकरङ्गुलिपरिग्गहक्खलिअलेहणीमग्गे ।
सोत्थि व्विअ ण समप्पइ पिअसहि लेहम्मि किं लिहिमो ॥४४॥

[वे¹पनशीलस्विन्नकराङ्गुलिपरिग्रहस्खलितलेखनीमार्गे ।
स्व²स्त्येव न समाप्यते प्रियसखि लेखे किं लिखामः ॥]

वेपनशीलाभिः स्विन्नाभिः कराङ्गुलिभिः परिग्रहेण स्खलिते लेखनीमार्गे स्वस्तीति वर्णद्वयमेव न निष्पद्यते । एतेन कम्पस्वेदाभ्यां सात्त्विकभावाभ्यां प्रियं प्रत्यनुरागातिशयः सूचितः ॥

अपि कृतकार्यासीति कयापि पृष्टा दूती स्वाकौशलमपनयन्ती आह—

देव्वम्मि पराहुत्ते पत्तिअ घडिअं पि विहडइ णराणम् ।
कज्जं वालुअवरणं व्व कहँ वि बन्धं विअ ण एइ ॥ ४५ ॥

[दैवे प³राङ्मुखे प्रतीहि घटितमपि विघटते नराणाम् ।
कार्यं वा⁴लुकावरण इव कथमपि बन्धमेव न ददाति ॥]

वरणः प्राकारः । बन्धमेव न ददाति घटयितुमेव न शक्यत इत्यर्थः ॥

मातुलान्या पूर्वं कथितसौन्दर्यादिगुणस्य नायकस्य स्वस्मिन्ननुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती कापि सानुरागमाह—

मामि हिअअं व पीअं तेण जुआणेण म⁵ज्जमाणाए ।
ण्हाणहलिद्दाकडुअं अणुसोत्तजलं पिअन्तेण ॥ ४६ ॥

[मा⁶तुलानि हृदयमिव पीतं तेन यू⁷ना मज्जन्त्याः ।
स्नान⁸हरिद्राकटुकमनुस्रोतोजलं पिबता ॥]

हे मातुलानि, मदङ्गसङ्गबहुमानात् हरिद्राकटुकमपि जलं पिबता तेन यूना मम हृदयमिव पीतम् । अपहृतमित्यर्थः । अतस्तत्प्राप्तौ यतस्वेति भावः ॥

---

१. 'वेपमानकराङ्गुलि' इति ग-पुस्तके, 'परसस्विन्नकराङ्गुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'स्तोस्त्येव समाप्यते प्रियमहिले वयं किं लिखामः' इति घ-पाठः. ३. 'विपरीते पत्रिकघटितमपि' इति ग-पाठः. ४. 'वालुकाप्राकारमिव कथमपि बन्धमेव न गच्छति' इति ग-पुस्तके, 'वालुकग्राहमिव कथं बन्धमेव नैति' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'मज्झ माणिअ अ' इति ग-पाठः. ६. 'मामि' इति ग-पाठः. ७. 'यूना मे मानिन्याः' इति ग-पाठः. ८. 'हरिद्रासुरभिसमुत्स्रोतोजलं' इति ग-पाठः.

कृतप्रणयकलहयोर्दंपत्योः प्रणयरोषभङ्गार्थं सखी आह—

[१]जिविअं असासअं विअ ण [२]णिवत्तइ जोव्वणं [३]अतिक्कन्तम् ।
दिअहा दिअहेहिँ समा ण होन्ति किं णिट्ठुरो लोओ ॥ ४७ ॥

[जीवित[४]मशाश्वतमेव न निवर्तते यौवनमतिक्रान्तम् ।
दिवसा दिवसैः [५]समा न भवन्ति किं निष्ठुरो लोकः ॥]

अहरहर्यौवनकालस्य च ह्रासात्किं रोषपारुष्येणात्मानं वञ्चयथ इति भावः ॥

वेश्योपभुज्यमानविभवं प्रियं कापि सासूयमन्यापदेशेनाह—

उप्पाइअदव्वाणँ वि खलाणँ को भाअणं खलो च्चेअ ।
पक्काइँ वि णिम्बफलाइँ णवरं काएहिँ खज्जन्ति ॥ ४८ ॥

[[६]उत्पादितद्रव्याणामपि खलानां को[७] भाजनं खल एव ।
[८]पक्कान्यपि निम्बफलानि केवलं काकैः खाद्यन्ते ॥]

उत्पादितं द्रव्यं यैस्तेषां खलानाम् । भाजनं दानपात्रम् ॥

इङ्गितज्ञतां ख्यापयन्नागरिकः सहचरमाह—

अज्ज मए गन्तव्वं घणन्धआरे वि तस्स सुहअस्स ।
अज्जा णिमीलिअच्छी पअपरिवाडिं घरे कुणइ ॥ ४९ ॥

[अद्य मया गन्तव्यं घनान्धकारेऽपि तस्य सुभगस्य ।
[९]आर्या निमीलिताक्षी पदपरिपाटीं गृहे करोति ॥]

नायिकानुरागं प्रकाशयन्त्या दूत्याः कामुकं प्रत्युक्तिरियमिति केचित् ॥

कृतविप्रियं प्रति प्रतिकूलाचरणप्रवृत्तस्य कस्यचिन्निवारणाय कश्चित्सुजनचरित्रं वर्णयति—

सुअणो ण कुप्पइ व्विअ अह कुप्पइ विप्पिअं ण चिन्तेइ ।
अह चिन्तेइ ण जम्पइ अह जम्पइ [१०]लज्जिओ होइ ॥ ५० ॥

---

१. 'जीअं असासिअं विअ' इति ग-पाठः. २. 'णिअत्तइ' इति ग-पाठः. ३. 'अइक्कन्तं' इति ख-ग-पाठः. ४. 'जीवमाश्वासितमेव' इति ग-पाठः. ५. 'न भवन्ति समाः' इति ग-पाठः. ६. 'उपार्जितद्रव्याणामपि' इति ग-पाठः. ७. 'को भवति भाजनं' इति ग-पाठः. ८. 'पक्कानीव निम्बफलानि काकेनैव खाद्यन्ते' इति ग-पाठः. ९. 'ईश्वरसुता' इति ग-पाठः. १०. 'लज्जिरो' इति ग-पाठः.

[सुजनो न कुप्यत्येव अथ कुप्यति विप्रियं न चिन्तयति।
अथ चिन्तयति न जल्पति अथ जल्पति लज्जितो भवति ॥]

तस्मादनुचितमिदं सुजनस्य भवत इति भावः ॥

भाविधनप्रत्याशया भुजंगे कृतानुरागां दुहितरं वारयन्ती वेश्यामाता धनादीनामुपादेयताप्रयोजकमाह—

सो अत्थो जो हत्थे तं मित्तं जं णिरन्तरं वसणे।
तं रूअं जत्थ गुणा तं विण्णाणं जहिं धम्मो ॥ ५१ ॥

[सोऽर्थो यो हस्ते तन्मित्रं यन्निरन्तरं व्यसने।
तद्रूपं यत्र गुणास्तद्विज्ञानं यत्र धर्मः ॥]

द्रव्यमादायैव त्वया भुजंगः स्वीकार्य इति भावः। यद्वा कांचिद्रूपगर्वितां निर्गुणां निन्दन्त्याः स्वगुणोत्कर्षं सूचयन्त्या इयमुक्तिः ॥

चिरप्रवासादागतो नायकः प्रियतमायाः परितोषार्थमाह—

चन्दमुहि चन्दधवला दीहा दीहच्छि तुह विओअम्मि।
चउजामा सअजाम व्व जामिणी कहँ वि वोलीणा ॥ ५२ ॥

[चन्द्रमुखि चन्द्रधवला दीर्घा दीर्घाक्षि तव वियोगे।
चतुर्यामा शतयामेव यामिनी कथमप्यतिक्रान्ता ॥]

मयेति शेषः ॥

दुर्जनमैत्री न चिरकालस्थायिनीति सखी नायिकां शिक्षयितुमाह—

अउलीणो दोमुहओ ता महुरो भोअणं मुहे जाव।
मुरओ व्व खलो जिण्णम्मि भोअणे विरसमारसइ ॥ ५३ ॥

[अकुलीनो द्विमुखस्तावन्मधुरो भोजनं मुखे यावत्।
मुरज इव खलो जीर्णे भोजने विरसमारसति ॥]

अकुलीनोऽसत्कुलप्रसूतः। मुरजपक्षे कौ पृथिव्यां न लीनः। द्विमुखः समक्षपरोक्षयोर्वचनभेदात्। पक्षे उभयमुखः। यावन्मुखे भोजनमाहारः पक्षे पिष्टादिलेपः। मधुरः प्रियवक्ता। पक्षे श्रुतिसुखावहः। भोजने जीर्णे विरसमप्रियम्। पक्षे रूक्षध्वनिम्। आरसति। यद्वा दुर्जनमुखपिण्डदानार्थं कुलटां शिक्षयन्त्या कुट्टन्या इयमुक्तिः ॥

---

१. 'कुप्यत एव' इति ग-घ-पाठः. २. 'यस्मिन्' इति ग-पाठः. ३. 'व्यतिक्रान्ता' इति ग-घ-पाठः. ४. 'जिण्णे' इति ग-पाठः. ५. 'मधुरं' इति घ-पाठः. ६. 'रज इव खलक्षीणो भाजने' इति घ-पाठः.

दर्शनमात्रेणैव विदग्धा भावमाविष्कुर्वन्ति लक्षयन्ति चेति दर्शयन्नागरिकः सहचर-शिक्षार्थमाह—

तह सो[1]ण्हाइ पुलइओ दे[2]रवलिअन्तद्धतारअं पहिओ ।
जह वारिओ वि घरसामिएण [3]ओलिन्दए वसिओ ॥ ५४ ॥

[तथा स्नुषया प्रलोकितो द[4]रवलितार्धतारकं पथिकः ।
यथा वारितोऽपि गृ[5]हस्वामिना [6]अलिन्दके सुप्तः ॥]

अलिन्दो बहिर्द्वारप्रकोष्ठः ॥

कार्यमप्रसाध्य श्लाघनपरस्य, प्रसाध्य वात्मगुणोत्कीर्तनपरस्य निषेधाय कश्चित्स्वरूपाख्यानेन विज्ञत्वं प्रकटयन्नाह—

लहुअन्ति लहुं पुरिसं पव्वअमेत्तं पि दो वि कज्जाइं ।
णिव्वरणमणिव्वूढे णिव्वूढे जं अ णिव्वरणम् ॥ ५५ ॥

[ल[7]घयतो लघु पुरुषं पर्वतमात्रमपि द्वे [8]अपि कार्ये ।
निर्वरणमनिर्व्यूढे निर्व्यूढे य[9]च्च निर्वरणम् ॥]

पर्वतमात्रमप्यत्यन्तगुरुमपि पुरुषं द्वे कार्ये लघु शीघ्रं लघयतो लघूकुरुतः । अनिर्व्यूढे अकृते कार्ये निर्वरणं निवेदनम् । अकृतकार्यस्य निवेदनवैयर्थ्यात् । कृते च कार्ये स्वयमेव प्रसिद्धिरित्यर्थः ॥

द्वारस्थितिकलितशीलखण्डनां कुलजां कुट्टनी विश्वासयितुमाह—

कं तुङ्गथणुक्खित्तेण पुत्ति दारट्ठिआ पलोएसि ।
उण्णामिअकलसणिवेसिअग्घकमलेण व मुहेण ॥ ५६ ॥

[कं तुङ्गस्तनोत्क्षिप्तेन पुत्रि द्वारस्थिता प्रलोकयसि ।
उन्नामितकलशनिवेशितार्घकमलेनेव मुखेन ॥]

---

१. 'सुण्हाइ' इति ग-पाठः. २. 'दरवलिअवङ्कतारअं' इति ग-पाठः. ३. 'उलिन्दए' इति ग-पाठः. ४. 'मनाग्वलिततिर्यक्तारकं' इति ग-पुस्तके, 'दरवलितान्तर्द्वारकं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'गृहस्वामिकेन' इति घ-पाठः. ६. 'अलिन्दके उषितः' इति ग-पुस्तके, 'अलिन्दे वसितः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'लघयन्ति' इति क-ख-पाठः. ८. 'अपि' इति क-ख-ग-पुस्तकेषु नास्ति. ९. 'यदनिर्वरणम्' इति घ-पाठः.

दूरादवलोकनार्थं पूर्वकायस्योन्नामितत्वात्तुङ्गस्तनोत्क्षिप्तेन उन्नामितयोः कलशयोर्निवेशितेनार्घकमलेनेव मुखेन हे पुत्रि, द्वारि स्थिता त्वं कं प्रलोकयसि कथय । तमहमचिरादेव साधयामीति भावः ॥

गुप्त्यर्थं निवेशितोऽपि खलः प्रत्युत रहस्यमेव प्रकाशयतीति प्रदर्शयन्नागरिकः सहचरमाह—

वइविवरणिग्गअदलो एरण्डो साहइ व्व तरुणाणम् ।
एत्थ घरे हलिअवहू एद्दहमेत्तत्थणी वसइ ॥ ५७ ॥

[वृतिविवरनिर्गतदल एरण्डः साधयतीव[१] तरुणेभ्यः ।
अत्र गृहे हलिकवधूरेतावन्मात्रस्तनी वसति ॥]

वृतिघनीकरणार्थं तदुपान्ते रोपितत्वाद्वृतिविवरेण निर्गतं दलं यस्य सः । साधयति कथयति । एरण्डव्यपदेशेन हलिकवध्वाः स्तनौ वर्णयन्त्या दूत्याः कामुकं प्रतीयमुक्तिरिति कश्चित् ॥

सत्वरं तामानयेति भुजंगेनोक्ता कुट्टनी दुहितुर्गजगामित्वगुणेन भुजंगं साभिलाषं कुर्वाणा निन्दाव्याजेन स्तनयोः स्तुतिमाह—

गअकलहकुम्भसंणिहघणपीणणिरन्तरेहिँ तुङ्गेहिं ।
उस्ससिउं पि ण तीरइ किं उण गन्तुं हअथणेहिं ॥ ५८ ॥

[गजकलभकुम्भसंनिभघनपीननिरन्तराभ्यां तुङ्गाभ्याम् ।
उच्छ्वसितुमपि न तीरयति[२] किं पुनर्गन्तुं हतस्तनाभ्याम् ॥]

गज इव प्रौढः कलभो गजकलभस्तदीयकुम्भसंनिभौ घनौ निबिडौ पीनौ स्थूलौ अत एव निरन्तरौ यौ तुङ्गौ स्तनौ ताभ्यामित्यर्थः । तीरयति शक्नोति । क्वचिद्गुणोऽपि दोषतां यातीति निदर्शयन्नागरिकोऽभिसारिकायाः सत्वराभिसारगमनविरोधिस्तनभारं प्रत्युद्वेगेनेदमाहेति केचित् ॥

रम्याणां तत्तद्विशेषप्राप्त्या रम्यतातिशयो भवतीति प्रतिपादयन्ती कुट्टनी भुजंगं नर्तकीं स्वं दुहितरं प्रति साभिलाषं कर्तुमाह—

मासपसूअं छम्मासगब्भिणिं एक्कदिअहजरिअं च ।
रङ्गुत्तिण्णं च पिअं पुत्तअ कामन्तओ होहि ॥ ५९ ॥

---

१. 'शंसतीव' इति घ-पाठः. २. 'तीर्यते' इति ग-पुस्तके, 'शक्नोति' इति च घ-पुस्तके पाठः.

[मासप्रसूतां षण्मासगर्भिणीमेकदिवसज्वरितां च।

रङ्गोत्तीर्णां च प्रियां पुत्रक कामयमानो भव ॥]

मासप्रसूतादीनामतिशयितसुरतसुखोत्पादकतायाः कामशास्त्रसिद्धत्वात्। नर्तकीं स्वदुहितरं प्रति लोभयन्त्याः कुट्टन्या भुजंगं प्रतीयमुक्तिरित्यप्याहुः ॥

कांचिदुत्तुङ्गपीनस्तनीं नायिकां कश्चिद्युवा स्वाभिलाषं प्रकाशयन्नाह—

पडिवक्खमण्णुपुंञ्जे[1] लावण्णउंडे[2] अणङ्गगअकुम्भे।

पुरिससअहिअअधरिए कीस थणन्ती थणे वहसि ॥ ६० ॥

[प्रतिपक्षमन्युपुञ्जौ लावण्यकुटावनङ्गगजकुम्भौ।

पुरुषशतहृदयधृतौ किमिति स्तनन्तौ स्तनौ वहसि ॥]

प्रतिपक्षस्य सपत्नीजनस्य मन्युपुञ्जौ चित्तक्षोभजननात्। लावण्यस्य कुटौ (घटौ) सौन्दर्यातिशयात्। अनङ्गलक्षणस्य गजस्य कुम्भौ। पुरुषशतेन हृदये मनसि धृतावभिलषितौ। एतादृशौ स्तनौ स्तनन्ती कुन्थन्ती किमिति वहसि। अस्मद्विधं जनं कथं न कृतार्थयसीति भावः ॥

विरोधिनोऽपि कदाचिदनुकूला भवन्तीति निदर्शयन्कश्चिदाह—

घरिणिघणत्थणपेल्लणसुहेल्लिपडिअस्स होन्तपहिअस्स।

अवसउणङ्गारअवारविट्ठिदिअहा सुहावेन्ति ॥ ६१ ॥

[गृहिणी[3]घनस्तनप्रेरणसुखकेलिपतितस्य भविष्यत्पथिकस्य।

अपशकुनाङ्गारकवारविष्टि[4]दिवसाः सुखयन्ति ॥]

कमपि युवानं प्रति दूती कस्याश्चिदनुरागातिशयमाह—

सा तुह कएण बालअ अणिसं घरदारतोरणणिसण्णा।

ओससई वन्दणमालिअ व्व दिअहं विअ वराई ॥ ६२ ॥

[सा तव कृतेन बालकानिशं गृहद्वारतोरणनिषण्णा।

अवशुष्याति वन्दनमालिकेव दिवसमेव वराकी ॥]

सहजगुणहीनानामाहार्यगुणाधानं न चिरकालस्थायीति काचिदन्यापदेशेनाह—

हसिअं सहत्थतालं सुक्खवडं उवगएहिँ[5] पहिएहिं।

पत्तअफलाणँ सरिसे उड्डीणे सूअविन्दम्मि[6] ॥ ६३ ॥

१. 'उञ्जे' इति ग-पाठः. २. 'उले' इति ग-पाठः. ३. 'गृहिण्या' इति क-ख-ग-पाठः. ४. विष्टिर्भद्रेत्यर्थः. ५. 'उअगएहिं' इति ग-पाठः. ६. 'पूसवग्गम्मि' इति ग-पाठः. 'पूसशब्दः शुके वर्तते' इति कुलबालदेवः.

[हसितं सहस्ततालं शुष्कवटमुपगतैः पथिकैः।
पत्रफलानां सदृशे उड्डीने शुकवृन्दे ॥]

पत्रफलाढ्योऽयं वृक्ष इति बुद्ध्या विश्रामार्थं शुष्कवटमुपगतैः पथिकैः पत्रफलसदृशे शुकसमूहे उड्डीने सति सहस्ततालं यथा स्यात्तथा हसितमित्यर्थः। संकेतस्थाने जनावस्थितिसूचनेनाभिसारिकां निवारयन्त्या दूत्या इयमुक्तिरिति केचित् ॥

पत्या सह कृतकलहायाः सख्या रात्रिवृत्तान्तमनुसंधायागता सखी मातुलान्या पृष्टा तत्सौभाग्यमाह—

अज्ज म्हि हासिआ मामि तेण पाएसु तह पडन्तेण।
तीए वि जलन्ति दीववत्तिमब्भुण्णअन्तीए ॥ ६४ ॥

[अद्यास्मि हासिता मातुलानि तेन पादयोस्तथा पतता।
तयापि ज्वलन्तीं दीपवर्तिमभ्युत्तेजयन्त्या ॥]

अन्येऽपि मम सौभाग्यं पश्यन्त्विति बुद्ध्या दीपोत्तेजनं कुर्वत्याः। दिवा तथा परुषवादिनस्तस्य रात्रौ तादृग्दैन्यं दृष्ट्वा तस्याश्च यौवनाद्यभिमानजं पतिं प्रत्यनादरं दृष्ट्वा मम हासो जात इत्यर्थः ॥

पूर्वसुभगामनुवर्तमानं पतिं दृष्ट्वा स्वसौभाग्यमबहुमन्यमानां नवसुभगां सान्त्वयितुं सखी सुजनस्वभावमाह—

अणुवत्तणं कुणन्तो वेसे वि जणे अहिण्णमुहराओ।
अप्पवसो वि हु सुअणो परव्वसो आहिआईए ॥ ६५ ॥

[अनुवर्तनं कुर्वन्द्वेष्येऽपि जनेऽभिन्नमुखरागः।
आत्मवशोऽपि खलु सुजनः परवशः कुलीनतायाः ॥]

त्वदेकरतोऽपि कुलीनतया तामनुरुन्द्धे, न तु स्नेहेनेति भावः ॥

मानिन्याः पूर्वसुभगायास्तिरस्कारेणान्यवनितासक्तं दुर्विदग्धं शिक्षयन्ती जरद्वधूराह—

अणुदिअहवड्ढिआअरविण्णाणगुणेहिँ जणिअमाहप्पो।
पुत्तअ अहिआअजणो विरज्जमाणो वि दुल्लक्खो ॥ ६६ ॥

१. 'उपगतेन पथिकेन' इति ग-पाठः. २. 'फलपत्रसदृशे' इति ग-पाठः. ३. 'मामि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'अभ्युन्नयन्त्या' इति घ-पाठः. ५. 'देशे' इति ग-पाठः. ६. 'अत्तवसो वि हि' इति ग-पाठः. ७. 'आत्मवशोऽपि हि' ग-पाठः. ८. 'आभिजात्याः' इति ग-पुस्तके, 'आभिजात्यस्य' इति च घ-पुस्तके पाठः.

[अनुदिवसवर्धितादरविज्ञानगुणैर्जनितमाहात्म्यः।
पुत्रकाभिजातजनो विरज्यमानोऽपि दुर्लक्ष्यः॥]

अनुदिवसं वर्धित आदरो यैरेवंभूतैर्विज्ञानप्रमुखैर्गुणैर्जनितं माहात्म्यं महत्त्वं यस्य एतादृशः कुलीनजनो विरज्यमानोऽपि दुर्लक्ष्यः। सत्यपि कोपे कुलीनत्वादादरातिशयं विदधानामिमां प्रणिपातेन प्रसादयेति भावः॥

विदग्धं प्रति साभिलाषा कापि स्वभर्तरि वैराग्यं सूचयन्त्याह—

विण्णाणगुणमहग्घे पुरिसे वेसत्तणं पि रमणिज्जम्।
जणणिन्दिए उण जणे पिअत्तणेणावि लज्जामो॥ ६७॥

[विज्ञानगुणमहार्घे पुरुषे द्वेष्यत्वमपि रमणीयम्।
जननिन्दिते पुनर्जने प्रियत्वेनापि लज्जामहे॥]

कोऽपि पीनोत्तुङ्गकुचायां कस्यांचिदनुरक्तोऽचिरेणैव कालेन तस्याः स्तनपतनं दृष्ट्वा वयस्यमाह—

कहँ णाम तीअ तह सो सहावगुरुओ वि थणहरो पडिओ।
अहवा महिलाणँ चिरं को वि ण हिअअम्मि संठाइ॥ ६८॥

[कथं नाम तस्यास्तथा स स्वभावगुरुकोऽपि स्तनभरः पतितः।
अथवा महिलानां चिरं कोऽपि न हृदये संतिष्ठते॥]

स्त्रीणामस्थिरप्रेमभावप्रकाशनं वा॥

नायकप्रलोभनाय सखी नायिकामुखं वर्णयति—

सुअणु वअणं छिवन्तं सूरं मा साउलीअ वारेहि।
एअस्स पङ्कअस्स अ जाणउ कअरं सुहप्फंसम्॥ ६९॥

[सुतनु वदनं स्पृशन्तं सूर्यं मा वस्त्राञ्चलेन वारय।
एतस्य पङ्कजस्य च जानातु कतरत्सुखस्पर्शम्॥]

साउलीति वस्त्राञ्चलवाचको देशी॥

---

१. 'वर्धितादरं' इति ग-पाठः. २. 'लज्जामः' इति ग-पाठः. ३. 'गरुओ' इति ग-पाठः. ४. 'स्तनभारः' इति ग-पाठः. ५. 'हृदये कः संतिष्ठते' इति ग-पुस्तके, 'हृदये न संस्थायी' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'साकुलीअ' इति ग-पाठः. ७. 'साकुल्या' इति ग-पुस्तके, 'पल्लवच्छत्रिकया' इति च घ-पुस्तके पाठः. 'साकुलीशब्दो पल्लविकाविषये वर्तते' इति कुलबालदेवः.

सीधुपानेन मत्ताया मानभङ्गमाकलय्य मानिनीमानशमनोपायशिक्षार्थे नागरिकः सहचरमाह—

माणोसहं व पिज्जइ पिआइ[1] माणंसिणीअ दइअस्स ।
करसंपुडवलिउद्धोणणाइ[2] मइराइ गण्डूसो ॥ ७० ॥
[मानौषधमिव पीयते प्रियया मनस्विन्या[3] दयितस्य ।
करसंपुटवलितोर्ध्वाननया[4] मदिराया[5] गण्डूषः ॥]

सुरापूर्णेन मुखेन मुखे दत्ता सुरा पीता सती मानमपनयतीति भावः ॥

नायकप्रलोभनाय दूती नायिकायाः सौन्दर्यातिशयमाह—

कहँ सा णिव्वण्णिज्जइ[6] जीअ जहा लोइअम्मि अङ्गम्मि ।
दिट्ठी दुव्वलगाई व्व पङ्कपडिआ ण उत्तरइ ॥ ७१ ॥
[कथं सा निर्वर्ण्यतां यस्या यथालोकिते[7]ऽङ्गे ।
दृष्टिर्दुर्बला[8] गौरिव पङ्कपतिता नोत्तराति ॥]

यत्र पतिता तत्रैवावतिष्ठत इत्यर्थः ॥

कस्यचिदर्थे वदन्तीं दूतीं कापि तस्यास्थिरस्नेहतां वर्णयन्त्याह—

कीरन्ती व्विअ णासइ उअए रेह व्व खलअणे मेत्ती ।
सा उण सुअणम्मि कआ अणहा पाहाणरेह व्व ॥ ७२ ॥
[क्रियमाणैव नश्यत्युदके रेखेव खलजने मैत्री ।
सा पुनः सुजने कृता अनघा पाषाणरेखेव ॥]

अनघा निरपाया ॥

चिरप्रवासादागत्य पुनरचिराद्गन्तुमिच्छन्तं नायकं कापि सदैन्यमाह—

अव्वो दुक्करआरअ पुणो वि तन्तिं करेसि गमणस्स ।
अज्ज वि ण होन्ति सरला वेणीअ तरङ्गिणो चिउरा ॥ ७३ ॥
[अव्वो[9] दुष्करकारक पुनरपि चिन्तां करोषि गमनस्य ।
अद्यापि न भवन्ति सरला वेण्यास्तरङ्गिणश्चिकुराः[10] ॥]

---

१. 'पिआए' इति ग-पाठः. २. 'उत्ताणणाइ मइराए' इति ग-पाठः. ३. 'मानिन्या' इति ग-पाठः. ४. 'वलनोत्तानया' इति ग-पाठः. ५. 'वदनमदिराया' इति घ-पाठः. ६. 'णिव्वणिल्लजीउ' इति ग-पाठः. ७. 'यथावलोकिते' इति ग-पाठः. ८. 'दुर्बलगौरिव' इति ग-पाठः. ९. 'कष्टं दुष्कर—' इति ग-पाठः. 'अव्वो दुःखहर्षयोर्वर्तते' इति कुलबालदेवः. १०. 'केशाः' इति ग-पाठः.

अव्वो इति साश्चर्यचमत्कारे । दुष्करेति स्त्रीवधपातककारित्वादिति भावः । वेणीबन्धेन तरङ्गिणः कौटिल्यभाजश्चिकुरा अद्यापि सरला न भवन्तीति संबन्धः ॥

अव्युत्पन्नत्वादनुत्सहमानस्य दुर्विदग्धधनिकस्य प्रवृत्तिपाटवार्थं धूर्ता काचित्सद्भावस्नेहप्रशंसामाह—

ण वि तह छेअरआइं[1] वि हरन्ति पुणरुत्तराअरसिआइं ।
जह जत्थ व तत्थ व जह व तह व सब्भावणेह[2]रमिआइं ॥ ७४ ॥

[नापि[3] तथा छेकरतान्यपि हरन्ति पुनरुक्तरागर[4]सिकानि ।
यथा यत्र वा तत्र वा यथा वा तथा वा सद्भावस्नेह[5]रमितानि ॥]

छेकानामपूर्वापूर्वरतशिल्पकुशलानां रतान्यपि तथा न हरन्ति । पुनरुक्ते पुनः पुनः परिशीलिते रागे रञ्जने रतव्यापारे रसिकानि ॥

किमिति कृशासीति प्रियेण पृष्ठा पूर्वसुभगा तमाह—

उ[6]ज्झसि पिआइ समअं तह वि हुँ[7] रे भणसि कीस किसिअं त्ति ।
उवरिभरेण अ अण्णुअ मुअइ बइल्लो वि अङ्गाइं ॥ ७५ ॥

[उ[8]ह्यसे प्रियया समं तथापि खलु[9] रे भणसि किमिति कृशे[10]ति ।
उपरि(भरेण[11]) च हे[12] अज्ञ मुञ्चति बलीवर्दोऽप्यङ्गानि ॥]

प्रवासादागतेन प्रियेणाद्य कथं त्वरया रमितामिति वदन्ती सखीं नायिका सानुरागमाह—

दिढमूल[13]बन्धगण्ठि व्व मोइआ कहँ वि तेण मे बाहू ।
अम्हेहिँ वि तस्स उरे खुत्त व्व समुक्खआ थणआ ॥ ७६ ॥

[दृढ[14]मूलबन्धग्र[15]न्थी इव मोचितौ कथमपि तेन मे बाहू ।
अस्माभिरपि तस्योरसि निखाताविव समुत्खातौ स्तनौ ॥]

---

१. 'छेअसुरआइं' इति ग-पाठः. २. 'णेह' इति ग-पुस्तके नास्ति. ३. 'नैव तथा छेकसुरतान्यपि' इति ग-पाठः. 'छेकशब्दः खिङ्गवचनः' इति कुलबालदेवः. ४. 'रसितानि' इति घ-पाठः. ५. 'सद्भावरमितानि' इति-ग-पाठः. ६. 'वुज्झसि' इति ग-पाठः. ७. 'हु' इति ग-पुस्तके नास्ति. ८. 'बुध्यसे प्रियायाः समयं' इति ग-पाठः. ९. 'खलु' इति ग-पुस्तके नास्ति. १०. 'कृशतेति' इति घ-पाठः. ११. 'भरेण च अजअ (?) मुञ्चति वृषभो' इति ग-पाठः. १२. 'हे' इति घ-पुस्तके नास्ति. १३. 'गूढबद्ध' इति ख-पाठः. १४. 'दृढगूढबद्धग्रन्थी' इति घ-पाठः. १५. 'ग्रन्थिरिव' इति ग-पाठः.

अनुरागनिर्भरालिङ्गनवशादन्योन्यलग्नौ मे बाहू तेन कथमपि मोचितौ । अस्माभिरपि स्तनौ निखाताविव कथमपि समुत्खातौ ॥

कलहान्तरितामनुनीयागता सखी तत्कान्तमाह—

अणुणअपसाइआए तुज्झ वराहे चिरं गणन्तीए ।
अपहुत्तोहअहत्थङ्गुरीअ [1]तीए चिरं रुण्णम् ॥ ७७ ॥
[अनुनयप्रसादितया तवापराधांश्चिरं गणयन्त्या ।
[2]अप्रभूतोभयहस्ताङ्गुल्या [3]तया चिरं रुदितम् ॥]

अपराधानां बहुत्वादप्रभूता उभयहस्ताङ्गुल्यो यस्यास्तया । कथंकथमपि मया प्रसादिता इतः परं मैवं कार्षीरिति भावः ॥

नर्तनश्रमप्रस्विन्नाङ्गया दुहितुः सौन्दर्यातिशयं कामुकचित्तप्रलोभनाय कुट्टनी वर्णयति—

सेअच्छलेण पेच्छह तणुए अङ्गम्मि से अमाअन्तम् ।
लावण्णं ओसरइ व्व तिवलिसोवाणवत्तीए ॥ ७८ ॥
[स्वेदच्छलेन [4]पश्यत तनुकेऽङ्गे तस्या [5]अमात् ।
लावण्यमपसरतीव त्रिवलीसोपान[6]पङ्क्तिभिः ॥]

तनुके तस्या अङ्गे संमातुमसमर्थं लावण्यं स्वेदच्छलेनापसरतीवेति योजना । चौर्यरतगोपनार्थं सख्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

भुजंगमभिमुखीकर्तुं कुट्टनी कस्याश्चिदलब्धलाभसत्कारतारूपं दोषं परिहरन्ती सौन्दर्यातिशयमन्यापदेशेन वर्णयाति—

देव्वाअत्तम्मि फले किं [7]कीरइ एत्तिअं पुणो भणिमो ।
कङ्केल्लिपल्लवाणं ण पल्लवा होन्ति सारिच्छा ॥ ७९ ॥
[दैवायत्ते फले किं [8]क्रियताम् [9]इयत्पुनर्भणामः ।
[10]कङ्केल्लिपल्लवानां न पल्लवा भवन्ति सदृशाः ॥]

कङ्केल्लिरशोकः । अन्ये पल्लवा अशोकपल्लवानां सदृशा न भवन्तीत्यर्थः । दैवाधीनौ लाभसत्कारौ मा भवतां नाम । तत्सदृशी सुन्दरी पुनरन्या नास्तीत्याशयः ॥

---

१. 'रुण्णं वराईए' इति ग-पाठः. २. 'अप्रभवदुभय' इति घ-पाठः. ३. 'रुदितं वराक्या' इति ग-घ-पाठः. ४. 'प्रेक्षते' इति ग-घ-पाठः. ५. 'अमायमानं' इति ग-पुस्तके, 'अमायत्' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'पङ्क्त्या' इति ग-घ-पाठः. ७. 'कीरउ एत्तिअं उण भणामो' इति ग-पाठः. ८. 'करोतु' इति ग-पाठः. ९. 'एतावत्' इति ग-घ-पाठः. १०. 'अशोकपल्लवानां नवपल्लवा' इति घ-पाठः.

स्वसौभाग्यख्यापनाय विरहविधुरां कलहान्तरितां रुदतीं कान्तां दर्शयंस्तदनुनयार्थमागतः कान्तः सहचरमाह—

धुअइ व्व मअकलङ्कं कवोलपडिअस्स माणिणी उअह ।
अणवरअवाहजलभरिअणअणकलसेहिँ चन्दस्स ॥ ८० ॥

[धावतीव मृगकलङ्कं कपोलपतितस्य मानिनी पश्यत ।
अनवरतबाष्पजलभृतनयनकलशाभ्यां चन्द्रस्य ॥]

कपोलप्रतिबिम्बितस्य चन्द्रस्य कलङ्कं मानिनी धावतीव प्रक्षालयतीवेति योजना । एतेन प्रियायाः सौन्दर्यमात्मनः सौभाग्यं च वर्णितम् ॥

बहुपत्नीकस्य भर्तुर्नेयमतीव वल्लभा भविष्यति, अतः पुनरागमिष्यत्येवात्र तत्किमेवं विक्लवोऽसीति वयस्येनाश्वास्यमानो ज्ञातिगृहात्पतिगृहं प्रस्थिताया जारस्तमन्यापदेशेनाह—

गन्धेण अप्पणो मालिआणँ णोमालिआ ण फुंट्टिहइ ।
अण्णो को वि हआसाइ मंसलो परिमलुग्गारो ॥ ८१ ॥

[गन्धेनात्मनो मालिकानां नवमालिका नँ च्युता भविष्याति ।
अन्यः कोऽपि हँताशाया मांसलः परिमलोद्गारः ॥]

नानापुष्पग्रथितमालिकानां मध्ये नवमालिकाख्यः पुष्पविशेष आत्मनो गन्धेन न च्युता भविष्यति । यतो हता आशा अन्यासां यया तस्याः । अन्य इतरविलक्षणः कोऽपि मांसलो बहलः परिमलोद्गारः ॥

नष्टधनं भुजंगमुत्साहयितुं कुट्टनी सत्पुरुषप्रशंसामाह—

फलसंपत्तीअ समोणआइँ तुङ्गाइँ फलविपत्तीए ।
हिअआइं सुँपुरिसाणं महातरूणं व सिहराइं ॥ ८२ ॥

[फलसंपत्त्या समवनतानि तुङ्गानि फलविपत्त्या ।
हृदयानि सुपुरुषाणां महातरूणामिव शिखराणि ॥]

समवनतानि नम्राणि । तुङ्गानि उन्नतानि ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तस्यागमनत्वरार्थं तत्समीपगामिनं पथिकमाह—

आसासेइ परिअणं परिवत्तन्तीअ पहिअजाआए ।
णित्थाणुवत्तणे वलिअहत्थमुहलो वलअसद्दो ॥ ८३ ॥

---

१. 'वुक्किहइ' इति ग-पाठः. २. 'मालतीनां' इति ग-पाठः. ३. 'न न्यूना' इति घ-पाठः. ४. 'हताशायां' इति ग-पाठः. ५. 'सुउरिसाणं' इति ग-पाठः. ६. 'शिखराणीव' इति ग-पाठः.

[आश्वासयति परिजनं परिवर्तमानायाः पथिकजायायाः ।
निः[1]स्थामवर्तने वलितहस्तमुखरो वलयशब्दः ॥]

परिवर्तमानायाः शयने पार्श्वपरिवृत्तिं कुर्वत्याः पथिकजायाया निःस्थाम निःसहं यद्व-र्तनं तेन वलिते हस्ते मुखरोऽनुबद्धझणत्कारो वलयशब्दः परिजनमाश्वासयति जीवय-तीति । ज्ञापयतीत्यर्थः ॥

क्षीणविभवस्यापि नायकस्य महेच्छतां सूचयन्ती दूती नायिकामनुरञ्जयितुमाह—

तुङ्गो च्चिअ होइ मणो मणंसिणो अन्तिमासु वि दसासु ।
अत्थमणम्मि वि रइणो किरणा उद्धं च्चिअ फुरन्ति ॥ ८४ ॥

[तु[2]ङ्गमेव भवति मनो मनस्विनोऽन्तिमास्वपि दशासु ।
अस्तमनेऽपि रवेः किरणा ऊर्ध्वमेव स्फुरन्ति ॥]

एतेन निर्धनोऽप्यसौ वदान्यः न चाधमां कामयत इति सूचितम् ॥

महेच्छनायिकानुरञ्जनार्थे नायकस्य वदान्यतां परोपकारितां च प्रस्तावयितुं दूती कृपणनिन्दां सत्पुरुषस्य च प्रशंसामाह—

पोट्टं भरन्ति सउणा वि माउआ अप्पणो अणुव्विग्गा ।
वि[3]हलुद्धरणसहावा हुवन्ति जइ के वि सप्पुरिसा ॥ ८५ ॥

[उदरं बिभ्रति शकुना अपि हे[4] मातर आत्मनोऽनुद्विग्नाः ।
वि[5]ह्वलोद्धरणस्वभावा भवन्ति यदि केऽपि सत्पुरुषाः ॥]

पक्षिणोऽपि परमांसभक्षणादिना स्वोदरपूरणं कुर्वन्ति । दीनदुःखापहारधुरंधरास्तु तादृशा विरला इति भावः ॥

कृत्रिमेणापि भावेन भामिन्यः पुरुषाननुरञ्जयन्तीति कयाचिदुक्ता विदग्धवधू-स्तामाह—

ण विणा सब्भावेण घेप्पइ परमत्थजाणुओ लोओ ।
को जुण्णमज्जरं कञ्जिएण वेआरिउं तरइ ॥ ८६ ॥

[न विना सद्भावेन गृह्यते परमार्थज्ञो लोकः ।
को जीर्णमार्जारं का[6]ञ्जिकया प्रतारयितुं शक्नोति ॥]

---

१. 'निःस्थानोद्वर्तने' इति ग-पुस्तके, 'निःसहवर्तनवलित' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'उच्चमेव' इति ग-पाठः. ३. 'विअलुद्धरणसमत्था' इति ग-पाठः. ४. 'हे मातः' इति ग-पाठः. ५. 'विकलोद्धरण' इति ग-पाठः. ६. 'काञ्जिकेन' इति ग-घ-पाठः.

अलंकाराद्यदानादपरितुष्टां नायिकामनुकूलयितुं दूती अकारणस्नेहबहुमानमन्यापदेशेनाह—

रण्णाउ तणं रण्णाउ पाणिअं सव्वअं सअंगाहम् ।
तह वि मआणँ मईणँ अ आमरणन्ताइँ पेम्माइं ॥ ८७ ॥
[अरण्यात्तृणमरण्यात्पानीयं सर्वतः स्वयंग्राहम् ।
तथापि मृगाणां मृगीणां चा मरणान्तानि प्रेमाणि ॥]

निरुपाधिकं प्रेम श्लाघ्यमिति भावः ॥

संतापातिशयखण्डनाय चन्दनलेपाद्युपचारं कुर्वाणां वारयन्ती विरहिणी कांचिदाह—

तावमवणेइ ण तहा चन्दणपङ्को वि कामिमिहुणाणम् ।
जह दूसहे वि गिम्हे अण्णोण्णालिङ्गणसुहेल्ली ॥ ८८ ॥
[तापमपनयति न तथा चन्दनपङ्कोऽपि कामिमिथुनानाम् ।
यथा दुःसहेऽपि ग्रीष्मे अन्योन्यालिङ्गनसुखकेलिः ॥]

यदुपचारेण यस्योपशमनं भवति तत्रान्य उपचारो विफल इति भावः ॥

सपत्न्या दुश्चारित्र्यख्यापनार्थं मुग्धवधूवृत्तविरुद्धां प्रथमरजोयोगसूचनव्युत्पत्तिं तस्याः सूचयन्ती कापि सेर्ष्यमाह—

तुप्पाणणा किंणो चिट्ठसि त्ति पडिपुच्छिआएँ वहुआए ।
विउणावेट्ठिअजहणत्थलाइ लज्जोणअं हसिअम् ॥ ८९ ॥
[घृतलिप्तानना किमिति तिष्ठसीति परिपृष्टया वध्वा ।
द्विगुणावेष्टितजघनस्थलया लज्जावनतं हसितम् ॥]

जघनस्थलप्रच्छादनेनैवार्तवमाविष्कुर्वत्या लज्जयावनतं यथा स्यात्तथा हसितमित्यर्थः ॥

कुलस्त्रीवृत्तशिक्षार्थं बन्धुवधूः कुलवधूमाह—

हिअअ च्चेअ विलीणो ण साहिओ जाणिऊण घरसारम् ।
बान्धवदुव्वअणं विअ दोहलओ दुग्गअवहूए ॥ ९० ॥
[हृदय एव विलीनो न कथितो ज्ञात्वा गृहसारम् ।
बान्धवदुर्वचनमिव दोहदो दुर्गतवध्वा ॥]

---

१. 'स्वयं ग्राह्यम्' इति घ-पाठः. २. 'किणो अच्छिसि त्ति' इति ख-ग-पाठः. ३. 'घृत' इति ग-पुस्तके नास्ति; 'घृतानना' इति घ-पाठः. ४. 'किमित्यसीति' इति घ-पाठः. ५. 'साधितो' इति ग-घ-पाठः. ६. 'दुर्विनयमिव' इति ग-पाठः. ७. 'दोहदको' इति घ-पाठः.

कुलस्त्रीचरितविरुद्धं सपत्न्या धार्ष्ट्यं ख्यापयन्ती कापि बन्धुवधूजनमाह—

धावइ विअलिअधम्मिल्लसिचअसंजमणवावडकरग्गा ।
चन्दिलभअविवलाअन्तडिम्भपरिमग्गिणी घरिणी ॥ ९१ ॥
[धावति विगलितधम्मिल्लसिचयसंयमनव्यापृतकराग्रा ।
चन्दिलभयविपलायमानडिम्भपरिमार्गिणी गृहिणी ॥]

विगलितयोः शिथिलयोर्धम्मिल्लसिचययोः संयमने व्यापृते कराग्रे यस्याः सा । चन्दिलो नापितस्तस्य भयेन विपलायमानस्य डिम्भस्य परिमार्गणशीला गृहिणी धावति । 'चन्दिलः पुंसि वास्तूकशाके गर्भे च नापिते' इति मेदिनीकोषः । एवं च चन्दिलशब्दो नापितवचनो देशीति कस्यचिदुक्तिः कोषानालोचनमूलत्वादुपेक्ष्या । व्याजेन स्तनबाहुमूलादिदर्शयितुं धावतीति योजना वा ॥

भुजंगप्रलोभनार्थं दूती नायिकाया वयःसंधिं सौभाग्यं चाह—

जह जह उव्वहइ वहू णवजोव्वणमणहराइँ अङ्गाइं ।
तह तह से तणुआअइ मज्झो दइओ अ पडिवक्खो ॥ ९२ ॥
[यथा यथोद्वहते वधूर्नवयौवनमनोहराण्यङ्गानि ।
तथा तथा तस्यास्तनूयते मध्यो दयितश्च प्रतिपक्षः ॥]

चकारो भिन्नक्रमः प्रतिपक्षश्चेति योज्यः । स्वभावान्मध्यः । अत्यासत्तया दयितः । ईर्ष्यासंतापेन प्रतिपक्षः ॥

वृद्धपतिद्वेषिणीं कुलवधूं शिक्षयन्ती कापि पतिव्रतावृत्तमाह—

जह जह जरापरिणओ होइ पई दुग्गओ विरूओ विँ ।
कुलवालिआणँ तह तह अहिअअरं वल्लहो होइ ॥ ९३ ॥
[यथा यथा जरापरिणतो भवति पतिर्दुर्गतो विरूपोऽपि ।
कुलपालिकानां तथा तथाधिकतरं वल्लभो भवति ॥]

कमपि युवानं प्रति साभिलाषा कामिनी समानवयःशीलां मातुलानीमाह—

एसो मामि जुवाणो वारंवारेण जं अडअणाओ ।
गिम्हे गामेक्कवडोअअं व किच्छेण पावन्ति ॥ ९४ ॥

---

१. 'मग्गोसिणी' इति ग-पाठः. २. 'विगलितकेशवस्त्र' इति ग-पाठः. ३. 'नापितभयपलायमान' इति ग-पुस्तके, 'नापितभयविफलायमान' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'बालकमार्गैषिणी' इति ग-पाठः. ५. 'उद्वहति' इति ग-घ-पाठः. ६. 'परिहीयते' इति ग-पुस्तके, 'तनुकायते' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'अ' इति ग-पाठः.

[एष मातुलानि युवा वारंवारेण यमसत्यः।
ग्रीष्मे ग्रामैकवटोदकमिव कृच्छ्रेण प्राप्नुवन्ति ॥]

अडअणाओ असत्यः। वारंवारेण वारक्रमेण। पर्यायेणेति यावत्। यं युवानमसत्यः कृच्छ्रेण प्राप्नुवन्ति स मयानायासेन प्राप्यत इति स्वसौभाग्यप्रकटनम् ॥

परवनितासुरतलम्पटस्य निजनायकस्य संकेतस्थानभङ्गेन परितुष्टा कापि पतिव्रता पितृष्वसारमाह—

गामवडस्स पिउच्छा आवण्डुमुहीणँ पण्डुरच्छाअम्।
हिअएण समं असईणँ पडइ वाआहअं पत्तम् ॥ ९५ ॥

[ग्रामवटस्य पितृष्वस आपाण्डुमुखीनां पाण्डुरच्छायम्।
हृदयेन सममसतीनां पतति वाताहतं पत्रम् ॥]

ग्रामवटस्य पत्रमसतीनां हृदयेन समं पततीति संबन्धः ॥

इङ्गितज्ञतामात्मनः ख्यापयन्नागरिकः सहचरमाह—

पेच्छइ अलद्धलक्खं दीहं णीससइ सुण्णअं हसइ।
जह जम्पइ अफुडत्थं तह से हिअअट्ठिअं किं पि ॥ ९६ ॥

[पश्यत्यलब्धलक्ष्यं दीर्घं निःश्वसिति शून्यं हसति।
यथा जल्पत्यस्फुटार्थं तथा तस्या हृदयस्थितं किमपि ॥]

नागरिकः सहचरशिक्षार्थमसतीनां प्रत्युत्पन्नमतित्वमाह—

गहवइ गओम्ह सरणं रक्खसु एअं त्ति अडअणा भणिरी।
सहसागअस्स तुरिअं पइणो व्विअ जारमप्पेइ ॥ ९७ ॥

[गृहपते गतोऽस्माकं शरणं रक्षैनमित्यसती भणित्वा।
सहसागतस्य त्वरितं पत्युरेव जारमर्पयति ॥]

निह्नूयमानोऽपि भावः स्वभावादेवाविर्भवतीति प्रतिपादयन्ती कापि सखीं शिक्षयितुमाह—

हिअअट्ठिअस्स दिज्जउ तणुआअन्तिं ण पेच्छह पिउच्छा।
हिअअट्ठिओम्ह कंतो भणिउं मोहं गआ कुमरी ॥ ९८ ॥

---

१. 'भगिनि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'यं च ललनाः' इति ग-पाठः. ३. 'प्रेक्षते' इति ग-घ-पाठः. ४. 'शून्यकं' इति घ-पाठः. ५. 'अस्या' इति ग-पाठः. ६. 'अणिउणा भणिउम्' इति ग-पाठः. ७. 'गृहपतिर्' इति ग-पाठः. ८. 'रक्षस्वैनमित्यतिनिपुणं भणित्वा' इति ग-पाठः. ९. 'भणनशीला' इति घ-पाठः. १०. 'विउच्छा' इति ग-पाठः ११. 'कुअरी' इति ग-पाठः.

[हृदयेप्सितस्य दीयतां तनूभवन्तीं न पश्यथ पितृष्वसः ।
हृदयेप्सितोऽस्माकं कुतो भणित्वा मोहं गता कुमारी ॥]

अयमर्थः—कौमारदशायामेव कस्मिन्नपि पुरुषे कस्याश्चिदनुरागं दृष्ट्वा कयापि विदग्धया पितृष्वसारं प्रत्युक्तम्—इयं हृदयेप्सिताय कस्मैचिद्दीयतामिति । ततः स्वाशयनिह्ववार्थे तयास्माकं कुमारीणां हृदयेप्सितः कुत इत्युक्त्वा प्रियस्मरणावेगान्मोहः प्राप्त इति ॥

भुजंगप्रलोभनाय दूती नायिकायाः सुरतावसानोपचारचातुर्यमाह—

खिण्णस्स उरे पँइणो ठवेइ गिम्हावरण्हरमिअस्स ।
ओल्लं गलन्तकुसुमं ण्हाणसुअन्धं चिउरभारम् ॥ ९९ ॥

[खिन्नस्योरसि पत्युः स्थापयति ग्रीष्मापराह्णरमितस्य ।
आर्द्रं गलत्कुसुमं स्नानसुगन्धं चिकुरभारम् ॥]

ज्योत्स्नायां केलिरसिको युवा कान्तायाः कपोलकान्तिं वर्णयति—

अहसरसदन्तमण्डलकवोलपडिमागओ मँअच्छीए ।
अन्तो सिन्दूरिअसङ्खवत्तकरणिं वहइ चन्दो ॥ १०० ॥

[असौ सरसदन्तमण्डलकपोलप्रतिमागतो मृगाक्ष्याः ।
अन्तः सिन्दूरितशङ्खपात्रसादृश्यं वहति चन्द्रः ॥]

सरसदन्तमण्डलं मण्डलाकारं दन्तक्षतं ययोः कपोलयोः । प्रतिमागतः संक्रान्तप्रतिबिम्बश्चन्द्रः अन्तर्मध्ये सिन्दूरितं संजातसिन्दूरं यच्छङ्खपात्रं तत्सादृश्यं वहतीत्यर्थः । दन्तक्षतस्यारक्तत्वात्सिन्दूरसाम्यम् । कपोलयोश्च स्वच्छत्वाच्छङ्खपात्रसादृश्यं बोध्यम् ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मअए ।
सत्तसअम्मि समत्तं तीअं गाहासअं एअम् ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्तं तृतीयं गाथाशतकमेतत् ॥]

---

१. 'हृदयस्थितस्य' इति घ-पाठः. २. 'दुर्बलायमानां' इति ग-पुस्तके, 'तनुकायमानां' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'हृदयस्थितो' इति घ-पाठः; 'हृदयेप्सितमस्माकं कुत इति भणितुं मोहमुपागता' इति ग-पाठः. ४. 'वइणो' इति ग-पाठः. ५. 'सुगन्धि' इति घ-पाठः. ६. 'मिअच्छीआ' इति ग-पाठः. ७. 'पात्रकरणिं' इति ग-पुस्तके, 'पात्रसमतां' इति च घ-पुस्तके पाठः.

चतुर्थ शतकम् ।

अविदग्धे भर्तरि यथा तथा जारनिह्नवं कुलटाः कुर्वन्तीति सहचरशिक्षार्थं नागरिक आह—

अह अम्ह आँअदो अज्ज कुलहराओ त्ति छेञ्छई जारम् ।
सहसागअस्स तुरिअं पइणो कण्ठं मिँलावेइ ॥ १ ॥
[अँसावस्माकमागतोऽद्य कुलगृहादित्यसती जारम् ।
सहसागतस्य त्वरितं पत्युः कण्ठे लँगयति ॥]

छेञ्छईत्यसतीवाचको देशीशब्दः ॥

अविषयेऽपि पत्युरनुनयादरेण सखी नायिकायाः सौभाग्यं ख्यापयितुमाह—

पुँसिआ अण्णाहरणेन्दणीलकिरणाहआ ससिमऊहा ।
माणिणिवअणम्मि सकज्जलंसुसङ्काइ दइएण ॥ २ ॥
[प्रोञ्छिताः कर्णाभरणेन्द्रनीलकिरणाहताः शशिमयूखाः ।
मानिनीवदने सकज्जलाश्रुशङ्कया दयितेन ॥]

नायकप्रलोभनाय दूती कस्याश्चित्सौन्दर्यातिशयं वर्णयति—

एद्दहमेत्तम्मि जए सुन्दरमहिलासहस्सभरिए वि ।
अणुहरइ णवर तिँस्सा वामद्धं दाहिणद्धस्य ॥ ३ ॥
[एतावन्मात्रे जगति सुन्दरमँहिलासहस्रभृतेऽपि ।
अनुहरति केवलं तस्या वामार्धं दक्षिणार्धस्य ॥]

कृतापराधेऽपि प्रिये किं मानविमुखी त्वमसीति सख्योक्ता काप्यात्मनोऽनुरागं स्थिरस्नेहतां च सूचयन्ती तामाह—

जह जह वाएइ पिओ तह तह णच्चामि चञ्चले पेम्मे ।
वल्ली वलेइ अङ्गं सहावथँद्धे वि रुक्खम्मि ॥ ४ ॥
[यथा यथा वादयति प्रियस्तथा तथा नृत्यामि चञ्चले प्रेम्णि ।
वल्ली वलयत्यङ्गं स्वभावस्तब्धेऽपि वृक्षे ॥]

यद्वा निराश्रयतया स्थातुमशक्ता लता यथा स्तब्धं वृक्षमाश्रित्य तिष्ठति तथाहमपि

१. 'आअओ' इति क-ख-पाठः. २. 'छिञ्छई' इति क-पाठः. ३. 'मिलाएइ' इति ग-पाठः. ४. 'अयमस्माक' इति ग-पाठः ५. 'लागयति' इति क-घ-पाठः ६. 'पुच्छिअ' इति ग-पाठः. ७. 'तिण्णा' इति ग-पाठः. ८. 'स्त्रीसहस्र' इति ग-पाठः. ९. 'ढिए' इति क-पुस्तके, 'उद्दे' इति च ग-पुस्तके पाठः.

अनुनयं ग्राहयितुं सखी मानवतीमाह—

जं जं पिहुलं अङ्गं तं तं जाअं किसोअरि किसं ते ।
जं जं तणुअं तं तं पि णिट्ठिअं किं त्थ माणेण ॥ ९ ॥

[यद्यत्पृथुलमङ्गं तत्तज्जातं कृशोदरि कृशं ते ।
यद्यत्तनुकं तत्तदपि निष्ठितं किमत्र मानेन ॥]

निष्ठितं निष्ठां प्रकर्षं गतम् । अतिदुर्बलं जातमित्यर्थः ॥

निजभर्तुरेव न सा वल्लभा तत्कथं तस्या गुणानस्तौषीरित्यभियोज्येनोक्ता दूती तमाह—

ण गुणेण हीरइ जणो हीरइ जो जेण भाविओ तेण ।
मोत्तूण पुलिन्दा मोत्तिआइँ गुञ्जाओँ गेह्णन्ति ॥ १० ॥

[न गुणेन ह्रियते जनो ह्रियते यो येन भावितस्तेन ।
मुक्त्वा पुलिन्दा मौक्तिकानि गुञ्जा गृह्णन्ति ॥]

ह्रियते वशीक्रियते ॥

गमनाय पृष्टा किमिति किमप्युत्तरं न ददासीति प्रियेणोक्ताया वध्वाः संबन्धिनी वृद्धा काचिदाह—

लङ्कालआणँ पुत्तअ वसन्तमासेक्कलद्धपसराणम् ।
आपीअलोहिआणं वीहेइ जणो पलासाणम् ॥ ११ ॥

[लङ्कालयानां पुत्रक वसन्तमासैकलब्धप्रसराणाम् ।
आपीतलोहितानां बिभेति जनः पलाशानाम् ॥

पलाशानामिति शेषविवक्षया पञ्चम्यर्थे षष्ठी । पलाशेभ्यः किंशुकपुष्पेभ्यो वधूजनो बिभेतीत्यर्थः । अथ च पलं मांसमदन्ति भक्षयन्तीति पलाशा राक्षसाः । तेभ्यो जनो बिभेतीति श्लेषः । पुष्पपक्षे लङ्का शाखा । पक्षे राक्षसनगरी । 'लङ्का रक्षःपुरीशाखाशाकिनीकुलटासु च' इति मेदिनीकोषः । तथा (राक्षसपक्षे छाया) वसान्त्रमांसैकलब्धप्रसराणाम् । पुष्पपक्षे आ ईषत्पीतवर्णानि च तानि लोहितानि च । पक्षे आ समन्तात्पीतं लोहितं रुधिरं यैस्तेषाम् । वसन्तसूचकपलाशकुसुमभीता तव गमनं नाङ्गीकरोतीति भावः ॥

---

१. 'गुणेहिं' इति ग-पाठः. २. 'गुञ्जाउ' इति क-ख-पाठः. ३. 'गुणैः' इति ग-पाठः. ४. 'आवीअ' इति ख-पाठः. ५. 'विहेइ' इति ग-पाठः.

सखी सख्याः कान्तं प्रत्यनुरागातिशयमाह—

घेत्तूण चुण्णमुट्ठिं हरिसूससिआएँ वेपमाणाए ।
[1]भिसणेमित्ति पिअअमँ हत्थे गन्धोदअं जाअम् ॥ १२ ॥

[गृहीत्वा [2]चूर्णमुष्टिं [3]हर्षोत्सुकिताया वेपमानायाः ।
[4]अवकिरामीति प्रियतमं हस्ते गन्धोदकं जातम् ॥]

प्रियतमं विच्छुरामीति चूर्णमुष्टिं गृहीत्वा हर्षोत्सुकिताया वेपमानाया हस्ते गन्धोदकं जातमित्यन्वयः । कान्तदर्शनजनितसात्त्विकभावात्मकस्वेदाच्चूर्णमुष्टिरेव गन्धोदकं जातमित्यर्थः । चूर्णमुष्टिः कर्पूरादिभृद्गन्धद्रव्यधूलिः । भिसणेमि इति विच्छुरणे देशी ॥

सपत्न्या देवराभिसारं सूचयन्ती सपत्नी तामाह—

पुट्ठिं पुससु किसोअरि [5]पडोहरङ्कोल्लपत्तचित्तलिअम् ।
[6]छेआहिँ दिअरजा[7]आहिँ उज्जुए मा कलिज्जिहिसि ॥ १३ ॥

[पृष्ठं [8]प्रोञ्छ कृशोदरि पश्चाद्गृहाङ्कोटपत्रचित्रितम् ।
[9]विदग्धाभिर्देवर[10]जायाभि ऋजुके मा [11]कलिष्यसे ॥]

ऋजुके अभिसरणप्रच्छादनानभिज्ञे । पश्चाद्गृहे विद्यमानो योऽङ्कोटवृक्षस्तस्य पत्रैश्चित्रितं पृष्ठं प्रोञ्छ । पडोहरशब्दः पश्चाद्गृहवचनो देशी ॥

कृतापराधे प्रिये मानं कारयन्तीं सखीं काप्यात्मनोऽनुरागातिशयेन मानाक्षमतामाह—

[12]अच्छीइँ ता थइस्सं दोहिं वि हत्थेहिँ तम्मि दिट्ठम्मि ।
अङ्गं [13]कलम्बकुसुमं व पुलइअं कहँ णु ढक्किस्सम् ॥ १४ ॥

[अक्षिणी तावत्[14]स्थगयिष्यामि द्वाभ्यामपि हस्ताभ्यां तस्मिन्दृष्टे ।
अङ्गं कदम्बकुसुममिव पुलकितं कथं नु [15]छादयिष्यामि ॥]

---

१. 'भसिणेमि' इति ख-पुस्तके, 'भसलेमि' इति च क-पुस्तके पाठः. २. 'वर्णमुष्टि' इति घ-पाठः. ३. 'हर्षोच्छ्वसिताया' इति ग-घ-पाठः. ४. 'भरिष्यामि प्रियतममिति हस्ते' इति ग-पुस्तके, 'विजहामीति प्रियतमहस्ते' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'पुलोहर' इति ग-पाठः. ६. 'छेआइ' इति क-पाठः. ७. 'जाआइ' इति क-पाठः. ८. 'प्रोञ्छय' इति ग-पाठः. ९. 'छेकाभिः' इति ग-घ-पाठः. १०. 'भार्याभिः' इति घ-पाठः. ११. 'क्लिश्यसे' इति ग-पाठः. १२. 'अच्छीइं' इति ख-ग-पाठः. १३. 'कअम्ब' इति ग-पाठः. १४. 'स्थगिष्ये' इति ग-पाठः. १५. 'सादयिष्ये' इति ग-पाठः.

नायकसमीपगामुकपथिकमुखेन सखीजनो नायिकाया अवस्थां गृहस्य विशीर्णतां च संदिशन्नाह—

झञ्झावाउत्तणिए घरम्मि रोऊण णीसहणिसण्णम्।
दावेइ व गअवइअं विज्जुज्जोओ जलहराणम् ॥ १५ ॥

[झञ्झावातोत्तृणिते गृहे रुदित्वा निःसहनिषण्णाम्।
दर्शयतीवे गतपतिकां विद्युद्द्योतो जलधराणाम् ॥]

झञ्झावातो वर्षानिलः। तेनोत्तृणिते तृणशून्यीकृते गृहे निःसहं यथा स्यात्तथा निषण्णां प्रोषितपतिकां विद्युद्द्योतो जलधरेभ्यो दर्शयति। भवदुदयादियमेतामवस्थां प्राप्ता, तदस्याः पत्युरुत्कण्ठां कुरुत येनासौ झटित्यायास्यतीत्याशयेनेति भावः॥

ग्राम्यस्त्रीसंभोगे मन्दादरं नायकं प्रवर्तयितुं दूती अन्यापदेशेनाह—

भुञ्जसु जं साहीणं कुत्तो लोणं कुगामरिद्धम्मि।
सुहअ सलोणेण वि किं तेण सिणेहो जहिं णत्थि ॥ १६ ॥

[भुङ्क्ष्व यत्स्वाधीनं कुतो लवणं कुग्रामरिद्धे।
सुभग सलवणेनापि किं तेन स्नेहो यत्र नास्ति ॥]

लवणं सामुद्रिकम्। पक्षे लावण्यम्। स्नेहो घृतादिः। पक्षे प्रेम। यद्यपि कुग्रामवासित्वादियं कुवेषा तथापि त्वयि प्रेमातिशययुक्तेति भावः॥

विरसमप्यनुरागवशात्सुरसं भवतीति कापि सखीमाह—

सुहपुँच्छिआइ हलिओ मुहपङ्कअसुरहिपवणणिव्वविअम्।
तह पिअइ पँअइकडुअं पि ओसहं जह ण णिट्ठाइ ॥ १७ ॥

[सुँखपृच्छिकाया हालिको मुखपङ्कजसुरभिपवननिर्वापितम्।
तथा पिबति प्रकृतिकटुकमप्यौषधं यथा न तिँष्ठति ॥]

अयमर्थः—ज्वरितस्य नायकस्य सुखप्रश्नार्थमागतया नायिकया उष्णं क्वाथौषधं फूत्कारेण शीतलं कृतम्। ततस्तेन तिक्तमपि तन्निःशेषं पीतमिति॥

सा तत्र न गता, अहं तु निकुञ्जे चिरं स्थित्वा समागत इति वदन्तं जारं दूती नायिकायास्तत्र गमनं प्रतिपादयन्त्याह—

अह सा तहिं तहिं व्विअ वाणीरवणम्मि चुक्कसंकेआ।
तुह दंसणं विमग्गइ पब्भट्ठणिहाणठाणं व ॥ १८ ॥

---

१. 'दावेइ पउत्थपइअं' इति क-पुस्तके, 'दावेइअ' इति च ख-पुस्तके पाठः. २. 'इव' इति क-ख-घ-पुस्तकेषु नास्ति. ३. 'विद्युदुद्द्योतो' इति घ-पाठः. ४. 'उच्छिआइ' इति ग-पाठः. ५. 'पकिदिकडुअम्मि' इति ग-पाठः. ६. 'सुखपृच्छिकया हलिको' इति घ-पाठः. ७. 'निर्वाति' इति ग-घ-पाठः.

[अथ सा [1]तत्र तत्रैव वानीरवने [2]विस्मृतसंकेता।
तव दर्शनं [3]विमार्गति प्रभ्रष्टनिधानस्थानमिव ॥]

अथ त्वद्गमनानन्तरं विस्मृतं संकेतस्थानं यया सा एतादृशी सा यत्र त्वं गतस्तत्रैव वानीरवने त्वामन्वेषयतीति भावः ॥

कृतापराधं नायकसहचरं भयान्नायकोपसर्पणविमुखमभिमुखयितुं काचिदाह—

दढरोसकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहिँ विप्पिअं कन्तो।
राहुमुहम्मि वि ससिणो किरणा अमअं विअ मुअन्ति ॥१९॥

[दृढरोषकलुषितस्यापि सुजनस्य [4]मुखाद्प्रियं कुतः।
राहुमुखेऽपि शशिनः किरणा अमृतमेव मुञ्चन्ति ॥]

कापि जाराभिमतसंपादनासमर्थी तत्कृतोपहारं परिहरन्ती कोऽत्र दोष इति वदन्तीं दूतीमाह—

अवमाणिओ वि ण तहा दुम्मिज्जइ सज्जणो विहवहीणो।
[5]पडिकाउं असमत्थो माणिज्जन्तो जह परेण ॥ २० ॥

[अवमानितोऽपि न तथा [6]दूयते सज्जनो विभवहीनः।
प्रतिकर्तुमसमर्थो [7]मान्यमानो यथा परेण ॥]

प्रतिकर्तुं प्रत्युपकर्तुम्। मान्यमानो दानादिना सत्क्रियमाणः ॥

विश्वासकथनाय प्रोत्साहयन्ती दूती नायिकामन्यापदेशेनाह—

कलहन्तरे वि अविणिग्गआइं हिअअम्मि जरमुवगआइं।
सुअणकआइँ रहस्साइँ डहइ आउक्खए अग्गी ॥ २१ ॥

[कलहान्तरेऽप्यविनिर्गतानि हृदये जरामुपगतानि।
सुजन[8]श्रुतानि रहस्यानि दहत्यायुःक्षयेऽग्निः ॥]

कलहान्तरेऽपि कलहमध्येऽप्यविनिर्गतान्यप्रकटानि। हृदयान्तरे हृदयमध्ये जरामुपगतानि बहुकालं स्थितानि। आयुःक्षये सत्यग्निर्दहति। न पुनरन्यस्मिन्संक्रामन्तीति भावः ॥

---

१. 'तस्मिन् तस्मिन्नेव' इति ग-पाठः. २. 'भ्रष्टसंकेता' इति ग-पुस्तके, 'मुक्तसंकेता' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'मार्गयति' इति ग-पाठः. ४. 'विप्रियं' इति ग-घ-पाठः. ५. 'पडिआउं' इति ग-पाठः. ६. 'दुर्मनायते' इति ग-पाठः. ७. 'संमानितो' इति ग-पुस्तके, 'मन्यमानो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'कृतानि' इति ग-घ पाठः.

दूती प्रोषितभर्तृकागृहाङ्गणस्य माधवीलताकुञ्जगहनत्वेन दिवैवाभिसरणयोग्यताम्, नायिकायाश्च वसन्तकालप्राप्त्योत्कण्ठातिशयेन सुसाध्यतां प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

लुम्बीओ अङ्गणमाहवीणँ दारग्गलाउ जाआउ।
आसासो [1]पन्थपलोअणे वि पिट्टो [2]गअवईणम्॥ २२॥

[स्तबका अङ्गणमाधवीनां द्वारार्गला जाताः।
आश्वासः पान्थप्रलोकनेऽपि [3]नष्टो गतपतिकानाम्॥]

लुम्बीति स्तबके देशी। यद्वा पन्थपलोअणे वर्त्मप्रलोकने। अर्थात्पत्युः। एतेन वसन्तोऽपि संवृत्तो वर्त्मावलोकनविनोदोऽपि नष्ट इति नायिकाया उत्कण्ठातिशयो ध्वनितः॥

सखी सख्याः कान्तं प्रत्यनुरागातिशयं नयनप्रशंसां चाह—

पिअदंसणसुहरसमउलिआइँ जइ से ण होन्ति णअणाइं।
ता केण कण्णरइअं लक्खिज्जइ [5]कुवलअं तिस्सा॥ २३॥

[प्रियदर्शनसुखरसमुकुलिते यदि तस्या न भवतो नयने।
[6]तदा केन कर्णरचितं लक्ष्यते कुवलयं तस्याः॥]

आद्यस्य नयनपदेन द्वितीयस्य च कुवलयपदेनान्वयात्तस्या इति पदद्वयस्य न वैयर्थ्यमिति ध्येयम्॥

अभ्युदयहेतुरपि कार्यवशादुद्वेगं जनयतीति प्रतिपादयन्नागरिकः सहचरमाह—

चिक्खिल्लखुत्तहलमुहकड्ढणसिढिले [7]पइम्मि पासुत्ते।
अप्पत्तमोहणसुहा घणसमअं पामरी सवइ॥ २४॥

[[8]कर्दममग्नहलमुखकर्षणशिथिले [9]पत्यौ प्रसुप्ते।
अप्राप्तमोहनसुखा घनसमयं पामरी शपति॥]

चिक्खिल्लः कर्दमस्तत्र खुत्तं मग्नं यद्धलमुखं तस्य कर्षणेन शिथिले श्रान्ते पत्यौ श्रमवशात्सुप्ते सति अप्राप्तं मोहनसुखं सुरतसुखं यया सा पामरी घनसमयं शपति। निन्दतीत्यर्थः। यद्वा विद्यमानेऽपि पत्यौ हलिकवध्वाः सुलभत्वं प्रतिपादयन्त्या दूत्या जारं प्रतीयमुक्तिः॥

---

१. 'पन्थहिअपलोअणे' इति क-पाठः. २. 'गअपइआणं' इति क-पुस्तके, 'गअवईए' इति च ग-पुस्तके पाठः. ३. 'विगतो' इति घ-पाठः. ४. 'लग्गं' इति क-पाठः. ५. 'कुअलअं' इति क-पाठः. ६. 'तत्केन' इति घ-पाठः. ७. 'पिअम्मि' इति ग-पाठः. ८. 'कर्दमाक्षिप्त' इति ग-पाठः. ९. 'प्रिये' इति ग-पाठः.

गमनोद्यतस्य भर्तुर्गमनाक्षेपाय विरहदुःसहत्वं प्रकाशयन्ती कापि स्मरशरनमस्कारच्छलेनाह—

दुम्मेन्ति देन्ति सोक्खं कुणन्ति अणुराअं रमावेन्ति ।
अरइरइबन्धवाणं णमो णमो मअणबाणाणम् ॥ २५ ॥

[[1]दुन्वन्ति ददति सौख्यं [2]कुर्वन्त्य[3]नुरागं रमयन्ति ।
[4]अरतिरतिबान्धवेभ्यो नमो नमो मदन[5]बाणेभ्यः ॥]

विरहे दुःखदातृत्वात्संगमे च सुखदातृत्वादरतिरतिबान्धवत्वम् ॥

कापि कामबाणव्यापारवैचित्र्यवर्णनेन कमपि युवानं प्रत्यात्मनो मन्मथव्यथामाह—

कुसुममआ वि अइखरा अलद्धफंसा वि दूसहपआवा ।
भिन्दन्ता वि रइअरा कामस्स सरा बहुवि[6]अप्पा ॥ २६ ॥

[कुसुममया अप्यतिखरा अलब्धस्पर्शा अपि दुःसहप्रतापाः ।
[7]भिन्दन्तोऽपि रतिकराः कामस्य [8]शरा बहुविकल्पाः ॥]

बहुप्रकारा इत्यर्थः ॥

उत्कण्ठाविनोदनार्थं प्रोषितभर्तृका प्रियगुणानाह—

ईसं जणेन्ति [9]दावेन्ति मम्महं विप्पिअं सहावेन्ति ।
विरहे ण देन्ति मरिउं अहो गुणा तस्स बहुमग्गा ॥ २७ ॥

[ईर्ष्यां जनयन्ति दी[10]पयन्ति मन्मथं विप्रियं [11]साहयन्ति ।
विरहे न ददति मर्तुमहो गुणास्तस्य बहुमार्गाः ॥]

ईर्ष्यां जनयन्तीत्यनेनान्यवनिताभिः काम्यमानत्वात्सौन्दर्यातिशयः । दीपयन्ति मन्मथमिति सुरतकलाकौशलम् । विप्रियं साहयन्तीत्यनुनयचाटुचातुर्यम् । विरहे न ददति मर्तुमित्यनेन पुनः समागमाशानिबन्धः प्रेमसद्भावश्च व्यज्यते । तस्य प्रियस्य गुणा बहुमार्गा बहुप्रकाराः । 'तस्य कामशरस्य गुणा इत्यर्थः' इति कश्चित् ॥

त्वय्यनुरक्ता सा वायनकदानव्याजेन गृहं गृहं भ्रमन्ती तवापि गृहं गता । तत्रापि त्वं तया न दृष्ट इति दूती सोपालम्भं कमप्याह—

णीआइँ अज्ज णिक्किव पिणद्धणवरङ्गआँइ वराईए ।
घरपरिवाडीअ पहेणआइँ तुह दंसणासाए ॥ २८ ॥

---

१. 'दुर्मनायन्ते' इति ग-पुस्तके, 'दूनयन्ति' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'कारयन्ति' इति ग-पाठः. ३. 'अनुरागकं' इति घ-पाठः. ४. 'अभिरतिबान्धवानां' इति ग-पाठः. ५. 'बाणानाम्' इति ग-पाठः. ६. 'विआरा' इति ग-पाठः. ७. 'भिन्दमाना' इति ग-पाठः. ८. 'बाणा' इति ग-पाठः. ९. 'दीवेन्ति' इति ग-पाठः. १०. 'दर्शयन्ति' इति घ-पाठः. ११. 'सहयन्ति' इति ग-पुस्तके, 'साधयन्ति' इति च घ-पुस्तके पाठः.

[नीतान्यद्य निष्कृप पिनद्धनवरङ्गकया वराक्या।
गृहपरिपाट्या प्रहेणकानि तव दर्शनाशया ॥]

नवरङ्गकं नूतनरक्तवस्त्रम्। प्रहेणकानि वायनकानि। 'प्रहेणकं वायनकम्' इति हारावली। अयं भावः—धन्यस्त्वमसि यमुत्सवव्याजेन गृहगृहभ्रमणखेदमगणयन्ती सा त्वां दिदृक्षते। अतस्तामात्मदर्शनेनानुकम्पस्वेति ॥

दरिद्रनायकासक्तां नायिकां तल्लक्षणसूचनेन सखी निवारयितुमाह—

सूइज्जइ हेमन्तम्मि दुग्गओ पुप्फुआसुअन्धेण।
धूमकविलेण परिविरलतन्तुणा जुण्णवडएण ॥ २९ ॥

[सूच्यते हेमन्ते दुर्गतः करीषाग्निसुगन्धेन।
धूमकपिलेन परिविरलतन्तुना जीर्णपटकेन ॥]

पुप्फुआ इति करीषाग्नौ देशी ॥

शिशिरसमये प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय नायिका शिशिरप्रवासिनोऽवस्थां वर्णयति—

खरसिप्पिरउल्लिहिआइँ कुणइ पहिओ हिमागमपहाए।
आअमणजलोल्लिअहत्थफंससमसिणाइँ अङ्गाइं ॥ ३० ॥

[तीक्ष्णपलालोल्लिखितानि करोति पथिको हिमागमप्रभाते।
आचमनजलार्द्रितहस्तस्पर्शमसृणान्यङ्गानि ॥]

सिप्पिरं पलालः। ओल्लिओ आर्द्रितः। देशी द्वयम्। यदीदानीं त्वया गम्यते तदा तवापीयमवस्था भविष्यतीति भावः ॥

परिगृहीतोत्तमस्त्रीकमधमं चौरं कामुकजनेऽभिद्रवति सति कोऽप्युत्कृष्टनायिकापरिग्रहरसिकस्य निकृष्टस्य निषेधायान्यापदेशेनाह—

णक्खक्खुडिअं सहआरमञ्जरिं पामरस्स सीसम्मि।
बन्दिम्मिव हीरन्तिं भमरजुआणा अणुसरन्ति ॥ ३१ ॥

[नखोत्खण्डितां सहकारमञ्जरीं पामरस्य शीर्षे।
बन्दीमिव ह्रियमाणां भ्रमरयुवानोऽनुसरन्ति ॥]

त्वयाप्युत्तमस्त्रीपरिग्रहे कृते युवान उपद्रावयिष्यन्तीति भावः। यद्वा विपद्ग्रस्तायाः

---

१. 'परिपाला पथिनयनानि' इति घ-पाठः. २. 'धुम्म' इति ग-पाठः. ३. 'पविरल' इति ग-पाठः. ४. 'सुगन्धिना' इति ग-पाठः. ५. 'सिप्पिरुल्लिहि' इति क-ख-पाठः. ६. 'पुंस' इति क-ख-पाठः. ७. 'तीक्ष्णतृणाग्रो' इति ग-पुस्तके, 'खरपलालो' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कस्याश्चिन्नायिकायाः सखी तस्या विपदुद्धरणायान्यापदेशेन नायकमाह—नवखण्डनपामरशिरोवस्थानरूपविपत्पतितां सहकारमञ्जरीं तिर्यञ्चो भ्रमरा अप्यनुसरन्तीति रसिकशिरोमणेस्तवौदासीन्यमनुचितमित्याशयः ॥

विदिताभिप्रायोऽसि मयेति व्यञ्जयन्ती दूती नायकं विश्वासयितुमाह—

सूरच्छलेण पुत्तअ कस्स तुमं अञ्जलिं पणामेसि ।
हासकडक्खुम्मिस्सा ण होन्ति देवाणँ जेक्कारा ॥ ३२ ॥

[सूर्यच्छलेन पुत्रक कस्मै त्वमञ्जलिं प्रणामयसि ।
हास्यकटाक्षोन्मिश्रा न भवन्ति देवानां जयकाराः ॥]

जयकारा जयजयेत्यादिकाः स्तुतयः । जेक्कारो नमस्कारे देशीति कश्चित् ॥

चौर्यरतप्रशंसया दूती नायिकामुत्कण्ठयितुमाह—

मुहविज्झविअपईवं णिरुद्धसासं ससङ्किओल्लावम् ।
सवहसअरक्खिओट्ठं चोरिअरमिअं सुहावेइ ॥ ३३ ॥

[मुखविध्मापितप्रदीपं निरुद्धश्वासं सशङ्कितोल्लापम् ।
शपथशतरक्षितोष्ठं चोरिकारमितं सुखयति ॥]

मुखेन मुखवातेन विध्मापितो निर्वापितः प्रदीपो यत्र तत् ॥

रहस्यकथया दूती नायिकां विश्वासयितुमाह—

गेअच्छलेण भरिउं कस्स तुमं रुअसि णिब्भरुक्कण्ठम् ।
मण्णुपडिरुद्धकण्ठद्धणिन्तखलिअक्खरुल्लावम् ॥ ३४ ॥

[गेयच्छलेन स्मृत्वा कस्य त्वं रोदिषि निर्भरोत्कण्ठम् ।
मन्युप्रतिरुद्धकण्ठार्धनिर्यत्स्खलिताक्षरोल्लापम् ॥]

कस्य स्मृत्वा त्वं रोदिषि । नैवंविधं गीतं भवतीति मया ज्ञातम् । यदर्थं खिद्यसे तमहं साधयिष्यामीति भावः ॥

स्वयंदूती प्रतिवेशिजारं प्रति स्वावसरं ख्यापयितुमाह—

बहलतमा हअराई अज्ज पउत्थो पई घरं सुण्णम् ।
तह जग्गेसु सअज्जिअ ण जहा अम्हे मुंसिज्जामो ॥ ३५ ॥

---

१. 'देव्वाण' इति क-पाठः. २. 'जोक्कारा' इति ख-पुस्तके, 'जोल्कारा' इति च ग-पुस्तके पाठः. ३. 'कस्य' इति ग-घ-पाठः. ४. 'हास' इति घ-पाठः. ५. 'जोत्काराः' इति ग-पाठः. 'जोत्कारशब्दो नमस्कारे वर्तते' इति कुलबालदेवः. ६. 'ससंकिरुल्लावम्' इति क-ग-पाठः. ७. 'निर्वापित' इति ग-घ-पाठः. ८. 'चोरित' इति घ-पाठः. ९. 'निर्गच्छत्' इति ग-पाठः. १०. 'सुविजामो' इति क-पाठः.

[[1]बहलतमा हतरात्रिरद्य प्रोषितः पतिर्गृहं शून्यम्।
तथा जागृहि प्रतिवेशिन्न यथा [2]वयं मुष्यामहे ॥]

बहलं तमो यस्यामित्यनेन गाढान्धकार आगच्छन्तं कोऽपि न लक्षयतीति सूचितम्। अद्य प्रोषित इत्यनेन तदागमनशङ्का निरस्ता। गृहं शून्यमित्यनेनेहैव स्वच्छन्दमागच्छेति ध्वनितम् ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्कान्तस्यागमनत्वरार्थं तत्समीपगामिनं पथिकमाह—

संजीवणोसहम्मिव सुअस्स रक्खइ अणण्णवावारा।
सासू णवब्भदंसणकण्ठागअजीविअं सोह्णम् ॥ २६ ॥

[[3]संजीवनौषधिमिव सुतस्य रक्षत्यनन्यव्यापारा।
श्वश्रूर्नवाभ्रदर्शन[4]कण्ठागतजीवितां स्नुषाम् ॥]

श्वश्रूः स्नुषां सुतस्य संजीवनौषधिमिव रक्षतीति संबन्धः ॥

खण्डिता प्रातरागतं नखदन्तक्षताद्यङ्कितं कान्तं सेर्ष्यमाह—

णूणं हिअअणिहित्ताइ वससि जाआइ अम्ह हिअअम्मि।
अण्णह मणोरहा मे[5] सुहअ कहं तीअ विण्णाआ ॥ २७ ॥

[नूनं हृदयनिहितया वससि जाययास्माकं हृदये।
अन्यथा मनोरथा मे[6] सुभग कथं तया विज्ञाताः ॥]

जायया सहास्माकं हृदये वससि। अन्यथा नखक्षतादिकं यन्मया चिकीर्षितं तत्तया कथं कृतमित्यर्थः ॥

दूती नायिकाया अनुरागातिशयं सूचयन्ती नायकमाह—

तइ सुहअ [7]अईसन्ते तिस्सा अच्छीहिँ कण्णलग्गेहिं।
दिण्णं घोलिरवाहेहिँ पाणिअं दंसणसुहाणम् ॥ २८ ॥

[त्वयि सुभग [8]अदृश्यमाने तस्या अक्षिभ्यां कर्णलग्नाभ्याम्।
दत्तं [9]घूर्णनशील[10]बाष्पाभ्यां पानीयं दर्शनसुखेभ्यः ॥]

अदृश्यमाने दर्शनपथमतिक्रम्य गते। कर्णलग्नाभ्यां त्वद्दर्शनकौतुकविकसिताभ्यामि-

---

१. 'बहलान्धकारा' इति ग-पाठः. २. 'अस्मान्मुष्णीयुः' इति ग-पुस्तके, 'वयं समुद्विजामः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'संजीवनौषधमिव' इति क-ग-पाठः. ४. 'कण्ठोद्गत' इति घ-पाठः. ५. 'सासुहअ' इति ग-पुस्तके, 'सासुअ' इति च ख-पुस्तके पाठः. ६. 'मे कथय कथं' इति क-ख-पुस्तकयोः, 'मे शंस कथं' इति घ-पुस्तके पाठः. ७. 'अदीसन्ते' इति क-पाठः. ८. 'व्यतिक्रान्ते' इति ग-पाठः. ९. 'घूर्णमानाभ्यां' इति ग-पाठः. १०. 'वाहाभ्यां' इति घ-पाठः.

त्यर्थः । अतः परं त्वद्दर्शनं दुर्लभमिति मत्वा तस्मै परलोकगताय जलं दत्तमित्युत्प्रेक्षा । यद्वा त्वत्स्नेहान्न रुदितं तया, किं तु सुखाय जलाञ्जलिर्दत्त इत्यपह्नुतिः ॥

प्रोषितभर्तृका कान्तं प्रति गाथया संदेशमाह—

उप्पेक्खागअ[1]तुंअमुहदंसणपडिरुद्धजीविआसाइ ।
[2]दुहिआइ मए कालो केत्तिअमेत्तो ब्व णेअव्वो ॥ ३९ ॥
[उत्प्रेक्षागतत्वन्मुखदर्शनप्रतिरुद्धजीविताशया ।
दुःखितया मया कालः कियन्मात्रो [3]वा नेतव्यः ॥]

उत्प्रेक्षया भावनयागतस्य प्राप्तस्य तव मुखदर्शनेन प्रतिरुद्धा स्थापिता जीविताशा यस्यास्तया । अन्यथा जीविताशा गच्छेदेवेति भावः ॥

गलितरूपयौवनां कामपि कुलटां कुट्टन्याह—

[4]वोलीणालक्खिअरूअजोव्वणा पुत्ति कं ण दुम्मेसि ।
[5]दिट्ठा पणट्ठपोराणजणवआ जम्मभूमि व्व ॥ ४० ॥
[[6]व्यतिक्रान्तालक्षितरूपयौवना पुत्रि कं न [7]दुनोषि ।
[8]दृष्टा प्रणष्टपौराणजनपदा जन्मभूमिरिव ॥]

व्यतिक्रान्तमत एवालक्षितं रूपं यौवनं च यस्याः सा । जनपदो लोकः ॥

वयस्यस्याभिमतं संपत्स्यत इति नायकसहचरेण पृष्टा दूती तमाह—

परिओसविअसिएहिं भणिअं अच्छीहिँ तेण जणमज्झे ।
पडिवण्णं तीअ वि उव्वमन्तसेएहिँ अङ्गेहिं ॥ ४१ ॥
[परितोषविकसिताभ्यां भणितमक्षिभ्यां तेन जनमध्ये ।
प्रतिपन्नं तयाप्युद्वमत्स्वेदैरङ्गैः ॥]

भणितमर्थात्स्वाभिमतम् । प्रतिपन्नमङ्गीकृतम् ॥

परस्परानुरागवतोरपि कयोश्चित्समागमयोग्यसंकेतस्थलाभावादभिमतसिद्धिर्न जातेति नागरिकः सहचरमाह—

एक्कक्कमसंदेसाणुराअ[9]वड्ढन्तकोउहल्लाइं ।
दुक्खं असमत्तमणोरहाइँ [10]अंच्छन्ति मिहुणाइं ॥ ४२ ॥

१. 'तुह' इति ग-पाठः. २. 'दुहदया' इति ग-पाठः. ३. 'इति' इति ग-पुस्तके, 'इव' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'बोलीणोलेच्छिअ' इति ग-पाठः. ५. 'दिट्ठप्पणट्ठ' इति क-पाठः. ६. 'व्यतिक्रान्तोपलक्षित' इति ग-पाठः. ७. 'दुर्मनायमाना भवसि' इति ग-पुस्तके, 'दूनयसि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'दृष्ट्वा प्रनष्ट' इति ग-घ-पाठः. ९. 'वच्छन्त' इति क-पाठः. १०. 'अट्टन्ति' इति ग-पाठः.

[अन्योन्यसंदेशानुरागवर्धमानकौतूहलानि ।
दुःखमसमाप्तमनोरथानि तिष्ठन्ति मिथुनानि ॥]

प्रियं प्रति जातमनुरागं गोपयन्तीं नायिकां सखी आह—

जइ सो ण वल्लहो व्विअ गोत्तग्गहणेण तस्स सखि कीस ।
होइ मुहं ते रविअरफंसव्विसदं व तामरसम् ॥ ४३ ॥

[यदि स न वल्लभ एव गोत्रग्रहणेन तस्य सखि किमिति ।
भवति मुखं तव रविकरस्पर्शविकासितमिव तामरसम् ॥]

गोत्रं नाम । व्विसदं विकसितम् ।

कथं कुपिता त्वं प्रसन्नासीति मातुलान्या पृष्टा कापि मानापनयहेतुमाह—

माणदुमपरुसपवणस्स मामि सव्वङ्गणिव्वुइअरस्स ।
अवऊहणस्स भद्दं रइणाडअपुव्वरङ्गस्स ॥ ४४ ॥

[मानद्रुमपरुषपवनस्य मातुलानि सर्वाङ्गनिर्वृतिकरस्य ।
अवगूहनस्य भद्रं रतिनाटकपूर्वरङ्गस्य ॥]

अवगूहनस्यालिङ्गनस्य । भद्रं भवत्विति शेषः । प्रियालिङ्गनान्मानोऽपगत इति भावः ॥

कमपि युवानं प्रति जातानुरागा कापि स्वहृदयनिषेधच्छलेन संगमौत्सुक्यमाह—

णिअआणुमाणणीसङ्क हिअअ दे विरम एत्ताहे ।
अमुणिअपरमत्थजणाणुलग्ग कीस म्ह लहुएसि ॥ ४५ ॥

[निजकानुमाननिःशङ्क हृदय हे प्रसीद विरमेदानीम् ।
अज्ञातपरमार्थजनानुलग्न किमित्यस्मांल्लघयसि ॥]

निजकानुमानेन निःशङ्केति हृदयविशेषणम् । स्वमिव परमपि परदुःखदुःखितं ज्ञात्वा त्यक्तमनोरथभङ्गभयेत्यर्थः । देशब्दः संबोधने । अज्ञातपरमार्थे परव्यथानभिज्ञे जनेऽनुलग्न आसक्त ॥

---

१. 'एकैकक्रमसंदर्शनानुराग' इति ग-पुस्तके, 'एकक्रमसंदेशानुराग' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'सन्ति' इति घ-पाठः. ३. इयं सटीका गाथा क-पुस्तके नास्ति. ४. 'णिव्वदि' इति ग-पाठः. ५. 'भगिनि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'हे हृदय' इति क-ख-ग-पाठः. ७. 'विरमैतावतैव' इति ग-पाठः.

जारव्यामोहनाय दूती नायिकायाः सौन्दर्यातिशयं ख्यापयितुमाह—

ओ[1]सहिअजणो पइणा सलाहमाणेण अइचिरं हसिओ ।
चन्दो त्ति तुज्झ वअणे वि[2]इण्णकुसुमञ्जलिविलक्खो ॥ ४६ ॥

[[3]आवसथिकजनः पत्या श्लाघमानेनातिचिरं हसितः ।
चन्द्र इति तव वदने वि[4]तीर्णकुसुमाञ्जलिविलक्षः ॥]

आवसथिकश्चन्द्रार्घदानादिव्रतनियमस्थो जनश्चन्द्रभ्रमेण त्वन्मुखे प्रक्षिप्तपुष्पाञ्जलिः पत्या विहसित इत्यर्थः ॥

किमिति दुर्बलासीति सखीभिः पृष्टया त्वया किमुत्तरं दीयत इति धूर्तनायकेनोक्ता नायिका तमाह—

छिज्जन्तेहिँ अणुदिणं पच्चक्खम्मि वि तुमम्मि अङ्गेहिं ।
बालअ पुच्छिज्जन्ती ण आणिमो कस्स किं भणिमो ॥ ४७ ॥

[क्षीय[5]माणैरनुदिनं प्रत्यक्षेऽपि त्व[6]य्यङ्गैः ।
बालक पृच्छयमाना न जानीमः कस्य किं भणामः ॥]

बालक उचितानभिज्ञ । क्षीयमाणैरङ्गैरुपलक्षिता । पृच्छयमाना किमिति दुर्बलासीति शेषः । पूर्वं तव प्रवासो दुर्बलत्वे कारणमासीत्, अधुना तु संनिहिते त्वयि तव दुश्चेष्टामप्रतीयतीषु सखीषु किं वक्तव्यं तन्न जानीम इति भावः । प्राकृते वचनस्यानियमात्पृच्छयमानेत्येकवचनं जानीम इति बहुवचनं च न विरुद्धमिति ध्येयम् ॥

प्रथमतः कृतशीलखण्डनं ततो मन्दादरं कमपि नायकमनुकूलयितुं दूती सोपालम्भमाह—

अङ्गाणं तणुआरअ सिक्खावअ दीहरोइअव्वाणम् ।
विणआइक्कमआरअ मा मा णं पम्हसिज्जासु ॥ ४८ ॥

[अङ्गानां त[7]नुकारक शि[8]क्षक दीर्घरोदितव्यानाम् ।
विनयातिक्रमकारक मा मा एनां प्र[9]स्मरिष्यसि ॥]

तन्विति भावप्रधानो निर्देशः । तनुत्वकारकेत्यर्थः । विनयस्य शीलस्यातिक्रमः खण्डनं तत्कारक ॥

---

१. 'सुमुहि सहिअणो' इति ग-पाठः. २. 'विमुक्क' इति क-पुस्तके, 'विक्किण्ण' इति च ग-पुस्तके पाठः. ३. 'सुमुखि सखीजनो' इति ग-पाठः. ४. 'विकीर्ण' इति ग-पाठः. ५. 'हीयमानैः' इति ग-पाठः. ६. 'त्वयाङ्गैः' इति ग-पाठः. ७. 'तनुत्वकारक' इति घ-पाठः. ८. 'शिक्षापक' इति ग-घ-पाठः. ९. 'प्रमार्जय' इति ग-पुस्तके, 'प्रभ्रंशय' इति च घ-पुस्तके पाठः.

प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय काचिदाह—

अण्णह ण तीरइ च्चिअ [1]परिवड्ढन्तगरुअं पिअअमस्स ।
मरणविणोएण विणा विरमावेउं विरहदुक्खम् ॥ ४९ ॥

[अन्यथा न शक्यत एव [2]परिवर्धमानगुरुकं प्रियतमस्य ।
मरणविनोदेन विना विरमयितुं विरहदुःखम् ॥]

प्रियतमस्य विरहदुःखं प्रियतमविरहेण जातं दुःखं स्वस्य मरणविनोदेन विना अन्यथा प्रकारान्तरेण विरमयितुं न शक्यत एवेत्यर्थः ॥

काप्यात्मनोऽनुरागं तस्य चान्यासक्तिं सूचयन्ती नायकमाह—

वण्णन्तीहिँ तुह गुणे बहुसो अम्हेहिं छिञ्छईपुरओ ।
बालअ सअमेअ कओसि दुल्लहो [3]कस्स कुप्पामो ॥ ५० ॥

[वर्णयन्तीभिस्तव गुणान्बहुशोऽस्माभिरसतीपुरतः ।
बालक स्वयमेव कृतोऽसि दुर्लभः कस्मै कुप्यामः ॥]

छिञ्छई असती । त्वद्गुणमुखरायाः स्वकृत एवायं ममानर्थ इति भावः ॥

कापि स्वसौभाग्यप्रकटनायात्मनः प्रियस्य चान्योन्यानुरागमाह—

जाओ सो वि विलक्खो मए वि हसिऊण गाढमुवगूढो ।
पढमोसरिअस्स [4]णिअंसणस्स गण्ठिं [5]विमग्गन्तो ॥ ५१ ॥

[जातः सोऽपि विलक्षो मयापि हसित्वा गाढमुपगूढः ।
प्रथमापसृतस्य निवसनस्य ग्रन्थिं विमार्गयमाणः ॥]

प्रथमेत्यनुरागातिशयेन प्रियस्पर्शात्पूर्वमेव स्खलितस्येत्यर्थः । वैलक्ष्यापनयनाय मयापि गाढमालिङ्गित इति भावः ॥

अन्यासक्तं नायकमनुकूलयितुं दूती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

कण्डुज्जुआ वराई अज्ज तए सा कआवराहेण ।
अलसाइअरुण्णविअम्भिआइँ दिअहेण [6]सिक्खविआ ॥ ५२ ॥

[[7]काण्डर्जुका वराकी अद्य त्वया सा कृतापराधेन ।
अलसायितरुदितविजृम्भितानि दिवसेन शिक्षिता ॥]

---

१. 'परिवड्ढन्तस्स गरुअपेम्मस्स' इति क-ख-पाठः. २. 'परिवर्धमानस्य गुरुकप्रेम्णः' इति घ-पाठः. ३. 'कस्य कुप्यामि' इति ग-पाठः. ४. 'णिअंसनशब्दः परिधानवस्त्रवाचकः' इति कुलबालदेवः. ५. 'विमार्गन्' इति ग-पुस्तके, 'विमृगमाणः' इति घ-पुस्तके पाठः. ६. 'सिक्खइआ' इति ग-पाठः. ७. 'कर्णऋजुका' इति घ-पाठः.

काण्डवदृजुका । 'कण्णुज्जुआ' इति पाठे कर्णऋजुका कर्णदुर्बलेत्यर्थः । 'कन्या ऋजुका इत्यर्थः' इति कश्चित् ॥

कापि दाक्षिण्यादनुनयन्तं शठं नायकमाह—

अवराहेहि वि ण तहा पत्तिअ जह मं इमेहि दुम्मेसि ।
अवहत्थिअसब्भावेहि सुहअ दक्खिणणभणिएहिं ॥ ५३ ॥

[अपराधैरपि न तथा प्रतीहि यथा मामेभिर्दुनोषि ।
अपहस्तितसद्भावैः सुभग दाक्षिण्यभणितैः ॥]

निद्राव्याजेन प्रियाशयजिज्ञासया परिभ्रमन्तौ भुजौ निर्भर्त्सयन्तीं नायिकां नायक आह—

मा जूर पिआलिङ्गणसरहसभमिरीणँ बाहुलइआणम् ।
तुह्णिक्कपरुण्णेण अ इमिणा माणंसिणि मुहेण ॥ ५४ ॥

[मा क्रुध्यस्व प्रियालिङ्गनसरभसभ्रमणशीलाभ्यां बाहुलतिकाभ्याम् ।
तूष्णीकप्ररुदितेन चानेन मनस्विनि मुखेन ॥

बाहुलतिकाभ्यामित्यत्र 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' इति चतुर्थी । अत्र सापराधं प्रियं प्रति क्रोधाभावेन विशेषोक्तिः । अदोषौ दोषौ प्रति क्रोधेन च विभावना द्रष्टव्या । तल्लक्षणं तु 'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः' 'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना' इति काव्यप्रकाशकारोक्तं द्रष्टव्यम् ॥

पुष्पावचयच्छलेन संकेतस्थानं गच्छन्तं कामुकं कापि जरत्कुट्टनी सपरिहासमाह—

मा वच्च पुःफलाविर देवा उअअञ्जलीहि तूसन्ति ।
गोआअरीअ पुत्तअ सीलुम्मूलाइँ कूलाइं ॥ ५५ ॥

[मा व्रज पुष्फलवनशील देवा उदकाञ्जलिभिस्तुष्यन्ति ।
गोदावर्याः पुत्रक शीलोन्मूलानि कूलानि ॥]

पुष्पाणां लवनं छेदनम् । शीलं सच्चरितमुन्मूलयन्ति निर्मूलं कुर्वन्तीति तथाभूतानि॥

कस्मिन्नपि यूनि जाताभिलाषां स्वाभिलाषं लज्जया गोपयन्तीं नायिकां सखी आह—

वअणे वअणम्मि चलन्तसीससुण्णावहाणहुंकारम् ।
सहि देन्ती णीसासन्तरेसु कीस म्ह दुम्मेसि ॥ ५६ ॥

१. 'दूमेसि' इति ग-पाठः. २. 'मामेतैरपदुर्मनायसे' इति ग-पुस्तके, 'मामेभिर्नोदयसि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'जूल' इति ग-पाठः. ४. 'अयि सुत्तसु मणंसिणि सुहेण' इति ग-पाठः. ५. 'अयि स्वपिहि मनस्विनि सुखेन' इति ग-पाठः. ६. 'णिस्सासन्तरेण' इति ग-पाठः.

[वचने वचने चलच्छीर्षशून्यावधानहुंकारम् ।
सखि ददती नि[1]ःश्वासान्तरेषु किमित्यस्मा[2]न्दुनोषि ॥]

कृतापराधं कान्तं प्रति प्रियाया अनङ्गीकारं बोधयन्ती दूती आह—

सब्भावं पुच्छन्ती बालअ रोआविआ तुह पिआए ।
णत्थि व्विअ कअसवहं [3]हासुम्मिस्सं भणन्तीए ॥ ५७ ॥

[सद्भावं पृच्छन्ती बालक रोदि[4]ता तव प्रियया ।
नास्त्येव कृतशपथं हासोन्मिश्रं भणन्त्या ॥]

रोदिता अहमिति शेषः । नास्त्येवेत्यनन्तरं दूतीति शेषः । अपि नाम स्थिरस्नेहोऽयं तव पतिरिति पृष्टे नास्त्येव सद्भाव इति कथयन्त्या रोदिताहमिति भावः ॥

संकल्पमात्रात्सात्त्विकभावा भवन्तीति कापि स्ववैदग्ध्यं ख्यापयितुं सखीमाह—

एत्थ मए रमिअव्वं तीअ समं चिन्तिऊण हिअएण ।
पामरकरसेओ[5]ल्ली णिवअइ तुवरी [6]वविज्जन्ती ॥ ५८ ॥

[अत्र मया [7]रन्तव्यं तया समं चिन्तयित्वा हृदयेन ।
पामरकरस्वेदार्द्रा निपताति [8]तुवरी उप्यमाना ॥]

सममित्यनन्तरमितीति शेषः । इति चिन्तयित्वोप्यमानेति योजना । तुवरी आढकी । 'आढकी तु तुवर्यां स्त्री परिमाणान्तरे त्रिषु' इति मेदिनी ॥

काप्यात्मनः पत्यौ कस्याश्चिदनुरागं सूचयन्ती सखीमाह—

गहवइसुओच्चिएसु वि फलही[9]वेण्टेसु उअह वहुआए ।
मोहं भमइ पुलइओ वि[10]लग्गसेअङ्गुली हत्थो ॥ ५९ ॥

[गृहपतिसुतावचितेष्वपि कर्पासवृ[11]न्तेषु पश्यत वध्वाः ।
मोघं भ्रमति पुलकितो वि[12]लग्नस्वेदाङ्गुलिर्हस्तः ॥]

---

१. 'निःश्वासान्तरेण' इति ग-पाठः. २. 'दुर्मनायते' इति ग-पाठः. ३. 'हासुम्मीसं' इति ग-पाठः. ४. 'रोदितास्मि' इति ग-पाठः. ५. 'उल्ला' इति ग-पाठः. ६. 'अविज्जन्ती' इति ख-पाठः. ७. 'रमितव्यं' इति घ-पाठः. ८. 'तुवरी वयमाना' इति ग-पुस्तके, 'कोशातकी उप्यमाना' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'खण्डेसु' इति क-पुस्तके, 'वाटेसु' इति च ख-पुस्तके पाठः. १०. 'गलन्त' इति ग-पाठः. ११. 'वाटेषु' इति घ-पाठः. १२. 'गलत्' इति ग-घ-पाठः.

कोऽप्यात्मनो विज्ञत्वं ख्यापयन्सखायमाह—

अज्जं मोहणसुहिअं मुअत्ति मोत्तूं पलाइए हलिए ।
दरफुंडिअवेण्टभारोणआइ हसिअं व फंलहीए ॥ ६० ॥

[आर्यां मोहनसुखितां मृतेति मुक्त्वा पलायिते हलिके ।
दरस्फुटितवृंन्तभारावनतया हसितमिव कार्पास्या ॥]

आर्यां तरुणीं सुरतखेदेन निमीलितनयनां मृतेति ज्ञात्वा हलिके पलायिते सति ईषत्स्फुटितवृन्तभारया लज्जावशादिवावनतया कार्पास्या हसितमिव ॥

काप्यात्मनो निन्दाछलेन कान्तं प्रत्यनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती सखीमाह—

णीसासुक्कम्पिअपुलइएहिँ जाणन्ति णच्चिउं धण्णा ।
अम्हारिसीहिँ दिट्ठे पिअम्मि अप्पा वि वीसरिओ ॥ ६१ ॥

[निःश्वासोत्कम्पितपुलकितैर्जानन्ति नर्तितुं धन्याः ।
अस्मादृशीभिर्दृष्टे प्रिये आत्मापि विस्मृतः ॥]

अत्र ता अधन्या वयं तु धन्या इति व्यतिरेकालंकारो व्यङ्ग्यः ॥

इष्टसिद्धये दूती नायिकाया व्याजस्तुतिमाह—

तणुएण वि तणुइज्जइ खींएण वि खिज्जए बला इमिणा ।
मज्झत्थेण वि मज्झेण पुत्ति कह तुज्झ पडिवक्खो ॥ ६२ ॥

[तंनुकेनापि तनूयते क्षीणेनापि क्षीयते बलादनेन ।
मध्यस्थेनापि मध्येन पुत्रि कथं तव प्रतिपक्षः ॥]

यो हि मध्यस्थत्वादिगुणयुक्तः स परं न पीडयति । अयं तु तव मध्यस्तनुरपि क्षीणोऽपि मध्यस्थोऽपि परं पीडयतीत्यपिशब्दद्योत्यो विरोधाभासः ॥

काप्यात्मनो वैदग्ध्यमनुरागं च सूचयन्ती कमप्याह—

वाहिव्व वेज्जरहिओ धणरहिओ सुअणमज्झवासो व्व ।
रिउरिद्धिदंसणम्मिव दूसहणीओ तुह विओओ ॥ ६३ ॥

---

१. 'मोत्तुं' इति ख-ग-पाठः. २. 'फुलिअ' इति क-ग-पाठः ३. 'फलहीहिं' इति ग-पाठः. ४. 'ईश्वरसुतां' इति ग-पुस्तके, 'वरतनुं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'फलभारावनतया' इति ग-पुस्तके, 'वृन्तभारावनतेन' इति च घ-पुस्तके पाठः. 'फलही कार्पासवृक्षः । वेण्टशब्दः कर्पासफले वर्तते' इति कुलबालदेवः. 'कर्पासेन' इति घ-पाठः. ६. 'खामेण खमिज्जए' इति ग-पाठः. ७. 'तनुकेनापि तनुः क्रियते क्षामः क्रियते क्षामेण' इति ग-पाठः.

[व्याधिरिव वैद्य[1]रहितो धनरहितः स्वजनमध्य[2]वास इव ।
रिपुऋद्धिदर्शनमिव दुःसहनीयस्तव वियोगः ॥]

प्रियं प्रति नायिकायाः संदेशगाथेयमिति केचित् ॥

वेश्यामाता स्वदुहितुः पीनोन्नतपयोधरतां प्रतिपादयन्ती चाटूक्त्या राजानमनुकूलयितुमाह—

कोत्थ जअम्मि समत्थो थइउं वि[3]त्थिण्णणिम्मलुत्तुङ्गम् ।
हिअअं तुज्झ णराहिव गअणं च पओहरं मोत्तुम् ॥ ६४ ॥

[[4]कोऽत्र जगति समर्थः स्थगयितुं विस्तीर्णनिर्मलोत्तुङ्गम् ।
हृदयं तव नराधिप [5]गगनं च [6]पयोधरान्मुक्त्वा ॥]

पयोधरः स्तनः । पक्षे मेघः ॥

संकेतस्थानगतं जारं कुट्टनी समाश्वासयितुमाह—

आअण्णेइ [7]अउअणा कुडङ्गहेट्ठम्मि दिण्णसंकेआ ।
अग्गपअपेल्लिआणं मम्मरअं जुण्णपत्ताणम् ॥ ६५ ॥

[[8]आकर्णयत्यसती [9]कुञ्जाधो दत्तसंकेता ।
अग्रपदप्रेरितानां मर्मरकं जीर्णपत्राणाम् ॥]

मर्मरः पत्रध्वनिः । 'अथ मर्मरः । स्वनिते वस्त्रपर्णानाम्' इत्यमरः ॥

भुजंगप्रलोभनार्थं दूती कस्याश्चिन्मुखसौरभं वर्णयति—

अहिलेन्ति सुरहिणीससिअपरिमलाबद्ध[10]मण्डलं भमरा ।
अमुणिअचन्दपरिहवं अपुव्वकमलं मुहं तिस्सा ॥ ६६ ॥

[[11]अभिलीयन्ते सुरभिनिःश्वसितपरिमलाबद्धमण्डलं भ्रमराः ।
अज्ञातचन्द्रपरिभवमपूर्वकमलं मुखं तस्याः ॥]

भ्रमरा भ्रमणशीलाः कामुका भृङ्गाश्च । सुरभि यन्निःश्वसितं तस्य परिमलेनाबद्धं मण्डलं यस्मिन्कर्मणि तथा भवतीति क्रियाविशेषणम् । 'अहिलेन्ति अभिलषन्तीत्यर्थः' इति कश्चित् ॥

---

१. 'औषधरहितो' इति ग-पाठः. २. 'गृहवास' इति ग-पाठः. ३. 'वित्थिण्णं णिम्मलं समुत्तुङ्गम्' इति ग-पाठः. ४. 'कः समर्थो भवति पिधापयितुं विस्तीर्णं निर्मलं समुत्तुङ्गम्' इति ग-पाठः. ५. 'गगनमिव' इति ग-घ-पाठः. ६. 'पयोधरौ' इति ग-पाठः. ७. 'अइणिउणा' इति ग-पाठः. ८. 'आकर्णयत्यतिनिपुणा' इति ग-पाठः. ९. 'कुञ्जतले इति' घ-पाठः. १०. 'मण्डला भमरी' इति क-पाठः. ११. 'अभिलषति सुरभिनिर्मथित' इति ग-पाठः.

दूती नायिकाया अनुरागातिशयं सूचयन्ती नायकमाह—

धीरावलम्बिरीअ वि गुरुअणपुरओ तुमम्मि वोलीणे ।
पडिओ से अच्छिणिमीलणेण पम्हट्ठिओ वाहो ॥ ६७ ॥

[धैर्यावलम्बनशीलाया अपि गुरुजनपुरतस्त्वयि व्यतिक्रान्ते ।
पतितस्तस्या अक्षिनिमीलनेन पक्ष्मस्थितो बाष्पः ॥]

गुरुजनलज्जया तया नानुगमनं कृतम्, बाष्पेण पुनः कृतमेवेति भावः ॥

मानिन्याः स्वस्मिन्ननुरागातिशयं स्वसौभाग्यं च सूचयन्नागरिकः सहचरमाह—

भरिमो से सअणपरम्मुहीअ विअलन्तमाणपसराए ।
कइअवसुत्तुव्वत्तणथणकलसप्पेल्लणसुहेल्लिम् ॥ ६८ ॥

[स्मरामस्तस्याः शयनपराङ्मुख्या विगलन्मानप्रसरायाः ।
कैतवसुप्तोद्वर्तनस्तनकलशप्रेरणसुखकेलिम् ॥]

कस्याश्चिदङ्गं जारेण कर्दमेनोक्षितं वीक्ष्य कर्दमदातरि तस्या अनुरागातिशयं सूचयन्ती सखी सपरिहासं तामाह—

फग्गुच्छणणिद्दोसं केण वि कद्दमपसाहणं दिण्णम् ।
थणअलसमुहपलोट्टन्तसेअधोअं किणो धुअसि ॥ ६९ ॥

[फाल्गुनोत्सवनिर्दोषं केनापि कर्दमप्रसाधनं दत्तम् ।
स्तनकलशमुखप्रलुठत्स्वेदधौतं किमिति धावयसि ॥]

क्षालयसीत्यर्थः ॥

त्वद्वचनादहं तत्समीपं गतः, तया तु मां विलोक्यापि न किंचिदुक्तमिति नायकेनोक्ता दूती तमाह—

किं ण भणिओ सि बालअ गामणिधूआइ गुरुअणसमक्खम् ।
अणिमिसमीसीसिवलन्तवअणणअणद्धदिट्ठेहिं ॥ ७० ॥

---

१. 'धीरमविलम्बिरी' इति ख-पाठः. २.'धैर्यमवलम्बन्त्या' इति ग-पाठः. ३. 'थणजुअलमुहपेल्लण' इति ख-पुस्तके, 'थणकलसापीडन' इति च ग-पुस्तके पाठः ४. 'कलशालिङ्गनसुखकेलिम्' इति ग-पुस्तके, 'कलशापीडनसुखम्' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५ 'फल्गूत्सव' इति ग-घ-पाठः. ६. 'प्रवर्तमान' इति ग-घ-पाठः. ७. 'धावसि' इति क-ख-पाठः.

[किं न भणितोऽसि बालक ग्रामणीपुत्र्या गुरुजनसमक्षम्।
अनिमिषमीषदीषद्वलद्वदननयनार्धदृष्टैः ॥]

बालक इङ्गितानभिज्ञ। ईषदीषद्वलद्वदनं च नयनार्धदृष्टानि चेति कर्मधारयः। दृष्टानि निरीक्षणानि। कटाक्षनिरीक्षणेन संभावित एवासि। श्वशुरादिदर्शनाविर्भूतया त्रपया वाचा केवलं नोक्तोऽसीति भावः॥

उक्तमेवार्थं भङ्ग्यन्तरेणाह—

णअणब्भन्तरघोलन्तबाहभरमन्थराइ दिट्ठीए।
पुणरुत्तपेच्छिरीए बालअ किं जं ण भणिओ सि॥ ७१॥

[नयनाभ्यन्तरघूर्णमानबाष्पभरमन्थरया दृष्ट्या।
पुनरुक्तप्रेक्षणशीलया बालक किं यन्न भणितोऽसि॥]

कयापि तारुण्यावस्थायां सुरतसमये गणपतिरुपधानीकृतः, सैव वार्धकावस्थायां तमेव गणपतिं पूजयन्ती जरामुपालभते—

जो सीसम्मि विइण्णो मज्झ जुआणेहिँ गणवई आसी।
तं व्विअ एह्णिं पणमामि हअजरे होहि संतुट्ठा॥ ७२॥

[यः शीर्षे वितीर्णो मम युवभिर्गणपतिरासीत्।
तमेवेदानीं प्रणमामि हतजरे भव संतुष्टा॥]

कापि मृतचौरिकामहिलां शोचन्तं कमप्यन्यापदेशेनाह—

अन्तोहुत्तं डँज्जइ जाआसुण्णे घरे हलिअउत्तो।
उक्खाअणिहाणाइं व रमिअट्ठाणाइँ पेच्छन्तो॥ ७३॥

[अन्तरभिमुखं दह्यते जायाशून्ये गृहे हालिकपुत्रः।
उत्खातनिधानानीव रमितस्थानानि पश्यन्॥]

अन्तरभिमुखं हृदय एवेत्यर्थः। मृतधर्मपत्नीकः पामरोऽपि बाह्याकारेण दुःखं नाविष्करोति, त्वं तु विज्ञोऽपि सन्मृतचौरिकामहिलां प्रति शोचसीत्ययुक्तमिति भावः।

१. 'स्नुषया' इति ग-पुस्तके, 'दुहित्रा' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'अनिमिषतिर्यग्वदनवलित' इति ग-पाठः. ३. 'सेसिरीए' इति ग-पाठः. ४. 'म्लेच्छितकया' इति ग-पाठः, 'म्लेच्छितं गुप्तभाषितम्' इति कुलबालदेवः. ५. 'कियन्न' इति ग-घ-पाठः. ६. 'शिरसि' इति ग-पाठः. ७ 'भुज्जइ' इति ग-पाठः. ८. 'अन्तरा दह्यते' इति ग-पुस्तके, 'अन्तर्भूतं दह्यते' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'प्रेक्षन्' इति ग-पाठः.

मानं धत्स्वेति शिक्षयन्तीं सखीं काचिदाह—

णिद्दाभङ्गो आवण्डुरत्तणं दीहरा अ णीसासा ।
जाअन्ति जस्स विरहे तेण समं कीरिसो[1] माणो ॥ ७४ ॥

[निद्राभङ्ग आपाण्डुरत्वं दीर्घाश्च[2] निःश्वासाः ।
जायन्ते यस्य विरहे तेन समं कीदृशो मानः ॥]

कथं कुपितासीति नायकेन पृष्टाया धीरानायिकाया उक्तिरियमिति केचित् ॥

कृतापराधं कान्तं कापि सप्रणयरोषमाह—

तेण ण मरामि मण्णूहिँ पूरिआ अज्ज जेण रे सुहअ ।
तोग्गअमणा मरन्ती मा तुज्झ पुणो वि लग्गिस्सम् ॥ ७५ ॥

[तेन न म्रिये मन्युभिः पूरिताद्य येन रे सुभग ।
त्वद्गतमना[3] म्रियमाणा मा तव पुनरपि लँगिष्यामि[4] ॥]

त्वद्गतचित्ताया मम मरणमेव युक्तम्, परं तु तव स्मरणाद्यदि मम मरणं भवति तदा जन्मान्तरेऽपि त्वमेव मम पतिर्दुःखदो भविष्यसीति भीत्या न म्रियेऽहमिति भावः ॥

कापि धैर्यमनुरागं च व्यञ्जयन्ती कृतापराधं कान्तमाह—

अवरज्झसु वीसद्धं सव्वं ते सुहअ विसहिमो अम्हे ।
गुणणिब्भरम्मि हिअए पत्तिअ दोसा ण माअन्ति ॥ ७६ ॥

[अपराध्यस्व विस्रब्धं[5] सर्वं ते सुभग विषहामहे[6] वयम् ।
गुणनिर्भरे हृदये प्रतीहि दोषा न मान्ति ॥]

अपराध्यस्वापराधं कुरु । गुणैरर्थात्त्वदीयैर्निर्भरे पूर्णे हृदये दोषा न मान्ति अवकाशं न लभन्ते । अनुरक्तेन दोषो न गृह्यत इति भावः ॥

नायिकाया विरहार्ति प्रतिपादयन्ती दूती नायकं त्वरयितुमाह—

भँरिउच्चरन्त[7]पसरिअपिअसंभरणपिसुणो वराईए ।
परिवाहो विअ दुक्खस्स वहइ णअणट्ठिओ वाहो ॥ ७७ ॥

[भृतोच्चरत्[8]प्रसृतप्रियसंस्मरणपिशुनो[9] वराक्याः ।
परीवाह[10] इव दुःखस्य वहति नयनस्थितो[11] बाष्पः ॥]

---

१. 'केरिसो' इति ग-पाठः. २. 'दीर्घं च निःश्वसितम्' इति ग-पाठः. ३. 'त्वद्गतमनस्का' इति ग-पाठः. ४. 'लगिष्ये' इति ग-पाठः. ५. 'विश्वस्तं' इति घ-पाठः. 'विषह्यामहे' इति ग-पाठः. ७. 'भरिउब्भरन्त' इति ख-पाठः. ८. 'भृतोद्भ्रियमाणा' इति ग-पुस्तके, 'भृतोच्छलत्' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'सूचको' इति ग-पाठः. १०. 'परीवाहमिव' इति ग-पाठः. ११. 'स्थितं बाष्पम्' इति ग-पाठः.

भृतः पूर्णः । उच्चरन्निर्गच्छन् । प्रसृतः प्रवृद्धः । तथा प्रियसंस्मरणस्य पिशुनः सूचकः । एतच्च परीवाहबाष्पयोरुभयोरपि विशेषणम् ॥

नायिकाया अनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

जं जं करेसि जं जं जप्पसि जह तुम णिअच्छेसि ।
तं तमणुसिक्खिरीए दीहो दिअहो ण संपडइ ॥ ७८ ॥

[यद्यत्करोषि यद्यज्जल्पसि यथा त्वं [1]निरीक्षसे ।
[2]तत्तदनुशिक्षणशीलाया दीर्घो दिवसो न संपद्यते ॥]

त्वच्चेष्टितमनुकुर्वत्यास्तस्या दिवसो लघुर्भवतीत्यर्थः ॥

काचित्पथिकेन समं रात्रौ कृतसंभोगा तद्गुणातिशयेन विरहकातरा प्रभाते रोदितीति नागरिकः स्वस्य विज्ञत्वख्यापनाय सहचरमाह—

भण्डन्तीअ तणाइं सोत्तुं दिण्णाइँ जाइँ पहिअस्स ।
ताइं च्चेअ पहाए अज्जा आअट्टइ रुअन्ती ॥ ७९ ॥

[भर्त्सयन्त्या तृणानि [3]स्वप्तुं दत्तानि यानि पथिकस्य ।
तान्येव प्रभाते [4]आर्या आकर्षति रुदती ॥]

भण्डन्ती भर्त्सयन्ती । कलहं कुर्वाणेति यावत् ॥

कोऽपि सहचरस्य गाम्भीर्यशिक्षार्थं सत्पुरुषप्रशंसामाह—

वसणम्मि अणुव्विग्गा विहवम्मि अगव्विआ भए धीरा ।
होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सप्पुरिसा ॥ ८० ॥

[व्यसनेऽनुद्विग्ना [5]विभवेऽगर्विता भये [6]धीराः ।
भवन्त्यभिन्नस्वभावाः समेषु विषमेषु सत्पुरुषाः ॥

केनापि प्रवासिना पुरुषेण प्रेयसीं स्मृत्वा प्रभाते गानं कृतम्, तच्छ्रवणेनोद्दीपितविरहानला कापि प्रोषितभर्तृका सखीमाह—

अज्ज सहि केण गोसे कं पि मणे वल्लहं भरन्तेण ।
अम्हं मअणसराहअहिअअव्वणफोडनं गीअम् ॥ ८१ ॥

---

१. 'निध्यायसि' इति ग-पाठः. २. 'तत्तदनुशिक्षन्त्या' इति ग-पाठः. ३. 'शयितुं' इति घ-पाठः. ४. 'ईश्वरसुता आकर्षयते' इति ग-पुस्तके, 'वरतनुराकर्षति' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५ 'वैभवे' इति ग-पाठः. ६. 'धैर्यान्विताः' इति ग-पाठः.

[अद्य सखि केन प्रातः कामपि मन्ये वल्लभां स्मरता ।
अस्माकं मदनशराहतहृदयव्रणस्फोटनं गीतम् ॥]

तद्दुःखदर्शनेनास्माकं विरहदुःखं स्फुटितव्रणवदधिकं जातमिति भावः ॥

आयतिखेदकरं तदात्वेऽपि खेदयतीति निदर्शयन्कोऽपि सहचरमाह—

उट्ठन्तमहारम्भे थणए दट्ठूण मुद्धवहुआए ।
ओसण्णकवोलाए णीससिअं पढमघरिणीए ॥ ८२ ॥

[उत्तिष्ठन्महारम्भौ स्तनौ दृष्ट्वा मुग्धवध्वाः ।
अवसन्नकपोलया[2] निःश्वसितं प्रथमगृहिण्या[3] ॥]

अवसन्नकपोलया शुष्ककपोलया । पतितस्तनीं मां विहायातः परमस्यामन्योन्याश्लिष्टघनपीनकुचायामासक्तो भविष्यति कान्त इति चिन्तयेति भावः ॥

कापि मन्दस्नेहं नायकमनुकूलयितुमन्यापदेशेनाह—

गरुअच्छुहाउलिअस्स वि वल्लहकरिणीमुहं भरन्तस्स ।
सरसो मुणालकवलो गअस्स हत्थे च्चिअ मिलाणो ॥ ८३ ॥

[गुरुकक्षुधाकुलितस्यापि वल्लभकरिणीमुखं स्मरतः[4] ।
सरसो मृणालकवलो गजस्य हस्त एव म्लानः ॥]

मदविमोहितबुद्धिना तिरश्चा गजेनापि प्रियास्नेहातिशयान्मृणालकवलस्त्यक्तः । त्वं पुनर्मामपहाय महिलासहस्रं रमयसीति ज्ञातस्तव स्नेह इत्युपालम्भो व्यङ्ग्यः ॥

वाचापि प्रियो नोद्वेजयितव्य इति सखीं शिक्षयितुं कापि धीराया नायिकाया नायकेन सहोक्तिप्रत्युक्तिकौशलमाह—

पसिअ पिए का कुविआ सुअणु तुमं परअणम्मि को कोवे ।
को हु परो नाथ तुमं कीस अपुण्णाण मे सत्ती ॥ ८४ ॥

[प्रसीद प्रिये का कुपिता[5] सुतनु त्वं परजने[6] कः कोपः ।
कः खलु परो नाथ त्वं किमित्यपुण्यानां मे शक्तिः ॥]

विप्रलब्धाया अनुरागातिशयं विरहार्तिं च प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

एहिसि तुमं त्ति णिमिसं व जग्गिअं जामिणीअ पढमद्धम् ।
सेसं संतावपरव्वसाइ वरिसं व वोलीणम् ॥ ८५ ॥

---

१. 'प्रभाते किमपि' इति ग-पाठः. २. 'कपोलायाः' इति घ-पाठः. ३. 'गृहिण्याः' इति घ-पाठः. ४. 'स्मरमाणस्य' इति ग-पाठः. ५. 'कुविदा' इति ग-पाठः. ६. 'परिजने' इति घ-पाठः.

[ऐष्यसि त्वमिति निमिषमिव जागरितं यामिन्याः प्रथमार्धम्।
शेषं संतापपरवशाया वर्षमिव व्यतिक्रान्तम्॥

भूतादिग्रस्तेयं स्त्री परिभ्रमतीति शङ्कमानं जनं प्रति प्रोषितभर्तृकायाः सखी काचिदाह—

अवलम्बह मा सङ्कह ण इमा गहलङ्घिआ परिब्भमइ।
अत्थक्कगज्जिउब्भन्तहित्थहिअआ पहिअजाआ॥ ८६॥

[अवलम्बध्वं मा शङ्कध्वं नेयं ग्रहलङ्घिता परिभ्रमति।
आकस्मिकगर्जितोद्भ्रान्तत्रस्तहृदया पथिकजाया॥]

हित्थं त्रस्तम्। ग्रहा भूतादयः॥

स्वस्य गुणोत्कर्षं ख्यापयन्ती काप्यनेकस्त्रीलम्पटं कान्तं मधुकरव्याजेनोपालभते—

केसररअविच्छड्डे मअरन्दो होइ जेन्तिओ कमले।
जइ भमर तेन्तिओ अण्णहिंपि ता सोहसि भमन्तो॥ ८७॥

[केसररजःसमूहे मकरन्दो भवति यावान्कमले।
यदि भ्रमर तावानन्यत्रापि तदा शोभसे भ्रमन्॥]

विच्छड्डः समूहः।

'रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति' इति निदर्शयन्कोऽपि सखायमाह—

पेच्छन्ति अणिमिसच्छा पहिआ हलिअस्स पिट्ठपण्डुरिअम्।
धूअं दुद्धसमुद्दुत्तरन्तलच्छिं विअ सअह्णा॥ ८८॥

[प्रेक्षन्तेऽनिमिषाक्षाः पथिका हलिकस्य पिष्टपाण्डुरिताम्।
दुहितरं दुग्धसमुद्रोत्तरल्लक्ष्मीमिव सतृष्णाः॥]

धूआ दुहिता। पिष्टं तण्डुलादेः। यथानिमिषाक्षा देवा लक्ष्मीमपश्यंस्तथा तथा पथिका अपीमामित्यर्थः। हलिकसुतामपि साभिलाषं पश्यतामेषां वासो न देयः इति सहचरं प्रति नागरिकस्योक्तिरिति केचित्॥

कलहान्तरितायाः खेदातिशयं सूचयन्ती दूती तत्कान्तमाह—

कस्स भरिसि त्ति भणिए को मे अत्थि त्ति जम्पमाणाए।
उव्विग्गरोइरीए अम्हे वि रुआविआ तीए॥ ८९॥

१. 'आगमिष्यसि' इति ग-पाठः. २. 'जागृतं' इति ग-पाठः. ३. 'अल्पेक' इति ग-पाठः. ४. 'भमर होइ तेन्तिओ' इति क-ग-पाठः. ५. 'रजोविस्तृते' इति ग-घ-पाठः. ६. 'तावानन्यस्मिन्' इति घ-पाठः.

[कस्य स्मरसीति भणिते को मेऽस्तीति जल्पमानया[1] ।
उद्विग्नरोदनशीलया[2] वयमपि रोदितास्तया ॥]

मानग्रहिलां नायिकां भयं दर्शयन्ती सखी मानभङ्गाय सरोषमाह—

पाअपडिअं अहव्वे किं दाणिँ ण उट्ठवेसि भत्तारम् ।
एअं विअ अवसाणं दूरं पि गअस्स पेम्मस्स[3] ॥ ९० ॥

[पादपतितमभव्ये किमिदानीं नोत्थापयसि भर्तारम् ।
एतदेवावसानं[4] दूरमपि गतस्य[5] प्रेम्णः[6] ॥]

अभव्ये इति सप्रणयरोषं संबोधनम् । अगृहीतानुनया द्वेष्या भविष्यसीति भावः ॥

आत्मनो विपरीतरताभिलाषं सूचयन्ती नायिका कान्तमाह—

तडविणिहिअग्गहत्था वारितरङ्गेहिं घोलिरणिअम्बा ।
सालूरी पडिबिम्बे पुरिसाअन्तिव्व पडिहाइ ॥ ९१ ॥

[तटविनिहिताग्रहस्ता वारितरङ्गैर्घूर्णनशीलनितम्बा ।
शालूरी प्रतिबिम्बे पुरुषायमाणेव प्रतिभाति ॥]

शालूरी भेकी । प्रतिबिम्बे अर्थात्स्वीये ॥

कुसुम्भवाटिकायां कृतसंकेता काचिदात्मनश्चौर्यरतगोपनार्थमाह—

सिक्करिअमणिअमुहवेविआइँ[7] धुअहत्थसिञ्जिअव्वाइं ।
सिक्खन्तु वोडहीओ कुसुम्भ तुम्ह प्पसाएण ॥ ९२ ॥

[सीत्कृतमणितमुखवेपितानि[8] धुतहस्तशिञ्जितव्यानि[9] ।
शिक्षन्तु[10] कुमार्यः[11] कुसुम्भ युष्मत्प्रसादेन[12] ॥]

वोडही कुमारी तरुणी वा । सीत्कृतं सीत्कारः । मणितं रतिकूजितविशेषः । मुखवेपितमधरादिधूननम् । एतानि नखक्षतमुष्टयाघाताधरखण्डनैरपि भवन्ति कण्टकक्षतेन च भवन्ति । तथा च सीत्कारादयो मम कुसुम्भकण्टकक्षताज्जाता न तु सुरतेनेत्याशयः ॥

---

१. 'जल्पन्त्या' इति घ-पाठः. २. 'उद्भटं रोदन्त्या' इति ग-पाठः. ३. 'माणस्स' इति ग-पाठः. ४. 'इदमेव' इति ग-पाठः. ५. 'दूरं गतस्य' इति घ-पाठः. ६. 'मानस्य' इति ग-पाठः. ७. 'मुहपरिवेविआइ' इति ख-ग-पाठः. ८. 'मुखपरिवेपितानि' इति ग-पाठः. ९. 'शिञ्जितानि' इति ग-पाठः. १०. 'श्लिष्यन्तु ग्राम्या' इति ग-पाठः. ११. 'तरुण्यः' इति घ-पाठः. १२. 'युष्माकं' इति ग-पाठः.

काप्यात्मनो जारं प्रत्यनुरागातिशयं श्रावयन्ती नितम्बोपालम्भव्याजेनाह—

जेत्तिअमेत्ता रच्छा णिअम्ब कह तेत्तिओ ण जाओसि ।
जं छिप्पइ गुरुअणलज्जिओ सरन्तो वि सो सुहओ ॥९३॥

[यावत्प्रमाणा रथ्या नितम्ब कथं तावन्न जातोऽसि ।
येन स्पृश्यते गुरुजनलज्जापसृतोऽपि स सुभगः ॥]

तृणलतागृहं संकेतस्थानमिति जारं श्रावयन्ती काप्याह—

मरगअसूईविद्धं व मोत्तिअं पिअइ आअअग्गीओ ।
मोरो पाउसआले तणग्गलग्गं उअअबिन्दुम् ॥ ९४ ॥

[मरकतसूचीविद्धमिव मौक्तिकं पिबत्यायतग्रीवः ।
मयूरः प्रावृट्काले तृणाग्रलग्नमुदकबिन्दुम् ॥]

अत्रमरकतसूच्या मौक्तिकवेधस्यासंभावितस्योपमया दुष्प्रापनायिकाप्राप्तिं नायकस्य दूती सूचयतीति केचित् ॥

अभिसारिकायाः कृष्णपक्षाभिसारोचितं नीलकञ्चुकं श्रावयन्ती दूती नायकमुत्तरलयितुमह—

अज्जाइ णीलकञ्चुअभरिउव्वरिअं विहाइ थणवट्टम् ।
जलभरिअजलहरन्तरदरुग्गअं चन्दबिम्ब व्व ॥ ९५ ॥

[आर्याया नीलकञ्चुकभृतोर्वरितं विभाति स्तनपृष्ठम् ।
जलभृतजलधरान्तरदरोद्गतं चन्द्रबिम्बमिव ॥]

कञ्चुकं भृत्वा महत्वादुर्वरितमित्यर्थः ॥

प्रवासोद्यतस्य पत्युर्गमनाक्षेपाय कापि वसन्तमासस्य पथिकभयहेतुतां दर्शयति—

राअविरुद्धं व कहं पहिओ पहिअस्स साहइ संसङ्कम् ।
जत्तो अम्बाण दलं तत्तो दरणिग्गिअं किं पि ॥ ९६ ॥

१. 'जेण छिविज्जइ गुरुअणलज्जोसरिओ' इति ख-पाठः. २. 'यावन्मात्रा' इति ग-पाठः. ३. 'न तावन्मात्रो' इति ग-पाठः. ४. 'यत्' इति ग-पाठः. ५. 'लज्जयापसरन्' इति ग-पाठः. ६. 'रगीवो' इति क-पाठः. ७. 'ईश्वरसुतायाः' इति ग-पाठः. ८. 'भृतोद्ध्रियमाणं' इति ग-पुस्तके, 'भृतौद्धृतं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ९. 'जलधरान्तरादीषदुत्तरं' इति ग-पाठः. १०. 'ससङ्को' इति क-पाठः.

[राजविरुद्धामपि कथां पथिकः पथिकस्य [1]कथयति सशङ्कम् ।
[2]यंत आम्राणां दलं [3]तंत ईषन्निर्गतं किमपि ॥]

दलं पत्रम् । किमप्यङ्कुरः ॥

स्वप्ने प्रियदर्शनेन विरहदुःखं कथं न विनोदयसीति प्रतिवेशिनीभिरुक्ता काचिदात्मनोऽनुरागातिशयं ख्यापयितुमाह—

धण्णा ता महिलाओ [4]जा दइअं सिविणए वि [5]पेच्छन्ति ।
णिद्द व्विअ तेण विणा ण एइ का पेच्छए सिविणम् ॥ ९७ ॥

[धन्यास्ता महिला या दयितं स्वप्नेऽपि प्रेक्षन्ते ।
निद्रैव तेन विना नैति का प्रेक्षते स्वप्नम् ॥]

अत्र यूयमधन्या, अहं तु धन्येति व्यज्यते ॥

पूर्वं समृद्धस्य कालवशेन गलितविभवस्य कस्यापि मनःसमाधानाय दूत्यन्यापदेशेनाह—

परिरद्धकणअकुण्डल[6]गण्डत्थलमणहरेसु सवणेसु ।
[7]तत्थ वि समअवसेण अ [8]पहिरज्जइ तालवेण्टजुअम् ॥ ९८ ॥

[[9]परिरब्धकनककुण्डल[10]गण्डस्थल[11]मनोहरयोः श्रवणयोः ।
[12]तत्रापि समयवशेन [च] परिध्रियते [13]तालवृन्तयुगम् ॥]

तालवृन्तं तालपत्रताटङ्कम् ॥

कथमेतादृशे ग्रीष्मे मम प्रिय आगमिष्यतीति चिन्तयन्तीं नायिकां सख्याह—

मज्झह्णपत्थिअस्स वि गिम्हे पहिअस्स हरइ संतावम् ।
हिअअट्ठिअजाआमुहमअङ्कजोह्णाजलप्पवहो ॥ ९९ ॥

[मध्याह्नप्रस्थितस्यापि ग्रीष्मे पथिकस्य [14]हरति संतापम् ।
[15]हृदयस्थितजायामुखमृगाङ्कज्योत्स्नाजलप्रवाहः ॥]

---

१. 'शंसति' इति घ-पाठः. २. 'यावन्त्याम्राणां दलानि' इति ग-पाठः. ३. 'तावदीषत्' इति ग-पुस्तके, 'ततो दर' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'जालो' इति ख-पाठः. ५. 'पश्यन्ति' इति ग-घ-पाठः. ६. 'कवोलदोलणमण' इति ग-पाठः. ७. 'अण्णअसमअ' इति क-ख-पाठः. ८. 'परिहिज्जइ' इति ख-ग-पाठः. ९. 'परिबद्ध' इति ग-पाठः. १०. 'कपोलतरल' इति ग-पाठः. ११. 'मनोहरेषु कर्णेषु' इति घ-पाठः. १२. 'तयोरपि समय' इति ग-पुस्तके, 'अन्यत्समयमवसन्नं परिखिद्यते तालवृन्तयुगलम्' इति घ-पुस्तके पाठः. १३. 'तालपत्रयुगम्' इति ग-पाठः. १४. 'हन्ति' इति ग-पाठः. १५. 'हृदयेप्सित' इति ग-पाठः.

प्रावृषमासन्नां मत्वा प्रियां दिदृक्षवोऽगणितग्रीष्ममध्यंदिनदिनेशसंतापाः पथिकाः पन्थानमतिवाहयन्तीत्यर्थः ॥

असमयप्रार्थितया कान्तया क्षिप्तं नायकं दूती सान्त्वयितुमाह—

भण को ण रुस्सइ जणो पत्थिज्जतो अएसकालम्मि।
रतिवांअडा रुअन्तं पिअं वि पुत्तं सवइ माआ ॥ १०० ॥

[भैण को न रुष्यति जनः प्रार्थ्यमानोऽदेशकाले।
रतिव्यापृता रुदन्तं प्रियमपि पुत्रं शैपते माता ॥]

ऍत्थ चउत्थं विरमइ गाहाण सअं सहावरमणिज्जम्।
सोऊण जं ण लग्गइ हिअए महुरत्तणेण अमअं पि ॥

[अत्र चतुर्थं विरमति गाथानां शतं स्वभावरमणीयम्।
श्रुत्वा यन्न लगति हृदये मधुरत्वेनामृतमपि ॥]

पञ्चमं शतकम्।

प्रणामकाङ्क्षिणी मानिनी नायकानुरक्तं स्वहृदयमाह—

डज्झसि डज्झसु कड्ढसि कड्ढसु अह फुडसि हिअअ ता फुँडसु।
तह वि पँरिसेसिओ च्चिअ सोँहु मए गलिअसब्भावो ॥ १ ॥

[दह्यसे दह्यस्व क्वथ्यसे क्वथ्यस्व अथ स्फुटसि हृदय तत्स्फुट।
तथापि पँरिशेषित एव स खलु मया गलितसद्भावः ॥]

परिशेषितः परिच्छन्नः। निर्णीत इत्यर्थः।

यवक्षेत्रं संकेतस्थानमिति जारं श्रावयन्ती काचिदन्येषां भयप्रदर्शनार्थमाह—

दट्ठूण रुन्दतुंण्डग्गणिग्गअं णिअसुअस्स दाढग्गम्।
भोण्डी विणावि कज्जेण गामणिअडे जवे चरइ ॥ २ ॥

[दृष्ट्वा विशालतुंण्डाग्रनिर्गतं निजसुतस्य दंष्ट्राग्रम्।
सूकरी विनापि कार्येण ग्रामनिकटे यवांश्चरति ॥]

---

१. 'वाउला' इति क-पाठः. २. 'वद' इति ग-पाठः. ३. 'अदेशकालयोरपि' इति ग-पाठः. ४. 'शपति' इति ग-घ-पाठः. ५. इयं गाथा ग-पुस्तके नास्ति. ६. 'फुट्ट' ग. ७. 'परिसेसिअव्वो' ग. ८. 'अज मए' ग. ९. 'परिशेषितव्योऽद्य मया' ग. १०. 'तुण्डतुण्डग्ग' ग. ११. 'तुण्डतुण्डाग्र' ग, 'बृहत्तुण्डाग्र' घ. १२. 'कार्ये' ग.

रुन्दं विशालम् । भोण्डी सूकरी । यवक्षेत्रप्रस्थिताया अभिसारिकाया निषेधार्थं दूत्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

अभिसारभीतां कामप्यनुकूलयितुं दूती नायकस्य ग्रामप्रधानतां निग्रहानुग्रहक्षमतां चान्यापदेशेनाह—

हेलाकरग्गअड्ढिअजलरिक्कं साअरं पआसन्तो ।
जअइ अणिग्गअवडवग्गिभरिअगगणो गणाहिवई ॥ ३ ॥

[हेलाकराग्राकृष्टजलरिक्तं सागरं प्रकाशयन् ।
जयत्यनिग्रहवडवाग्निभृतगगनो गणाधिपतिः ॥]

हेलया कराग्रेणाकृष्टं यज्जलं तेन रिक्तम् । जलनिग्रहान्निष्प्रतिबन्धोत्थितेन वडवाग्निना भृतं गगनं येन सः । गणाधिपतिर्विनायको मण्डलनायकश्च ॥

कोऽपि कामिनीजनानुरञ्जनायात्मनः स्त्रीपरतामशोकपल्लवच्छलेनाह—

एएण च्चिअ कङ्केल्लि तुज्झ तं णत्थि जं ण पज्जत्तम् ।
उवमिज्जइ जं तुह पल्लवेण वरकामिणीहत्थो ॥ ४ ॥

[एतेनैव कङ्केल्ले तव तन्नास्ति यन्न पर्याप्तम् ।
उपमीयते यत्तव पल्लवेन वरकामिनीहस्तः ॥]

कङ्केल्लिरशोकः ॥

पूर्वगाथार्थमेव भङ्ग्यन्तरेणाह—

रसिअ विअड्ढ विलासिअ समअण्णअ सच्चअं असोओ सि ।
वरजुअइचलणकमलाहओ वि जं विअससि सएह्णम् ॥ ५ ॥

[रसिक विदग्ध विलासिन्समयज्ञ सत्यमशोकोऽसि ।
वरयुवतिचरणकमलाहतोऽपि यद्विकससि सतृष्णम् ॥]

समय आचारः । नायिकाचरणघातः प्रसाद एव मन्तव्य इति नायकं शिक्षयितुं कुट्टन्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

दौःसाधिकाभिशस्तस्य जारस्य परिहासकौशलं दूती तत्प्रियामानन्दयितुमाह—

बलिणो बाआबन्धे चोज्जं णिउअत्तणं च पअडन्तो ।
सुरसत्थकआणन्दो वामणरूवो हरी जअइ ॥ ६ ॥

[बलेर्वाचाबन्धे आश्चर्यं निपुणत्वं च प्रकटयन् ।
सुरसार्थकृतानन्दो वामनरूपो हरिर्जयति ॥]

---

१. 'कमलाहयेण' ग. २. 'सत्यकं' ग. ३. 'कमलघातेन' ग. ४. 'चित्रं' घ.

बलेर्दैत्यविशेषस्य, पक्षे बलिनो बलवतः । वाचा वचनेन बन्धो नियमनं निरुत्तरीकरणं च । चोद्यमाश्चर्यम् । 'चोद्यं स्यादद्भुते प्रश्ने चोदनार्हे तु वाच्यवत्' इति मेदिनीकोषात् 'चोद्यं' इत्येव मूलपाठः । निपुणत्वमिङ्गितगुप्तिः । सुरसार्थो देवसमूहः शोभनरसवदर्थकं वचनं च । वामनः खर्वाकारो न्यग्भावापन्नश्च । हरिर्विष्णुः परदारापहारी चेति यथायोगं योज्यम् ॥

कापि प्रियचित्तानुरञ्जनार्थं स्त्रीणां मृतेऽपि पत्यावनुरागातिशयं प्रतिपादयितुमाह—

विंज्जाविज्जइ जलणो गहवइधूआइ वित्थअसिहो वि ।
अणुमरणघणालिंङ्गणपिअअमसुहसिज्जिरङ्गीए ॥ ७ ॥

[निर्वाप्यते ज्वलनो गृहपतिदुहित्रा विस्तृतशिखोऽपि ।
अनुमरणघनालिङ्गनप्रियतमसुखस्वेदशीताङ्ग्या ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानियमात्प्रियतमघनालिङ्गनेति योज्यम् ॥

कापि जारचित्तहरणार्थं पूर्वोक्ताभिप्रायिकां गाथामाह—

जारमसाणसमुब्भवभूइसुहप्फंससिज्जिरङ्गीए ।
ण समप्पइ णवकावालिआइ उद्धूलणारम्भो ॥ ८ ॥

[जारश्मशानसमुद्भवभूतिसुखस्पर्शस्वेदशीलाङ्ग्याः ।
न समाप्यते नवकापालिक्या उद्धूलनारम्भः ॥]

नवकापालिक्या गृहीताभिनवकापालिकव्रतायाः ।

तत्तत्कारणसांनिध्यादेकस्मिन्ननेके भावा भवन्तीति निदर्शयन्कोऽपि सहचरमाह—

एक्को पह्नुअइ थणो बीओ पुलएइ णहमुहालिहिओ ।
पुत्तस्स पिअअमस्स अ मज्झणिसण्णाएँ घरणीए ॥ ९ ॥

[एकः प्रस्नौति स्तनो द्वितीयः पुलकितो भवति नखमुखालिखितः ।
पुत्रस्य प्रियतमस्य च मध्यनिषण्णाया गृहिण्याः ॥]

जारं प्रत्यनवसरप्रकटनपरं दूत्या वचनमिदमिति केचित् ।

ग्रामणीपुत्र्यां साभिलाषः कोऽपि प्रहसनमाह—

एत्ताइच्चिअ मोहं जणेइ बालत्तणे वि वट्टन्ती ।
गामणिधूआ विंसकन्दलिव्व वड्ढीआँ काहिइ अणत्थम् ॥ १० ॥

१. 'विज्ञा विज्जइ' ख. २. 'लिङ्गित' ग. ३. 'विज्ञा निर्वाप्यते' ख, 'विध्माप्यते' ग, 'विनिर्वाप्यते' घ. ४. 'लिङ्गितप्रियतमसुखस्विद्यदङ्ग्याः'. ५. 'णवकावालिणीए' ख. ६. 'पुलकति' घ. ७. 'विसलअव्व' ग.

[एतावत्येव मोहं जनयति बालत्वेऽपि वर्तमाना ।
ग्रामणीर्दुहिता विषकन्दलीव वर्धिता करिष्यत्यनर्थम् ॥]

त्रैविक्रमबन्धरतेन प्रियेण प्रीणिता कापि हरेरूर्ध्वगतं चरणं नमस्यन्त्यन्यापदेशेनाह—

अपहुप्पन्तं महिमण्डलम्मि णहसंठिअं चिरं हरिणो ।
तारापुप्फप्पअरञ्चिअं व तइअं पअं णमह ॥ ११ ॥

[अप्रभवन्महीमण्डले नभःसंस्थितं चिरं हरेः ।
तारापुष्पप्रकाराञ्चितमिव तृतीयं पदं नमत ॥]

अप्रभवदसंमात् । हरिर्विष्णुः परदारापहारी च । तारानेत्रमध्यं नक्षत्रं च ।

कस्यांचिदुत्कण्ठितायां सखीभिरुक्तं सुप्यतामिति सा तास्वाह—

सुप्पउ तइओ वि गओ जामोत्ति सहीओ कीस मं भणह ।
सेहालिआणँ गन्धो ण देइ सोत्तुं सुअह तुम्हे ॥ १२ ॥

[सुप्यतां तृतीयोऽपि गतो याम इति सख्यः किमिति मां भणथ ।
शेफालिकानां गन्धो न ददाति स्वप्तुं स्वपित यूयम् ॥]

सखि, कथं तमेवं निरनुक्रोशं स्मरसीति सख्योक्ता विरहोत्कण्ठिता तामाह—

कहँ सो ण संभरिज्जइ जो मे तह संठिआइँ अङ्गाइँ ।
णिव्वत्तिए वि सुरए णिज्झाअइ सुरअरसिओव्व ॥ १३ ॥

[कथं स न संस्मर्यते यो मम तथासंस्थितान्यङ्गानि ।
निर्वर्तितेऽपि सुरते निध्यायति सुरतरसिक इव ॥]

निध्यायति पश्यति । तथासंस्थितानीत्यनेनानुभवैकगोचरोऽवस्थाविशेषो द्योत्यते ।

कापि जारं प्रति संकेतस्थानमाह—

सुक्खन्तबहलकद्दमघम्मविसूरन्तकमठपाठीणम् ।
दिट्ठं अदिट्ठउव्वं कालेण तलं तडाअस्स ॥ १४ ॥

[शुष्यद्बहलकर्दमघर्मखिद्यमानकमठपाठीनम् ।
दृष्टमदृष्टपूर्वं कालेन तलं तडागस्य ॥]

कर्दमान्तस्य पाठीनान्तेन कर्मधारयः । तथा च पूर्वं जलाद्याहरणार्थं लोकानां ग-

---

१. 'सुता विषलतेव वर्धमाना' ग. २. 'सुप्यतु' ग. ३. 'विशीर्यमाण' ग, 'स्विद्यत्' घ.

तागतमासीत्, इदानीं तदभावान्निष्प्रत्यूहं विहरेति भावः । कस्यचिदतिसंपन्नस्य पश्चाद्दरिद्रीभूतस्यान्यापदेशेन काचिदनुशोचनमनया गाथया करोतीति केचित् । अहं संकेतस्थानं गता न त्वमिति जारं प्रत्युक्तिर्वा । अतृप्ता सुरतश्रान्तं कान्तमुत्साहयितुमन्यमनस्कं करोतीति वा ॥

कापि सपरिहासं कामपि चाटुवादमाह—

चोरिअरअसद्धालुइ मा पुत्ति भमसु अन्धआरम्मि ।
अहिअअरं लक्खिज्जसि तमभरिए दीवसीहव्व ॥ १५ ॥
[चौर्यरतश्रद्धाशीले[1] मा पुत्रि भ्रमान्धकारे ।
अधिकतरं लक्ष्यसे तमोभृते दीपशिखेव ॥]

तमोभृते प्रदेश इति शेषः ॥

संकेतस्थानदाहादसती दुःखितेति कापि सहचरमाह—

वाहित्ता पडिवअणं ण देइ रूसेइ एक्कमेक्कस्स ।
असई कज्जेण विणा पइप्पमाणे णईकच्छे ॥ १६ ॥
[व्याहृता प्रतिवचनं न ददाति रुष्यत्येकैकस्य ।
असती कार्येण विना प्रदीप्यमाने नदीकच्छे ॥]

प्रदीप्यमाने दह्यमाने ॥

त्वं कुलटासीति प्रतिवेशिन्योक्ता कापि तामाह—

आम असइ ह्म ओसर पइव्वए ण तुह मइलिअं गोत्तम् ।
किं उण जणस्स जाअव्व चन्दिलं[2] ता ण कामेमो ॥ १७ ॥
[आम असत्यो वयमपसर पतिव्रते न तव मलिनितं गोत्रम् ।
किं पुनर्जनस्य जायेव नापितं तावन्न कामयामहे ॥]

आमेति सेर्ष्यानुमतौ । पतिव्रते इति सोपालम्भं संबोधनम् । जनस्य जायेव त्वमिवेत्यर्थः । अयं भावः—भवामो वयं कुलटाः, किं तूत्तमनायकासक्ताः । त्वं तु त्वमिव नापितासक्तेति । अथ च तव गोत्रं नाम न मलिनितम्, किं तु कुलमेवेति ॥

काप्यात्मनोऽनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

णिद्दं लहन्ति कहिअं सुणन्ति खलिअक्खरं ण जम्पन्ति ।
जाहिँ ण दिट्ठो सि तुमं ताओ च्चिअ सुहअ सुहिआओ ॥ १८ ॥

१. 'चौरिकरतश्रद्धालुके' ग-घ. २. 'चन्दिलशब्दो नापिते देशी' इति कुलबालदेवः.

[निद्रां लभन्ते कथितं शृण्वन्ति स्खलिताक्षरं न जल्पन्ति ।
याभिर्न दृष्टोऽसि त्वं ता एव सुभग सुखिताः ॥]

वयं तु त्वद्दर्शनाज्जातमन्मथास्तद्विपरीता जाता इति भावः ॥

दूती कस्याश्चिदनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

बालअ तुमाइ दिण्णं कण्णे काऊण बोरसंघाडिम् ।
[१]लज्जालुइणी वि वहू घरं गआ गामरच्छाए ॥ १९ ॥

[बालक त्वया दत्तां कर्णे कृत्वा [२]बदरसंघाटीम् ।
[३]लज्जालुरपि वधूर्गृहं गता ग्रामरथ्यया ॥]

बोरं बदरीफलम् । संघाटी युगलम् । एतेनासारं यत्किंचिदपि त्वया दत्तं धारयतीति रागातिशयः सूचितः ॥

काचित्प्रियं प्रति गलितमाना पश्चात्तापेन सखीष्विदमाह—

अह सो विलक्खहिअओ मए अ हव्वाएँ अगहिआणुणओ ।
परवज्जणच्चरीहिं तुह्मेहिँ उवेक्खिओ णे[४]न्तो ॥ २० ॥

[अथ स विलक्षहृदयो मया अभव्यया अगृहीतानुनयः ।
परवाद्यनर्तनशीलाभिर्युष्माभिरु[५]पेक्षितो निर्यन् ॥]

अथेति प्रश्ने । परस्य वाद्यपूर्वकं यन्नर्तनं कुमार्गप्रापणं मानशिक्षणरूपं तच्छीलाभिः । निर्यन् गच्छन् । युष्माभिर्मानशिक्षावसरे मया यदाशङ्कितं तदिदं जातमित्याशयः ॥

विदग्धं कान्तमलभमाना कापि सखीमाह—

दीसन्तो णअणसुहो णिव्वुइजणओ करेहिँ वि छिवन्तो ।
अब्भत्थिओ ण लब्भइ चन्दो व्व पिओ कलाणिलओ ॥ २१ ॥

[दृश्यमानो नयनसुखो निर्वृतिजननः [६]कराभ्यां [अपि] स्पृशन् ।
अभ्यर्थितो न लभ्यते चन्द्र इव प्रियः कलानिलयः ॥]

निर्वृतिजननः संतापहरः । कराभ्यां हस्ताभ्याम्, पक्षे करैः किरणैः । अभ्यर्थितः प्रार्थितः, पक्षे अभ्रस्थितो गगनस्थितः । कलाश्चतुःषष्टिः, पक्षे षोडश ॥

कापि कालस्य सर्वंकषतां प्रतिपादयन्ती जारं प्रति संकेतस्थानभङ्गं श्रावयति—

जे णीलभमरभरभग्गगोछआ आसि णइअडुच्छङ्गे ।
कालेण वञ्जुला पिँअवअस्स ते थण्णुआ जाआ ॥ २२ ॥

---

१. 'लज्जालुइव्वि अजा' ग. २. 'बदरसंहतिम्' ग, 'बदरसंघातम्' घ. ३. 'लज्जालुरपीश्वरसुता' ग. ४. 'जेन्तो' ग. ५. 'अप्युपेक्षितो गच्छन्' ग. ६. 'करैरपि' ग, 'करैः' घ. ७. 'पिअवतंस' ग.

[ये नीलभ्रमरभरभग्नगुच्छका आसन्नदीतटोत्सङ्गे ।
कालेन [1]वञ्जुलाः प्रियवयस्य ते स्थाणवो जाताः ॥]

स्थाणवो निष्पत्रशाखाः ॥

अस्थिरस्नेहं नायकं प्रत्युद्विग्ना कापि दृढप्रेमप्रियप्राप्तीच्छाप्रकाशनच्छलेन कस्याप्य-वकाशदानायाह—

खणभङ्गुरेण पेम्मेण माउआ दुम्मिअह्म एत्ताहे ।
सिविणअणिहिलम्भेण व दिट्ठपणट्ठेण लोअम्मि ॥ २३ ॥

[क्षणभङ्गुरेण प्रेम्णा मातृष्वसः दूनाः स्म इदानीम् ।
स्वप्ननिधिलम्भेनेव दृष्टप्रनष्टेन लोके ॥]

काप्यचिरेणैव खण्डितप्रणया धूर्तं कान्तमन्यापदेशेनाह—

चावो सहावसरलं विच्छिवइ सरं गुणम्मि वि पडन्तम् ।
वङ्कस्स उज्जुअस्स अ संबन्धो किं चिरं होइ ॥ २४ ॥

[चापः स्वभावसरलं [2]विक्षिपति शरं [3]गुणोऽपि पतन्तम् ।
वक्रस्य ऋजुकस्य च संबन्धः किं चिरं भवति ॥']

सरलो ऋजुः, पक्षे निष्कपटः । गुणो मौर्वी, पक्षे सौन्दर्यादिः । 'अथ स्त्रियौ । धनुश्चापौ' इत्यमरः ॥

कस्याश्चित्स्तनयोस्त्रिवल्याश्चोत्कर्षे साभिलाषः कोऽपि वर्णयति—

पढमं वामणविहिणा पच्छा हु कओ विअम्भमाणेण ।
थणजुअलेण ईमीए महुमहणेण व्व वलिबन्धो ॥ २५ ॥

[प्रथमं वामनविधिना पश्चात्खलु कृतो विजृम्भमाणेन ।
स्तनयुगलेनै[5]तस्या मधुमथनेनेव वलिबन्धः ॥]

वामनः स्वल्पः खर्वश्च । वलिस्त्रिवलिरसुरभेदश्च । वबयोरभेदः ॥

दुष्टो न केवलं साधूनामपकारमात्रं करोति, किं त्वसाधूनामुपकारमपीति कोऽप्य-न्यापदेशेनाह—

मालइकुसुमाइँ [6]कुलुश्चिऊण मा जाणि णिव्वुओ सिसिरो ।
काअव्वा अज्जवि णिग्गुणाणँ कुन्दाणँ वि समद्धी ॥ २६ ॥

---

१. 'अशोकाः प्रियावतंस स्थानकाः' ग. २. 'विघटयति' घ. ३. 'गुणे वर्तमानम्' ग, 'गुणे निपतन्तम्' घ. ४. 'मज्झस्स' ग. ५. 'मध्यस्य' ग, 'तस्याः' घ. ६. 'संधुक्किऊण' क, 'रुण्णंकओण' ग.

[मालतीकुसुमानि दग्ध्वा मा जानीहि निर्वृतः शिशिरः ।
कर्तव्याद्यापि निर्गुणानां कुन्दानामपि समृद्धिः ॥]

न केवलं तव दौर्भाग्यं मया कृतं किं तु त्वत्सपत्नीनां सौभाग्यमपि विधेयमित्यप्रियवादिनीं नायिकां प्रति कुपितनायकेन ध्वनितमिति केचित् ॥

कोऽपि गलितयौवनायाः स्तनावालोक्य सपरिहासमाह—

तुङ्गाणँ विसेसनिरन्तराणँ [सरस]वणलद्धसोहाणम् ।
कअकज्जाणँ भडाणँ व थणाणँ पडणं वि रमणिज्जम् ॥ २७ ॥

[तुङ्गयोर्विशेषनिरन्तरयोः [सरस]व्रणलब्धशोभयोः ।
कृतकार्ययोर्भटयोरिव स्तनयोः पतनमपि रमणीयम् ॥]

तुङ्गयोरुन्नतयोर्मानोन्नतयोश्च । विशेषेण निरन्तरयोरन्योन्यलग्नयोः परस्परनिर्विशेषयोश्च ॥

कोऽपि कस्याश्चिद्युवत्याः पीनोन्नतौ स्तनौ वर्णयति—

परिमलणसुहा गुरुआ अलद्धविवरा सलक्खणाहरणा ।
थणआ कव्वालाव व्व कस्स हिअए ण लग्गन्ति ॥ २८ ॥

[परिमलनसुखा गुरुका अलब्धविवराः सलक्षणाभरणाः ।
स्तनकाः काव्यालापा इव कस्य हृदये न लगन्ति ॥

परिमलनं मर्दनं विचारश्च । गुरुकाः पीनोन्नता अर्थगुरुकाश्च । विवरं रन्ध्रं दूषणं च । लक्षणं श्रीफलादिसादृश्यं पाणिन्यादिप्रोक्तं च । आभरणं हारादिकमुपमानुप्रासादिकं च ॥

उपादेयोऽर्थः कदाचिदनुपादेयतां यातीति निदर्शयन्कश्चिदाह—

खिप्पइ हारो थणमण्डलाहि तरुणीअ रमणपरिरम्भे ।
अच्चिअगुणा वि गुणिनो लहन्ति लहुअत्तणं काले ॥ २९ ॥

[क्षिप्यते हारः स्तनमण्डलात्तरुणीभी रमणपरिरम्भे ।
अर्चितगुणा अपि गुणिनो लभन्ते लघुत्वं कालेन ॥

गुणः सूत्रं शौर्यादिकं च ॥

काप्यात्मनः कस्मिन्नप्यनुरागं मन्मथव्यथां च सूचयन्ती सखीमाह—

अण्णो को वि सुहावो मम्महसिहिणो हला हआसस्स ।
विज्झाइ णीरसाणं हिअए सरसाणँ झत्ति पज्जलइ ॥ ३० ॥

१. 'म्लानानि कृत्वा' ग, 'खलूच्चीयमानानीव निर्वृतः' घ. २. घ-पुस्तके तुङ्गानामित्यादि बहुवचनं सर्वत्र वर्तते. ३. 'छिप्पइ' क.

[अन्यः कोऽपि स्वभावो मन्मथशिखिनो हला हताशस्य[1]।
निर्वाति नीरसानां हृदये सरसानां झटिति प्रज्वलति ॥]

हला सखि। हताशस्येत्युद्वेगसूचकम्। नीरसानामनुरागरहितानां शुष्काणां च। सरसानां रागिणामार्द्राणां च॥

कापि मानग्रहिलायाः सख्याः खण्डितं सौभाग्यं मातुलान्यां सविस्मयमाह—

तह तस्स माणपरिवड्ढिअस्स चिरपणअबद्धमूलस्स।
मामि पडन्तस्स सुओ सद्दो वि ण पेम्मरुक्खस्स॥ ३१॥

[तथा तस्य मानपरिवर्धितस्य चिरप्रणयबद्धमूलस्य।
मातुलानि पततः श्रुतः शब्दोऽपि न प्रेमवृक्षस्य॥]

मानेन सत्कारेण परिवर्धितस्य। चिरप्रणय एव बद्धं मूलमस्य। बहुवल्लभस्य त्यक्तानुरागस्य कस्यचित्पत्न्या इयमुक्तिरिति केचित्॥

अगृहीतानुनयां सखीं सखी सखेदमाह—

पाअपडिओ ण गणिओ पिअं भणन्तो वि अप्पिअं भणिओ।
वच्चन्तो वि ण रुद्धो भण कस्स कए कओ माणो॥ ३२॥

[पादपतितो न गणितः प्रियं भणन्नप्यप्रियं भणितः।
व्रजन्नपि न रुद्धो भण कस्य कृते कृतो मानः॥]

पादपतितोऽर्थात्प्रिय इति द्रष्टव्यम्। पादपतनादिकमेव मानस्य फलम्। तत्तु जातमेवेत्यर्थः। अथवा कस्य कृते कं युवानं रमयितुं त्वया मानच्छलेनावसरः संपादित इति सोपालम्भं सख्या वचनम्॥

सपत्न्या दुश्चरितं सूचयन्ती कापि सोपालम्भमाह—

पुसइ खणं धुवइ खणं पप्फोडइ तक्खणं अआणन्ती।
मुद्धवहू थणवट्टे दिण्णं दइएण णेहरवअम्[2]॥ ३३॥

[प्रोञ्छति क्षणं क्षालयति क्षणं प्रस्फोटयति तत्क्षणमजानती[3]।
मुग्धवधूः स्तनपदे[4] दत्तं दयितेन नखरपदम्॥]

नायकमुत्कण्ठयितुं नायिकाया नवयौवनं प्रतिपादयन्त्या दूत्या इयमुक्तिर्वा॥

आत्मनः संकेतस्थानगमनं जारं प्रति श्रावयन्ती कापि शरद्वर्णनमाह—

वासारत्ते[5] उण्णअपओहरे जोव्वणे व्व वोलीणे।
पढमेक्ककासकुसुमं दीसइ पलिअं व धरणीए॥ ३४॥

---

१. 'क्लेशजनकस्य' ग. २. 'णक्खवअम्' क. ३. 'क्षणमजानन्ती' ख. ४. 'पट्टे' ग. ५. 'वरिसारत्ते' क.

[वर्षाकाले उन्नतपयोधरे यौवन इव व्यतिक्रान्ते ।
प्रथमैककाशकुसुमं दृश्यते पलितमिव धरण्याः ॥

उन्नतपयोधरे उन्नतमेघे। पक्षे उन्नतस्तने । अहं तां काशभूमिं गता त्वं तु नागत इति भावः । यद्वा न केवलं मामेव वार्धकं ग्रसते पश्य धरण्या अपीमामवस्थामिति हसन्तं विटं प्रति जरद्वेश्यायाः कस्याश्चिदियमुक्तिः ॥

प्रवासोद्यतस्य प्रियस्य गमननिषेधाय कापि वर्षाकालं वर्णयति—

कत्थ गअं रइबिम्बं कत्थ पणट्ठाओ चन्दताराओ ।
गअणे वलाअपंन्ति कालो होरं व कड्ढइ ॥ ३५ ॥

[कुत्र गतं रविबिम्बं कुत्र प्रणष्टाश्चन्द्रतारकाः ।
गगने बलाकापङ्क्तिं कालो होरामिवाकर्षति ॥]

होरा कठिनीरेखा । अन्योऽपि ज्योतिर्वित्सूर्यादिग्रहप्रतिसाधनार्थं कठिनीरेखामाकर्षतीत्यर्थः । 'होरा लग्नेऽपि राश्यर्धे रेखाशास्त्रभिदोरपि' इति मेदिनी ॥

सशङ्कं जारं निःशङ्कं कर्तुं काचिदाह—

अविरलपडन्तणवजलधारारज्जुघडिअं पअत्तेण ।
अपहुत्तो उक्खेत्तुं रसइ व मेहो महिं उअह ॥ ३६ ॥

[अविरलपतन्नवजलधारारज्जुघटितां प्रयत्नेन ।
अप्रभवन्नुत्क्षेप्तुं रसतीव मेघो महीं पश्यत ॥]

अविरलं पतन्त्यो नवजलधारा एव रज्जवस्ताभिर्घटितां बद्धां महीमुत्क्षेप्तुमप्रभवन्नशक्नुवन्मेघो रसतीव शब्दायत इव । अतिवृष्टौ जलप्रचाराभावान्निःशङ्कं रमस्वेति भावः ॥

कापि कान्तानयनाय सखीं त्वरयितुं हृदयोपालम्भव्याजेनात्मपीडां श्रावयति—

ओ हिअअ ओहिदिअहं तइआ पडिवज्जिऊण दइअस्स ।
अत्थेक्काउल वीसम्भघाइ किं तइ समारद्धम् ॥ ३७ ॥

[हे[2] हृदय अवधिदिवसं तदा प्रतिपद्य दयितस्य ।
अकस्मादाकुल विस्रम्भघातिन् किं त्वया समारब्धम् ॥]

ओ इति दुःखसूचनपूर्वकं संबोधने । प्रतिपद्याङ्गीकृत्य ॥

रतप्रवृत्तजारभग्नवलयायाः सपत्न्याश्चारित्रखण्डनं प्रकाशयन्ती काचिदाह—

जो वि ण आणइ तस्स वि कहेइ भग्गाइँ तेण वलआइँ ।
अइउज्जुआ वराई अह व पिओ से हआसाए ॥ ३८ ॥

---

१. 'वत्तिं' ख-ग. २. 'ओ हिअअ' ग.

[योऽपि न जानाति तस्यापि कथयति भग्नानि तेन वलयानि ।
अतिऋजुका वराकी अथवा प्रियस्तस्या हताशायाः ॥]

वलयानीत्यनन्तरं इतीति शेषः । अतिऋजुका अप्रकाशनीयार्थप्रकाशनात् । अथवेति मया भग्नानि वलयानीति जारोऽपि वदतीति भावः ॥

कोऽपि कस्याश्चिल्लावण्यं वर्णयन्नात्मनश्चुम्बनाभिलाषं प्रकाशयति—

सामाइ गरुअजोव्वणविसेसभरिए कवोलमूलम्मि ।
पिज्जइ अहोमुहेण व कण्णवअंसेण लावण्णम् ॥ ३९ ॥

[श्यामाया गुरुकयौवनविशेषभृते कपोलमूले ।
पीयतेऽधोमुखेनेव कर्णावतंसेन लावण्यम् ॥

श्यामाया उत्तमनायिकायाः । यौवनविशेषेण भृते मांसलिते ॥

अत्यासक्त्या बाह्यमसंवेदयन्त्याः कस्याश्चिद्वृत्तं कापि सखीशिक्षार्थमाह—

सेडल्लिअसव्वङ्गी गोत्तग्गहणेण तस्स सुहअस्स ।
दूइं पट्ठाएन्ती तस्सेअ घरङ्गणं पत्ता ॥ ४० ॥

[स्वेदार्द्रीकृतसर्वाङ्गी[1] गोत्रग्रहणेन तस्य सुभगस्य ।
दूतीं प्रस्थापयन्ती (संदिशन्ती वा) तस्यैव गृहाङ्गणं प्राप्ता ॥]

कापि कुसुमशरनमस्कारच्छलेनात्मनो दुःसहां विरहवेदनां प्रकाशयन्ती कान्तानयनाय सखीजनं त्वरयितुमाह—

जेम्मन्तरे[2] वि चलणं जीएण खु[3] मअण तुज्झ अच्चिस्सम् ।
जइ तं पि तेण बाणेण विज्झसे जेण हँ विज्झा ॥ ४१ ॥

[जन्मान्तरेऽपि[4] चरणौ[5] जीवेन खलु मदन तवार्चयिष्यामि ।
यदि तमपि तेन बाणेन विध्यसि[6] येनाहं विद्धा ॥]

तमपि कान्तमपि ॥

कंचिदतिबालायां रतोन्मुखमिङ्गितेनाकलय्य प्रतिषेद्धुमुत्फुल्लकरणविशेषं शिक्षयितुं वा विदग्धवनिता काचिदन्यापदेशेनाह—

णिअवक्खारोविअदेहभारणिउणं रसं लिहन्तेण ।
विअसाविऊण पिज्जइ मालइकलिआ महुअरेण ॥ ४२ ॥

---

१. 'स्वेदार्द्रित' ग. २. 'जम्मन्तरे तुह चलणकमलं जीवेण मअण' ग. ३. 'खु' ख-पुस्तके नास्ति. ४. 'जन्मान्तरे तव चरणकमलं जीवेन मदन' ग. ५. 'चरणं' घ. ६. 'विध्यसे' ग.

[निजपक्षारोपितदेहभारनिपुणं रसं लभमानेन ।
विकास्य पीयते मालतीकलिका मधुकरेण ॥]

यद्वा त्वामपीडयन्नेवासौ रमयिष्यतीति नववधूमाश्वासयितुं नायकस्य नववधूसंभोग-कौशलमन्यापदेशेन प्रतिपादयन्त्या दूत्या इयमुक्तिः ॥

विरविरहिणीं युवतीं सखी समाश्वासयितुमाह—

कुरुणाहो व्विअ पहिओ दूमिज्जइ माहवस्स मिलिएण ।
भीमेण जहिच्छिआए दाहिणवाएण छिप्पन्तो ॥ ४३ ॥

[कुरुनाथ इव पथिको दूयते माधवस्य मिलितेन ।
भीमेन यथेच्छया दक्षिणवातेन स्पृश्यमानः ॥]

कुरुनाथो दुर्योधनः । माधवस्य कृष्णस्य वैशाखस्य च । भीमेन भीमसेनेन भयानकेन च । दक्षिणवातेन मलयानिलेन, पक्षे दक्षिणपादेन । वसन्तवातभयादचिरादेवागमिष्यति ते प्रिय इति भावः । यद्वा आसन्ने वसन्ते कान्तस्य प्रवासनिषेधार्थं नायिकाया इयमुक्तिः ॥

अज्ञातयौवनया जायया सह रममाणं कापि सानुरागपरिहासमन्यापदेशेनाह—

जाव ण कोसविकासं पावइ ईसीस मालईकलिआ ।
मअरन्दपाणलोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि ॥ ४४ ॥

[यावन्न कोषविकासं प्राप्नोतीषन्मालतीकलिका ।
मकरन्दपानलोभयुक्त भ्रमर तावदेव मर्दयसि ॥]

कोषः कुड्मलः, पक्षे कुड्मलाकारं वराङ्गम् । मकरन्दः पुष्परसः, पक्षे रतिसुखम् । अयमाशयः—दुर्विदग्धः खल्वसि यस्त्वमस्मादृिधं युवतिजनं विहायास्थाने क्लिश्यसीति । यद्वा—अस्यामेव दशायां स्त्रियः सुखावहा भवन्ति तस्मान्मर्दयन्मां भेष्यसीति सखीवचनमेतत् ॥

कापि मन्दस्नेहं जारमनुकूलयितुं दुष्करस्नेहचर्चामाह—

अकअण्णुअ तुज्झ कए पाउसराईसु जं मए खुण्णम् ।
उप्पेक्खामि अलज्जिर अज्ज वि तं गामचिक्खिल्लम् ॥ ४५ ॥

[अकृतज्ञ तव कृते प्रावृड्रात्रिषु यो मया क्षुण्णः ।
उत्पश्याम्यलज्जाशील अद्यापि तं ग्रामपङ्कम् ॥]

---

१. 'लिहता' ग-घ. २. 'दुम्मिज्जइ' ग. ३. 'दुर्मनस्कः क्रियते' ग. ४. 'यदृच्छया' ग-घ. ५. 'दक्षिणपवनेन' ग. ६. 'स्पृशन्' ग. ७. 'मनागपि' ग. ८. 'लोभिष्ठ' ग 'लुब्ध' घ. ९. 'उत्प्रेक्षे' ग-घ.

उप्पेक्खामीत्यस्योत्प्रेक्षे स्मरामीति वार्थः । त्वन्निमित्तं मया बहुतरं दुःखमनुभूतं किमिति मां प्रत्युदासीनोऽसीति भावः ॥

विपरीतरते मुग्धवधूप्ररोचनार्थं नागरिकः कस्याश्चित्पुरुषायितं वर्णयति—

रेहइ गलन्तकेसक्खलन्तकुण्डलललन्तहारलआ ।
अद्धुप्पइआ विज्जाहरि व्व पुरुसाइरी बाला ॥ ४६ ॥

[राजते गलत्केशस्खलत्कुण्डलललद्धारलता ।
अर्धोत्पतिता विद्याधरीव पुरुषायिता[1] बाला ॥]

'उद्धुप्पइआ' इति पाठे ऊर्ध्वोत्पतितेत्यर्थः ॥

आत्मारामं निरतिशयानन्दनिधिमपि भक्तानुग्रहाय गृहीतलीलाविग्रहं लम्भितजारभावं श्रीकृष्णं सौभाग्यगर्विता बल्लवी काचिदाह—

जइ भमसि भमसु एमेअ कह्न सोहग्गगव्विरो गोट्ठे ।
महिलाणं दोसगुणे वि[2]चारअइउं जइ खमो सि ॥ ४७ ॥

[यदि भ्रमसि भ्रम एव[3]मेव कृष्ण सौभाग्यगर्वितो गोष्ठे ।
महिलानां दो[4]षगुणौ विचारयितुं यदि क्षमोऽसि ॥]

मत्सदृशी वल्लभा दुर्लभा त्वयेति भावः ॥

मानिन्याः सखी तत्कान्तमनुनयपराङ्मुखमन्यापदेशेनाह—

संझासमए जलपूरिअञ्जलिं विहडिएक्कवामअरम् ।
गोरीअ कोसपाणुज्जअं व पमहादिवं णमह ॥ ४८ ॥

[संध्यासमये जलपूरिताञ्जलिं विघटितैकवामकरम् ।
गौर्यै कोषपानोद्यतमिव प्रमथाधिपं नमत ॥]

विघटितोऽर्थाद्गौर्या एको वामः करो यस्य । जातपत्न्यन्तरशङ्काया गौर्याः प्रत्यायि कोषपानाख्यं दिव्यं शंभुरपि करोतीति त्वयापीयमवश्यमनुनेयेति भावः ॥

कापि सौभाग्यस्योपादेयतां प्रतिपादयन्ती सखीमाह—

गामणिणो सव्वासु वि पिआसु अणुमरणगहिअवेसासु ।
मम्मच्छेएसु वि वल्लहाइ उवरी वलइ दिट्ठी ॥ ४९ ॥

[ग्रा[5]मण्याः सर्वास्वपि प्रियास्वनुमरणगृहीतवेषासु ।
मर्मच्छेदेष्वपि वल्लभाया उपरि वलते दृष्टिः ॥]

---

१. 'पुरुषायितशीला' घ. २. 'विचारखमो अज्ज वि ण होसि' ग. 'विचारिउं' ख. ३. 'इत्थमेव' ग. ४. 'दोषगुणविचारक्षमोऽद्यापि न भवसि' ग, 'दोषगुणौ विचारयितुमद्यापि न क्षमोऽसि' घ. ५. 'ग्राममुख्यस्य' ग.

यद्वायं मरणदशामापन्नोऽपि सुभगामेव पश्यति युष्मास्वद्यापि विरक्तः तस्मादनुमरणान्निवर्तध्वं कुरुध्वं च जारमित्यभिप्रायेण कुट्टन्या इयमुक्तिरिति ध्येयम् ॥

कथमेवं प्रियवादिनमपि कान्तमवधीरयसीति वदन्तीं मातुलानीं काचिदाह—

[१]मामि सरसक्खराणँ वि अत्थि विसेसो पअम्पिअव्वाणम् ।
णेहमइआणँ अण्णो अण्णो उवरोहमइआणम् ॥ ५० ॥

[[२]मातुलानि सदृशाक्षराणामप्यस्ति विशेषः प्रजल्पितव्यानाम् ।
स्नेहमयानामन्योऽन्य उपरोधमयानाम् ॥]

प्रजल्पितव्यानां वचनानाम् । स्नेहं विनापि शठः परान्वञ्चयितुं मधुरं भाषते । तथाप्यनुभवसाक्षिकः स्वरविशेष एव भेदक इति भावः । 'मामि' इति स्थाने 'सुहअ' इति क्वचित्पाठः, 'सुभग' इत्यर्थः । तत्र कथं मामवधीरयसीति वदन्तं नायकं प्रति नायिकाया इयमुक्तिर्योज्या ॥

अन्यासक्तं दाक्षिण्यात्प्रियवादिनं नायकं कापि सरोषमाह—

हिअआहिन्तो पसरन्ति जाइँ अण्णाइँ ताइँ वअणाइं ।
ओसरसु किं इमेहिं अहरुत्तरमेत्तभणिएहिं ॥ ५१ ॥

[[३]हृदयेभ्यः प्रसरन्ति यान्यन्यानि तानि वचनानि ।
अपसर किमेभिरधरोत्तरमात्रभणितैः ॥]

अधरेति मुखमात्रप्रवृत्तैर्न तु हृदयप्रवृत्तैरित्यर्थः ।

गोत्रस्खलितं कान्तं धीरा नायिका सवैदग्ध्यमाह—

कहँ सा सोहग्गगुणं मए समं वहइ णिग्घिण तुमम्मि ।
जीअ हरिज्जइ गोत्तं[४] हरिऊण अ दिज्जए मज्झ ॥ ५२ ॥

[कथं सा सौभाग्यगुणं मया समं वहति निर्घृण त्वयि ।
यस्य ह्रियते नाम हृत्वा च दीयते मह्यम् ॥]

विरहजनितमात्मनः कार्श्यमजानती कापि प्रोषितभर्तृका सखीमाह—

सहि साहसु सब्भावेण पुच्छिमो किं असेसमहिलाणम् ।
वड्ढन्ति करठिआ च्चिअ वलआ दइए प[५]उत्थम्मि ॥ ५३ ॥

[सखि कथय सद्भावेन पृच्छामः किमशेषमहिलानाम् ।
वर्धन्ते [६]करस्थिता एव वलया दयिते प्रोषिते ॥]

'वलयोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः ॥

---

१. 'सुहअ' ख-ग. २. 'सुभग' ग-घ. ३. 'हृदयस्थानि' ग. ४. 'णामं' ख-ग.
५. 'पउत्थे' क. ६. 'करस्थाः' ग.

दुर्गतं रोगिणं वा पतिं त्यक्तुमिच्छन्तीं परपुरुषाभिमुखीं निषेद्धुं काचिदन्यापदेशेनाह—

भमइ पलित्तइ जूरइ उक्खिविउं से करं पसारेइ ।
करिणो पङ्कक्खुत्तस्स णेहणि[1]अलाइआ करिणी ॥ ५४ ॥

[भ्रमति [2]परितः [3]खिद्यते उत्क्षेप्तुं [4]तस्य करं प्रसारयति ।
करिणः [5]पङ्कनिमग्नस्य स्ने[6]हनिगडिता करिणी ॥]

कापि सख्याः शिक्षार्थं पार्वत्या लज्जायामपि स्नेहाभिव्यक्तिवैदग्ध्यं वर्णयति—

रइकेलिहिअणिअंसणकरकिसलअरुद्धणअणजुअलस्स ।
रुद्दस्स तइअणअणं पव्वइपरिउम्बिअं जअइ ॥ ५५ ॥

[रतिकेलिहृतनिवसनकरकिसलयरुद्धनयनयुगलस्य ।
रुद्रस्य तृतीयनयनं पार्वतीपरिचुम्बितं जयति ॥]

ताडनाभिलाषाकूतकलितं हलिकस्य कस्यांचिदनुरागं सूचयन्नागरिकस्तमाह—

धावइ पुरओ पासेसु भमइ दिट्ठीपहम्मि संठाइ ।
[7]णवलइकरस्स तुह हलिअउत्त दे पहरसु वराइम् ॥ ५६ ॥

[धावति पुरतः [8]पार्श्वयोर्भ्रमति दृष्टिपथे संतिष्ठते ।
[9]नवलतिकाकरस्य तव हलिकपुत्र दे प्रहरस्व वराकीम् ॥]

देशब्दः संबोधने । यद्वा नवलताकुञ्जं संकेतस्थानं त्वं गतो न त्वियमिति कृतापराधामेनां प्रहरेति सोपहासं कुट्टनीवचनमिदम् ॥

कृत्रिमं सर्वमुपहासास्पदं भवतीति निदर्शयन्कश्चित्स्वस्य वैदग्ध्यख्यापनाय सहचरमाह—

कारिममाणन्दवडं भामिज्जन्तं वहूअ स[10]हिआहिं ।
पेच्छइ कुमारिजारो हासुम्मिस्सेहिँ अच्छीहिं ॥ ५७ ॥

[कृत्रिममानन्दपटं भ्राम्यमाणं वध्वा सखीभिः ।
प्रेक्षते कुमारीजारो हासोन्मिश्राभ्यामक्षिभ्याम् ॥]

---

१. 'णिअडीकिआ' ग. २. 'परितप्ता' ग, 'प्रत्यावर्तते' घ. ३. 'खिद्यति' घ. ४. 'अस्य' ग. ५. 'पङ्कनिखातस्य' ग. ६. 'स्नेहे निकटीकृता' ग, 'स्नेहनिगडायिता' घ. ७. 'णवलइआए तुह' ख. ८. 'पार्श्वेषु' घ. ९. 'नवलताकरस्य तव' ग, 'नवलतिकया तव' घ. १०. 'बन्धूहिं' क-ग.

आनन्दपटः प्रथमपुष्पवतीवस्त्रम् । प्रथमरजोदर्शने जाते तद्वस्त्रं बन्धुभिर्लोकेषु प्रदर्श्यत इति देशविशेषे आचारः । जारसंबन्धदृष्टशोणितताया अस्थानं संभ्रमदर्शनेन जारस्य हास इति बोध्यम् ॥

शिशिरसमये अधरे मधूच्छिष्टं लापयन्तीं तरुणीं वीक्ष्य कोऽप्यात्मनो वैदग्ध्यख्यापनायाह—

सणिअं सणिअं ललि[1]अङ्गुलीअ मअणवडलाअणमिसेण ।
बन्धेइ धवलवणवट्टअं व [2]वेणिआहरे तरुणी ॥ ५८ ॥

[शनैः शनैर्ललिताङ्गुल्या मदनपटलापनमिषेण ।
बध्नाति धवलव्रणप[3]ट्टमिव [4]व्रणिताधरे तरुणी ॥]

कापि कुलवधूवृत्तं शिक्षयितुं सखीमाह—

रइविरमलज्जिआओ अप्पत्त[5]णिअंसणाओ [6]सहस व्व ।
ढक्कन्ति पिअअमालिङ्गणेण जहणं कुलवहूओ ॥ ५९ ॥

[रतिविरामलज्जिता अप्राप्तनिवसनाः [7]सहसैव ।
आच्छादयन्ति प्रियतमालिङ्गनेन जघनं कुलवध्वः ॥]

कापि कस्याश्चित्सौभाग्यमन्यापदेशेनाह—

पाअडिअं सोहग्गं तम्बाए उअह गोट्ठमज्झम्मि ।
दुट्ठवसहस्स सिङ्गे अक्खिउडं कण्डुअन्तीए ॥ ६० ॥

[प्रकटितं सौभाग्यं गवा [8]पश्यत गोष्ठमध्ये ।
दुष्टवृषभस्य शृङ्गे अक्षिपुटं [9]कण्डूयन्त्या ॥]

तम्बा गौः ॥

जारप्रलोभनाय दूती कस्याश्चिद्रतलम्पटतामाह—

उह संभमविक्खित्तं रमिअव्वअलेहलाएँ असईए ।
णवरङ्गअं कुडङ्गे धअं व दिण्णं अविणअस्स ॥ ६१ ॥

[पश्य संभ्रमविक्षिप्तं [10]रन्तव्यकलम्पटया असत्या ।
नवरङ्गकं [11]कुञ्जे ध्वजमिव दत्तमविनयस्य ॥]

---

१. 'अङ्गुलीहिं' ग. २. 'वणिआहरा' ख. ३. 'पट्टिकामिव' घ. ४. 'व्रणिताधरा' ख-घ. ५. 'णिअंसणा हसन्तीओ' क. ६. 'सहसत्ति' ख-ग. ७. 'सहसेति' ग-घ. ८. 'पश्यत' क-ख-पुस्तकयोर्नास्ति. ९. 'कण्डूयमानया' ग-घ. १०. 'रतिरङ्गकस्निग्धया' ग, 'रतिरङ्गस्नेहलया' घ. ११. 'निकुञ्जे' ग.

रन्तव्यकं रतम् । नवरङ्गकं कौसुम्भवस्त्रम् । कुञ्जे संकेतस्थाने असत्या दत्तमविनयस्य ध्वजमिव नवरङ्गकं पश्येत्यन्वयः ॥

भुजंगं प्रति दूती कस्याश्चिदनुरागातिशयं प्रतिपादयितुमाह—

हत्थप्फंसेण जरग्गवी वि पह्णुहइ दोहअगुणेण ।

अवलोअणपह्णुइरिं पुत्तअ पुण्णेहिँ पाविहिसि ॥ ६२ ॥

[हस्तस्पर्शेन जरद्गव्यपि प्रस्नौति दोहदगुणेन ।

अवलोकनप्रस्नवनशीलां पुत्रक पुण्यैः प्राप्स्यसि ॥]

अवलोकनेति । अवलोकनमात्रेणानुरक्तामित्यर्थः । तथा चेयमवलोकनमात्रेणैव प्रसीदति, अतस्त्वमेनां भजस्वेति भावः ॥

नागरिकः सहचरशिक्षार्थमेकस्य जिज्ञासामपरस्य च ज्ञाननैपुण्यमुक्तिप्रत्युक्तिकयाह—

मसिणं चङ्कम्मन्ती पए पए कुणइ कीस मुहभङ्गम् ।

णूणं से मेहलिआ जहणगअं छिवइ णहवन्तिम् ॥ ६३ ॥

[मसृणं चङ्क्रम्यमाणा पदे पदे करोति किमिति मुखभङ्गम् ।

नूनं तस्या मेखलिका जघनगतां स्पृशति नखपङ्क्तिम् ॥]

सपत्नीचरणलाक्षाङ्कितकरं नायकं खण्डिता सेर्ष्यमाह—

संवाहणसुहरसतोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खम् ।

चलणेण विक्कमाइत्तचरिअँ अणुसिक्खिअं तिस्सा ॥ ६४ ॥

[संवाहनसुखरसतोषितेन ददता तव करे लाक्षाम् ।

चरणेन विक्रमादित्यचरितमनुशिक्षितं तस्याः ॥]

पक्षे संवाहणं संबाधनम् । लक्खं लक्षम् । विक्रमादित्योऽपि भृत्यकर्तृकेन शत्रुसंबाधनेन तुष्टः सन् भृत्यस्य करे लक्षं ददातीत्यर्थः ।

सहसैव परित्यक्तमानां सखीं शिक्षयितुं कापि मानस्य बहुसुखहेतुतामाह—

पाअपडणाणँ मुद्धे रहसबलामोडिचुम्बिअव्वाणम् ।

दंसणमेत्तपसण्णे चुक्कासि सुहाणँ बहुआणम् ॥ ६५ ॥

[पादपतनानां मुग्धे रभसबलात्कारचुम्बितव्यानाम् ।

दर्शनमात्रप्रसन्ने भ्रष्टासि सुखानां बहुकानाम् ॥]

---

१. 'गुणेहिं' ख-ग. २. 'बालअ दुक्खेहिं' क. ३. 'दोहदगुणैः' ग-घ. ४. 'प्रस्नविनीं' ग. ५. 'अस्या' घ. ६. 'अणुवट्टिअं' ग. ७. 'अनुवर्तितं' ग. ८. 'चुक्किहिसि' ग. ९. 'रभसबलान्मौलिचुम्बितव्यानां' ग. १०. 'त्यक्तासि' ग, 'मुक्तासि' घ. ११. 'सुखैर्बहुभिः' ग, 'सुखानां बहूनाम्' घ.

सुखानामित्यादौ चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । पादपतनादिभ्यः सुखेभ्यो भ्रष्टासीत्यर्थः । दर्शनमात्रेण प्रसन्ने इति मुग्धाविशेषणम् । 'रभसो वेगहर्षयोः' इति कोषः ॥

प्रणयकुपितां कान्तां कोऽपि प्रसादयितुमाह—

दे सुअणु पसिअ एह्णिं पुणो वि सुलहाइँ रूसिअव्वाइं ।
एसा मअच्छि मअलञ्छणुज्जला गलइ छणराई ॥ ६६ ॥

[हे सुतनु प्रसीदेदानीं पुनरपि सुलभानि रोषितव्यानि ।
एषा मृगाक्षि मृगलाञ्छनोज्ज्वला गलन्ति क्षणरात्रिः ॥]

रोषितव्यानि रोषाः । क्षणरात्रिरुत्सवरात्रिः । 'दे सुहअ' इति पाठे 'हे सुभग' इत्यर्थः । तत्रान्योन्यगृहीतमानौ प्रति दूतीवचनत्वेन व्याख्येयम् ॥

कामार्तायास्तस्याः प्रतीकारं कर्तुं त्वमेव शक्त इत्यन्यापदेशेन दूती कमप्याह—

आवण्णाइँ कुलाइं दो च्चिअ जाणन्ति उण्णइं णेउम् ।
गोरीअ हिअअदइओ अहवा सालाहणणरिन्दो ॥ ६७ ॥

[आपन्नानि कुलानि द्वावेव जानीत उन्नतिं नेतुम् ।
गौर्या हृदयदयितोऽथवा शालिवाहननरेन्द्रः ॥]

आपन्नान्यापदं प्राप्तानि । पक्षे आपर्णानि । अपर्णा पार्वती तत्संबन्धीनि ॥

विषमशीलकुटिलनायिकायामासक्तं कमप्यन्यापदेशेन निवर्तयितुं काचिदाह—

णिक्कण्ड दुरारोहं पुत्तअ मा पाडलिं समारुहसु ।
आरूढणिवडिआ के इमीअ ण कआ हआसाए ॥ ६८ ॥

[निष्काण्ड दुरारोहां पुत्रक मा पाटलिं समारोह ।
आरूढनिपतिताः के अनया न कृता हताशया ॥]

काण्डं स्कन्धोऽवसरश्च । तच्छून्यत्वाद्दुरारोहां दुराक्रमणीयां प्रत्यवायहेतुसंगमां च ॥

ग्रामणीवनितासक्तो देवरो निवार्यतामित्यभिप्रायेण काप्यन्यापदेशेन श्वश्रूमाह—

गामणिघरम्मि अत्ता एक्क च्चिअ पाडला इह ग्गामे ।
बहुपाडलं च सीसं दिअरस्स ण सुन्दरं एअम् ॥ ६९ ॥

[ग्रामणिगृहे श्वश्रु एकैव पाटला इह ग्रामे ।
बहुपाटलं च शीर्षं देवरस्य न सुन्दरमेतत् ॥]

बहूनि पाटलानि पाटलिपुष्पाणि यस्मिंस्तत् ॥

---

१. 'णाहो' ग. २. 'णिक्कन्ध' क-ख, 'दुक्कन्ध' ग. ३. 'निष्कन्ध' क-ख. ४. 'पाटलां' घ. ५. 'समारुह' क-ख. ६. 'मातः' ग.

भुजंगप्रलोभनाय दूती कस्याश्चित्कटाक्षतैक्ष्ण्यं वर्णयति—

अण्णाणँ वि होन्ति मुहे पम्हलधवलाइँ दीहकसणाइं ।
णअणाइँ सुन्दरीणं तह वि हु दट्ठुं ण जाणन्ति ॥ ७० ॥

[अन्यासामपि भवन्ति मुखे पक्ष्मलधवलानि दीर्घकृष्णानि ।
नयनानि सुन्दरीणां तथापि खलु द्रष्टुं न जानन्ति ॥]

सहजा अपि गुणा भ्रूविलासादि वैदग्ध्यं विना न शोभन्त इति भावः ॥

दण्डयात्रोद्यतस्य राज्ञः प्रतिषेधाय राजस्तुतिव्याजेन वर्षाकालं राज्ञी वर्णयति—

हंसेहिँ व तुह रणजलअसमअभअचलिअविहलवक्खेहिं ।
परिसेसिअपोम्मासेहिँ माणसं गम्मइ रिऊहिं ॥ ७१ ॥

[हंसैरिव तव रणजलदसमयभयचलितविह्वलपक्षैः ।
परिशोषितपद्माशैर्मानसं गम्यते रिपुभिः ॥]

हे राजन्, तव रिपुभिर्मानसं मनः । तवेत्यर्थात् । गम्यतेऽनुवर्त्यते । त्वत्सेवया स्थीयत इति यावत् । हंसपक्षे मानसं सरोविशेषः । गम्यते प्राप्यते । कीदृशैः । रण एव जलदसमयः तद्भयाच्चलिताः पलायिता अत एव विह्वलाः पक्षाः सहाया येषां तैः । हंसपक्षे—रणन्तः शब्दायमाना ये जलदास्तद्भयाच्चलिताः कम्पिताः पक्षाश्छदा येषाम् । पुनः कीदृशैः । परिशेषिता त्यक्ता पद्मायां लक्ष्म्याः । पक्षे—पद्मानां कमलानामाशा यैः ।

अनायाससाध्यमेव प्रार्थनीयमिति सखीं शिक्षयितुं काचिदाह—

दुग्गअघरम्मि घरिणी रक्खन्ती आउलत्तणं पइणो ।
पुच्छिअदोहलसद्धा पुणो वि उअअं विअ कहेइ ॥ ७२ ॥

[दुर्गतगृहे[1] गृहिणी रक्षन्ती आकुलत्वं पत्युः ।
पृष्टदोहदश्रद्धा पुनरप्युदकमेव कथयति ॥]

दुर्लभवस्तुप्रार्थनायामसौ व्याकुलो भविष्यतीति बुद्ध्या उदकमेव प्रार्थयत इत्यर्थः ॥

स्नाता एव युवत्यो ग्रीष्मे रमयन्तीति वर्णयन्कोऽपि वयस्यमाह—

आअम्बलोअणाणं ओल्लंसुअपाअडोरुजहणाणम् ।
अवरह्णमज्जिरीणं कए ण कामो वहइ[2] चावम् ॥ ७३ ॥

[आताम्रलोचनानामार्द्रांशुकप्रकटोरुजघनानाम् ।
अपराह्णमज्जनशीलानां[3] कृते न कामो वहति चापम् ॥]

आर्द्रांशुकेन प्रकटमूरु जघनं यासामित्यर्थः । ईदृगवस्थानं युवतीनां रक्षणार्थमेव कामश्चापं वहति । अन्यथा निरर्थकत्वात्त्यक्तमेव स्यादिति भावः ॥

---

१. 'दुर्गतगृहस्थ' ग. २. 'धणुं वहइ' क. ३. 'स्नातानां' ग.

कोऽपि वेश्यास्त्रीणां सकलव्यामोहकतां प्रतिपादयितुमाह—

के उव्वरिआ के इह ण खण्डिआ के ण लुत्तगुरुविहवा ।
णहराइं वेसिणिओ गणणारेहाउ व वहन्ति ॥ ७४ ॥

[के उर्वरिता के इह न खण्डिताः के न लुप्तगुरुविभवाः ।
नखराणि वेश्या गणनारेखा इव वहन्ति ॥]

के उर्वरिता वेश्याभिरनाकृष्टाः । के न खण्डिताः । केषां व्रतखण्डनं न कृतमित्यर्थः । नखराणि नखक्षतानि । 'नखरोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । यद्वा—णहराइं नखराजिम् । नखक्षतपङ्क्तिमिति यावत् । कामुकदत्तनखक्षतपङ्क्तिव्याजेन के उर्वरिता इत्यादि गणनारेखा वहन्तीत्यर्थः ॥

प्रवासादागतं कान्तं प्रति विरहदुःखं निवेदयितुं कापि सवैदग्ध्यमाह—

विरहेण मन्दरेण व हिअअं दुद्धोअहिं व महिऊण ।
उम्मूलिआइँ अव्वो अम्हं रअणाइँ व सुहाइं ॥ ७५ ॥

[विरहेण मन्दरेणेव हृदयं दुग्धोदधिमिव मथित्वा ।
उन्मूलितानि कष्टमस्माकं रत्नानीव सुखानि ॥]

उन्मूलितानि दूरीकृतानि । अव्वो इति कष्टसूचकमव्ययम् । 'अव्वो संबुद्धिदुःखयोः' इति देशीकोषः । त्वद्विरहे दुःखमेव केवलं मयानुभूतमतःपरं मां विहाय न गन्तव्यमिति भावः ॥

पत्युः प्रियमेव सर्वदा कर्तव्यमिति वदन्तीं सखीं कापि पत्युर्वैदग्ध्यमीर्ष्या च सोद्वेगमाह—

उज्जुअरए ण तूसइ वक्कम्मि वि आअमं विअप्पेइ ।
एत्थ अहव्वाएँ मए पिए पिअं कहँ णु काअव्वम् ॥ ७६ ॥

[ऋजुकरते न तुष्यति वक्रेऽप्यागमं विकल्पयति ।
अत्राभव्यया मया प्रिये प्रियं कथं नु कर्तव्यम् ॥]

ऋजुके हावभावादिरहिते । वक्रे हावभावमणितसीत्कृतदन्तक्षतनखक्षतचुम्बनासनविशेषादियुक्ते । कुतोऽनया शिक्षितमित्यागमं विकल्पयति । 'आगमं' इत्यस्य स्थाने 'आशयं' इति क्वचित्पाठः ॥

रतिकौशलदर्शनेनान्यथाभावशङ्किनं काचिदाह—

बहुविहविलासरसिए सुरए महिलाणँ को उवज्झाओ ।
सिक्खइ असिक्खिआइँ वि सव्वो णेहाणुबन्धेण ॥ ७७ ॥

---

१. 'वेशिन्यो गणनारेखा उपवहन्ति' घ. २. 'अहो' ग-घ. ३. 'आशयं' घ.

[बहुविधविलासरसिके सुरते महिलानां क उपाध्यायः ।
शिक्ष्यते अशिक्षितान्यपि सर्वः स्नेहानुबन्धेन ॥]

नायकसौन्दर्यं प्रकटयन्ती दूती नायिकां प्ररोचयितुमाह—

वण्णवसिए विअत्थसि सच्चं विअ सो तुए ण संभविओ ।
ण हु होन्ति तम्मि दिट्ठे सुत्थावत्थाइँ अङ्गाइँ ॥ ७८ ॥

[वर्णवशिते विकत्थसे सत्यमेव स त्वया न संभावितः ।
न खलु भवन्ति तस्मिन्दृष्टे स्वस्थावस्थान्यङ्गानि ॥]

वर्णो गुणश्रवणं तेन वशीकृते इति संबोधनम् । 'वर्णो द्विजादिशुक्लादियशोगुणकथादिषु' इति मेदिनी । विकत्थसे मया दृष्ट इत्यात्मश्लाघां कुरुषे । न संभावितो न दृष्टः । अत्र हेतुमाह—न खल्विति । स्वस्थावस्थानि न भवन्ति, किं तु स्वेदकम्परोमाञ्चजृम्भाङ्गभङ्गमोट्टायितादिभावाकुलानि भवन्तीत्यर्थः ।

अभिनवविषयानुरक्तः पूर्वानुभूतमवधरियतीति निदर्शयन्कोऽपि वयस्यमाह—

आसण्णविआहदिंणे अहिणववहुसंगमस्सुअमणस्स ।
पढमघरिणीअ सुरअं वरस्स हिअए ण संठाइ ॥ ७९ ॥

[आसन्नविवाहदिने अभिनववधूसंगमोत्सुकमनसः ।
प्रथमगृहिण्याः सुरतं वरस्य हृदये न संतिष्ठते ॥]

अतिमदनाक्रान्तहृदयः कोऽपि दोषं जानन्नपि रागौत्कण्ठ्यात्प्रेयस्याः सहचरीमाह—

जइ लोअणिन्दिअं जइ अमङ्गलं जइ विमुक्कमज्जाअम् ।
पुप्फवइदंसणं तहवि देइ हिअअस्स णिव्वाणम् ॥ ८० ॥

[यदि लोकनिन्दितं यद्यमङ्गलं यदि विमुक्तमर्यादम् ।
पुष्पवतीदर्शनं तथापि ददाति हृदयस्य निर्वाणम् ॥]

निर्वाणं सुखम् ॥

पुष्पवतीस्पर्शादुद्विजमानं कान्तं कापि सविनयोपालम्भमाह—

जइ ण छिवसि पुप्फवइं पुरओ ता कीस वारिओ ठासि ।
छित्तोसि चुलचुलन्तेहिँ धाविउण अम्ह हत्थेहिं ॥ ८१ ॥

---

१. 'रमिते' ग. २. 'रणरसिए' ग. ३. 'सचरिओ' ग. ४. 'अरण्यरसिके' ग. ५. 'सचरितः' ग. ६. 'स्वस्थान्यङ्गानि' ग. ७. 'दिणेसु णव' ग. ८. 'दिनेषु नव' ग. ९. 'तुह तहवि देइ हिअअम्मि' ग. १०. 'तव तथापि ददाति हृदये' ग, 'तव तथापि मम ददाति हृदय-' घ.

[यदि न स्पृशसि पुष्पवतीं पुरतस्तत्किमिति वारितस्तिष्ठसि ।
स्पृष्टोऽसि चुलचुलायमानैर्धावित्वास्माकं हस्तैः ॥]

चुलचुलेत्यनुकरणमुत्कण्ठातिशयसूचकम् । कण्डूयमानैरित्यर्थः ॥

नायिकाया विप्रलम्भावस्थाकथनेन नायकापराधं प्रकटयन्ती दूती नायकमाह—

उज्जागरअकसाइअगुरुअच्छी मोहमण्डणविलक्खा ।
लज्जइ लज्जालुइणी सा सुहअ सहीहिँ वि वराई ॥ ८२ ॥

[उज्जागरककषायितगुरुकाक्षी मोघमण्डनविलक्षा ।
लज्जते लज्जाशीला[1] सा सुभग सखीभ्यो[2]ऽपि वराकी ॥]

उज्जागरेण कषायिते गुरुके अक्षिणी यस्याः सा । मोघेन निरर्थकेन मण्डनेन विलक्षा ॥

गर्भभरेण क्लाम्यन्तीं सखीं सखी सपरिहासमाह—

ण वि तह अइगरुएण वि तम्मइ हिअए भरेण गब्भस्स ।
जह विपरीअणिहुअणं पिअम्मि सोह्णा अपावन्ती ॥ ८३ ॥

[नैापि[3] तथातिगुरुकेणापि ताम्यति हृदये भरेण गर्भस्य ।
यथा विपरीतनिर्धुवनं[4] प्रि[5]ये स्नुषा अप्राप्नुवती ॥]

गर्भिणीपीवरादीनां विपरीतसुरतस्य निषिद्धत्वादिति भावः ॥

नायिकानुरागप्रकाशनेन दूती नायकमुत्कण्ठयितुमाह—

अगणिअजणाववाअं अवहत्थिअगुरुअणं वराईए ।
तुह गलिअदंसणाए तीए वलिउण चिरं रुण्णम् ॥ ८४ ॥

[अगणितजनापवादमपहस्तितगुरुजनं वराक्या ।
तव गलितदर्शनया[6] तया वलित्वा[7] चिरं रुदितम् ॥]

वादान्तं जनान्तं च क्रियाविशेषणम् ॥

प्रोषितपतिका, तत्सखी वा लेखमुखेन नायकमाह—

हिअअं हिअए णिहिअं चित्तालिहिअ व्व तुह मुहे दिट्ठी ।
आलिङ्गणर[8]हिआइं णवरं खिज्जन्ति अङ्गाइं ॥ ८५ ॥

---

१. 'लज्जावती' घ. २. 'सखीनां' घ. ३. 'नैव' ग. ४. 'सुरतं' क-ख. ५. 'प्रियमपि' ग. ६. 'दर्शनाशया' क-ख. ७. 'चलित्वा' घ. ८. 'दुहिआइं' ग.

[हृदयं हृदये निहितं चित्रालिखितेव तव मुखे दृष्टिः।
आलिङ्गनरहितानि केवलं क्षीयन्तेऽङ्गानि ॥]

'आलिङ्गणदुहिआइं' इति पाठे आलिङ्गनं विना दुःखितानीत्यर्थः ॥

काचिदतिविरहदुःखिता सुज्ञां सखीमाह—

अहअं विओअतणुई दुसहो विरहाणलो चलं जीअम्।
अप्पाहिज्जउ किं सहि जाणसि तं चेव जं जुत्तम् ॥ ८६ ॥

[अहं वियोगतन्वी दुःसहो विरहानलश्चलं जीवम्।
अभिधीयतां किं सखि जानासि त्वमेव यद्युक्तम् ॥]

प्रियानयनमेव युक्तमिति भावः ॥

कलहान्तरिताया नायिकाया विरहदुःखं प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

तुह विरहुज्जागरओ सिविणे वि ण देइ दंसणसुहाइं।
वाहेण जहालोअणविणोअणं से हअं तं पि ॥ ८७ ॥

[तव विरहोज्जागरकः स्वप्नेऽपि न ददाति दर्शनसुखानि।
बाष्पेण यदालोकनविनोदनं तस्या हतं तदपि ॥]

अनुरक्तं कान्तं कापि सोपालम्भमाह—

अण्णावराहकुविओ जहतह कालेण गम्मइ पसाअम्।
वेसत्तणावराहे कुविअं कहँ तं पसाइस्सम् ॥ ८८ ॥

[अन्यापराधकुपितो यथातथा कालेन गच्छति प्रसादम्।
द्वेष्यत्वापराधे कुपितं कथं तं प्रसादयिष्यामि ॥]

अन्य आज्ञाखण्डनादिरूपो योऽपराधस्तेन कुपितः। द्वेष्यत्वं साहजिको द्वेषस्तद्रूपेऽपराधे ॥

अहृदयप्रचारिणं प्रियवादिनं नायकं कापि सोपालम्भमाह—

दीससि पिआणि जम्पसि सब्भावो सुहअ एत्तिअ व्वेअ।
फालेइऊण हिअअं साहसु को दावए कस्स ॥ ८९ ॥

---

१. 'दुःखितानि' ग-घ. २. 'संदिश्यतां' ग, 'आदिश्यतां' घ. ३. 'विरहे जागरणं' ग. ४. 'अवलोकन' क-ख. ५. 'अपि तस्या हतं तत्' ग. ६. 'गम्यते' घ. ७. 'प्रसादयिष्ये' ग-घ. ८. 'भणसि' क-ख.

[दृश्यसे प्रियाणि जल्पसि[1] सद्भावः सुभग एतावानेव ।
पाटयित्वा[2] हृदयं[3] कथय[4] को दर्शयति[5] कस्य ।।]

तवाकृतिवचनादिकमतिमधुरम्, हृदयं तु कालकूटघटितमिवेति भावः ॥

काप्यस्थिरस्नेहं पतिमुपालब्धुमन्यापदेशेनाह—

उअअं लहिऊण उत्ताणिआणणा होन्ति के वि सविसेसम् ।
रित्ता णमन्ति सुइरं रहट्टघडिअ व्व कापुरिसा ॥ ९० ॥

[उदकं लब्ध्वा उत्तानिताननना भवन्ति केऽपि सविशेषम् ।
रिक्ता नमन्ति सुचिरं रहट्ट[6](अरघट्ट)घटिका इव कापुरुषाः ॥

रहट्टो घटीयन्त्रं तत्संबन्धिनः क्षुद्रा घटा इव। उक्तं च—'जीवनग्रहणे नम्रा गृहीत्वा पुनरुन्नताः । किं कनिष्ठाः किमु ज्येष्ठा घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ।।' इति ॥

सुधामयूखमयूखमण्डलीधवलिते दिङ्मुखे प्रियसंगममलभमानान्धकाराभिसारिका सोद्वेगं स्वगतमाह—

भग्गपिअसंगमं केत्तिअं व जोह्लाजलं णहसरम्मि ।
चॅन्दअरपणालणिज्झरणिवहपडन्तं ण णिट्ठाइ ॥ ९१ ॥

[भग्नप्रियसंगमं कियदिव ज्योत्स्नाजलं नभःसरसि ।
चन्द्रकरप्रणालनिर्झरनिवहपतन्[7] निस्तिष्ठति[8] ॥

भग्नः प्रियसंगमो येन तद् । तथा चन्द्रकरा एव प्रणालनिर्झरनिवहास्तेभ्यः पतन्न निःशेषं तिष्ठति । न समाप्नोतीत्यर्थः ।।

नायिकानुरागं सूचयन्ती दूती नायकमाह—

सुन्दरजुआणजणसंकुले वि तुह दंसणं विमग्गन्ती ।
रण्ण व्व भमइ दिट्ठी वराइआए समुव्विग्गा ॥ ९२ ॥

[सुन्दरयुवजनसंकुले[9]ऽपि तव दर्शनं विमार्गयन्ती[10] ।
अरण्य इव भ्रमति दृष्टिर्वराकिकायाः समुद्विग्ना ।।]

यथारण्ये शून्यप्रदेशे कमपि न पश्यति तथा त्वद्गतचित्ता सतोऽपि बहून्यूनो न पश्यति किं तु त्वामेवोद्वीक्षत इति भावः । 'अणुव्विण्णा' इति पाठे त्वद्दर्शनकौतुकादगणितखेदेत्यर्थः ॥

---

१. 'भणसि' घ. २. 'फालयित्वा' घ. ३. 'निजहृदयं' ग. ४. 'शंस' घ. ५. 'कस्मै दर्शयति' क-ख. ६. 'कूपघटिका' घ. ७. 'पतन्तं' ग-घ. ८. 'न निर्वाति' ग, 'न तिष्ठति' घ. ९. 'संकटे' ग. १०. 'विमार्गमाणा' ग.

प्रोषितपतिकाया विरहावस्थां सखी तत्कान्तसमीपगामिनं पथिकमाह—

अइकोवणा वि सासू रुआविआ गअवईअ सोह्लाए ।
पाअपडणोण्णआए दोसु वि गलिएसु वलएसु ॥ ९३ ॥

[अतिकोपनापि श्वश्रू रोदिता गतपतिकया[1] स्नुषया ।
पादपतनावनतया द्वयोरपि गलितयोर्वलययोः ॥]

द्वयोर्भुजद्वयविधृतयोः । वलययोरिति सतिसप्तमी । एवमियं मत्पुत्रकृते कृशा जाता येनानया मत्पादवन्दनावनतया वलयपातोऽपि न ज्ञात इत्यालोक्य निष्ठुरापि श्वश्रूररोदीदिति भावः ॥

प्रवासोद्यतस्य कान्तस्य गमननिषेधाय ग्रीष्मातपस्य दुःसहत्वं कापि वर्णयति—

रोवन्ति व्व अरण्णे दूसहरइकिरणफंससंतत्ता ।
अइतारझिल्लिविरुएहिँ पाअवा गिम्हमज्झह्ने ॥ ९४ ॥

[रुदन्तीवारण्ये दुःसहरविकिरणस्पर्शसंतप्ताः ।
अतितारझिल्लीविरुतैः पादपा ग्रीष्ममध्याह्ने ॥]

झिल्ली 'झींगुर' इति कान्यकुब्जभाषया प्रसिद्धः कीटविशेषः । अचेतनानां पादपानामपीयमवस्था किं पुनश्चेतनानामिति भावः । यद्वा संकेतवनोपगतं लोकागमं शङ्कमानं कान्तं प्रत्यभिसारिकाया इयमुक्तिः। नायं जनचरणसंचरणचलितपत्रध्वनिः, किंतु झिल्लीध्वनिरिति निःशङ्कं रमस्वेति भावः ॥

संकेतितसरस्तीरमहं गता, त्वं तु न गतः, इति जारं श्रावयन्ती कापि कमलवनवर्णनच्छलेन सखीमाह—

पढमणिलीणमेहुरमहुलोहल्लालिउलबद्धझंकारम् ।[2]
अहिमअरकिरणणिउरम्बचुम्बिअं दलइ कमलवणम् ॥ ९५ ॥

[प्रथमनिलीनमधुरमधुलुब्धालिकुलबद्धझंकारम् ।
अहिमकरकिरणनिकुरुम्बचुम्बितं दलति कमलवनम् ॥]

प्रथमनिलीनेन मधुरमधुलुब्धेनालिकुलेन बद्धो झंकारो यत्र तत् । पाठान्तरे प्रथमनिलीनमधुकरीलुब्धेत्यर्थः । तत्र प्रथमनिलीनेति मधुकरीविशेषणम् । सुप्तस्य राज्ञः प्रबोधनाय वैतालिकस्येदं वचनमिति केचित् । सांध्यो विधिरनुष्ठीयतामिति, सुरभयो मुच्यन्तामिति, विक्रेयवस्तूनि प्रसार्यन्तामिति, नास्तीदानीं पिशाचादिभयमिति, पथिक प्रतिष्ठस्वेत्यादि प्रस्तावदेशकालादिभेदात्पुनरनेकविधो व्यङ्ग्योऽर्थः सहृदयैः स्वयमूहनीयः ॥

---

१. 'गृहपतिस्नुषया' ग. २. 'महुअरीलोहिल्लालि' ग.

मानिनीमानापनोदाय नायकं प्रेरयितुं दूती नायकसहचरमाह—

गोत्तक्खलणं सोऊण पिअअमे अज्ज तीअ खणदिअहे ।
वज्झमहिसस्स माल व्व मण्डणं उअह पडिहाइ ॥ ९६ ॥

[गोत्रस्खलनं श्रुत्वा प्रियतमे अद्य तस्याः क्षणदिवसे ।
वध्यमहिषस्य मालेव मण्डनं पश्यत प्रतिभाति ॥]

श्रुत्वेत्यनन्तरं स्थिताया इति शेषः । क्षणदिवसे उत्सवदिवसे । वध्येति देव्यै उपहारत्वेन कल्पितस्य महिषस्य कृतमपि मण्डनं यथासन्नमरणतया न शोभते तथा अस्या अपीत्यर्थः । तथा च यावदभिमानेन न म्रियते तावदेव शीघ्रमनुनीयतामियमिति भावः ॥

कापि कान्तानयनाय सखीं त्वरयितुमात्मनो दुःसहां विरहावस्थामाह—

महमहइ मलअवाओ अत्ता वारेइ मं घराणेन्तीम् ।
अङ्कोल्लपरिमलेण वि जो क्खु मओ सो मओ व्वेअ ॥ ९७ ॥

[महमहायते मलयवातः श्वश्रूर्वारयति मं गृहान्निर्यान्तीम् ।
अङ्कोटपरिमलेनापि यः खलु मृतः स मृत एव ॥]

महमहायते अतिसौरभमुद्वहतीत्यर्थः । अङ्कोटेति । अङ्कोटो गृहवाटिकायामेव प्रायशो भवतीति प्रसिद्धिः । अयमाशयः—सुरभिमलयमारुतस्पर्शोद्दीपितविषमविषमबाणबाणभिन्नहृदया हृदयस्फोटेन विनङ्क्ष्यतीति संभाव्य श्वश्रूर्मां बहिर्गन्तुं न ददाति । किमेतावता । गृहस्थिताङ्कोटगन्धेनाप्यहं मरिष्याम्येवेति । 'अङ्कोटे तु निकोचकः' इत्यमरः ॥

कस्यचिदभियोगनिरासार्थं दूती दंपत्योः परस्परानुरागमाह—

मुहपेच्छिओ[२] पई से सा वि हु सविसेसदंसणुम्मइआ ।
दोवि कअत्था पुहइं अमहिलपुरिसं व मण्णन्ति ॥ ९८ ॥

[मुखप्रेक्षकः पतिस्तस्याः सापि[३] खलु सविशेषदर्शनोन्मत्ता ॥
द्वावपि कृतार्थौ पृथिवीममहिलापुरुषामिव मन्येते ॥]

प्रोषितपतिका काचित्कयापि क्षेमं पृष्टा तामाह—

खेमं कन्तो खेमं जो सो खुज्जम्बओ घरद्दारे ।
तस्स किल मत्थआओ को वि अणत्थो समुप्पण्णो ॥ ९९ ॥

[क्षेमं कुतः क्षेमं योऽसौ कुब्जाम्रको गृहद्वारे ।
तस्य किल मस्तकात्कोऽप्यनर्थः समुत्पन्नः ॥

अनर्थो मुकुलः । वसन्तकालः संप्राप्त इति भावः ॥

---

१. 'माता' ग. २. 'पेच्छिरो' ग. ३. 'सापि च' ग. ४. 'दर्शनान्मत्ता' ग, 'दर्शनोन्मादिता' घ.

प्रवासावसरमधिगम्य कस्यामप्यभियोक्तुर्जारस्य निरासार्थं दूत्याह—

आउच्छणविच्छाअं जाआइ मुहं णिअच्छमाणेण ।
पहिएण सोअणिअलाविएण गन्तुं व्विअ ण इट्ठम् ॥ १०० ॥

[आपृच्छनविच्छायं जायाया मुखं निरीक्षमाणेन ।
पथिकेन शोकनिगडितेन[1] गन्तुमेव नेष्टम् ॥]

आपृच्छनं गन्तुमनुजानीहीति प्रश्नः ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।
सत्तसअम्मि समत्तं पञ्चमं गाहासअं एअम् ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्तं पञ्चमं गाथाशतकमेतत् ॥]

षष्ठं शतकम् ।

जनापवादभयादप्राप्तयथेष्टप्रियावलोकना कुलटा सखीमाह—

सूईवेहे मुसलं विच्छहमाणेण[2] दड्ढलोएण ।
एक्कग्गामे वि पिओ समअं अच्छीहिँ वि ण दिट्ठो ॥ १ ॥

[सूचीवेधे मुसलं निक्षिपता[3] दग्धलोकेन ।
एकग्रामेऽपि प्रियः समाभ्यामक्षिभ्यामपि न दृष्टः ॥]

सूचीवेध इति । अल्पमपि दूषणं बहु कुर्वतेत्यर्थः । दग्धशब्दो निर्वेदसूचने । समाभ्यां सर्वाभ्याम् । 'समं सदृशि सर्वस्मिन्' इति कोषः ॥

कापि पतिगमनस्यात्ममरणहेतुतां प्रतिपादयन्ती पत्युर्गमननिषेधार्थं सखीमाह—

अज्जं पि ताव एक्कं मा[4] मं वारेहि पिअसहि रुअन्तिम् ।
कल्लिं उण तम्मि गए जइ ण मुआ ता ण रोदिस्सम् ॥ २ ॥

[अद्यापि तावदेकं मा मां वारय प्रियसखि रुदतीम् ।
कल्ये पुनस्तस्मिन्गते यदि न मृता[5] तदा न रोदिष्यामि ॥]

अपिरवधारणे । अद्यैवेत्यर्थः । एकं दिनमित्यर्थात् ॥

ऋतुमत्या युवत्या वैदग्ध्यं सूचयन्ती कापि सखीं शिक्षयितुमाह—

एहि त्ति वाहरन्तम्मि पिअअमे उअह ओणअमुहीए ।
विउणावेट्ठिअजहणत्थलाइ लज्जाणअं हसिअम् ॥ ३ ॥

---

१. 'निगडायितेन' घ. २. 'विच्छुहमाणम्मि दड्ढलोअम्मि' ग. ३. 'विक्षिप्यमाणे' ग, 'प्रक्षिप्यता' घ. ४. 'मासं' ग. ५. 'म्रिये न रोदिष्ये' ग.

[एहीति व्याहरति प्रियतमे पश्यतावनतमुख्या ।
द्विगुणावेष्टितजघनस्थलया लज्जावनतं हसितम् ॥]

कोऽपि युवत्याः कटाक्षवर्णनेन स्वाभिलाषं प्रकाशयन्नाह—

मारेसि कं ण मुद्धे इमेण रत्तन्ततिक्खविसमेण[1] ।
भुलआचावविणिग्गअतिक्खअरद्धच्छिभल्लेण ॥ ४ ॥

[मारयसि कं न मुग्धे अनेन रक्तान्ततीक्ष्णविषमेण[2] ।
भ्रूलताचापविनिर्गततीक्ष्णतरार्धाक्षिभल्लेन ॥]

भल्लः काण्डभेदः । 'रत्तन्ततिक्ख' इति स्थाने 'पेरन्तरत्त' इति क्वचित्पाठः । तत्र 'पर्यन्तरक्त' इत्यर्थः ।

नायिकाया अनुरागातिशयं प्रकाशयन्ती दूती जारमाह—

तुह दंसणे सअह्ला सद्दं सोऊण णिग्गदा जाइं ।
तइ वोलीणे ताइं पआइँ वोढव्विआ जाआ ॥ ५ ॥

[तव दर्शने सतृष्णा शब्दं श्रुत्वा निर्गता यानि ।
त्वयि व्यतिक्रान्ते तानि पदानि वोढव्या जाता ॥]

शब्दं तव वचनम् । त्वद्दर्शनोत्साहेन गमनावसरेऽज्ञातक्लेशा त्वयि नेत्रपथातीते पुनर्गतजीवितेव परसंवाह्या जातेत्यर्थः ॥

किमित्येवं कृशासीति पृष्टा कापि मातुलानीमाह—

ईसामच्छररहिएहिँ णिव्विआरेहिँ मामि अच्छीहिं ।
एह्णिं जणो जणम्मिव णिरिच्छए कहँ ण छिज्जामो[3] ॥ ६ ॥

[ईर्ष्यामत्सररहिताभ्यां निर्विकाराभ्यां मातुलान्यक्षिभ्याम्[4] ।
इदानीं जनो जनमिव निरीक्षते कथं न क्षीयामहे ॥]

जनः प्रियः । जनमिव साधारणमिव । निरीक्षते अस्मानिति शेषः । ईर्ष्यामत्सरभ्रूभङ्गादिकमनुरागज्ञापकमिति तदभावात्क्षीणास्मीति भावः ॥

दुहितुः किंचिदपि सौभाग्यसूचकं मातरं तोषयतीति कापि कस्यचिच्छिक्षार्थमाह—

वाउद्धअसिचअविहाविओरुदिट्ठेण दन्तमग्गेण ।
वहुमाआ तोसिज्जइ णिहाणकलसस्स व मुहेण ॥ ७ ॥

[वातोद्धतसिचयविभावितोरुदष्टेन दन्तमार्गेण ।
वधूमाता तोष्यते[5] निधानकलशस्येव मुखेन ॥]

---

१. 'पेरन्तरत्त' ख. २. 'पर्यन्तरक्त' घ. ३. 'खिज्जामो' क. ४. 'मातुलि' घ. ५. 'तुष्यति' ग.

दन्तमार्गेण दन्तक्षतेन । ऊरुप्रदेशे दन्तनखघातादयः सुरते कर्तव्या इति कामशास्त्रमनुसृत्येदमुक्तम् ॥

काप्यात्मन ईर्ष्यादोषं परिहरन्ती स्नेहानुवृत्त्यर्थं वल्लभमाह—

हिअअम्मि वससि ण करेसि मण्णुअं तह वि णेहभरिएहिं ।
सङ्किज्जसि जुअइसुहावगलिअधीरेहिँ अम्हेहिं ॥ ८ ॥

[हृदये वससि न करोषि मन्युं तथापि स्नेहभृताभिः[1] ।
शङ्क्यसे युवतिस्वभावगलितधैर्याभिरस्माभिः[2] ॥]

यद्यपीदानीं स्निह्यसि तथाप्यग्रे विरंस्यस इति मनसि संशयो भवतीति भावः ॥

कापि कस्मिन्नपि यूनि जाताभिलाषा तस्य भार्यापारतन्त्र्यं सूचयन्ती स्वहृदयं सनिर्वेदमाह—

अण्णं पि किं पि पाविहिसि मूढ मा तम्म दुक्खमेत्तेण ।
हिअअ पराहीणजणं मग्गॅन्त तुह केत्तिअं एअम् ॥ ९ ॥

[अन्यदपि किमपि प्राप्स्यसि मूढ मा ताम्य दुःखमात्रेण ।
हृदय पराधीनजनं मृगयमाण[3] तव कियन्मात्रमिदम् ॥]

किमपीति । प्रियविप्रयोगवच्छरीरवियोगमपि प्राप्स्यसीत्यर्थः । मरणस्य पदान्तरेणोपादानममङ्गलदाय्यश्लीलावहमिति किमपीत्युक्तम् ॥

कान्तस्यान्यस्यामनुरागम्, तस्याश्च तस्मिन्द्वेषम्, आत्मनश्च तस्मिन्ननुरागम्, तस्य चात्मनि द्वेषं सूचयन्ती कापि नायकमाह—

वेसोसि जीअ पंसुल अहिअअरं सा हु वल्लभा तुज्झ ।
इअ जाणिऊण वि मए ण ईसिअं दड्ढपेम्मस्स ॥ १० ॥

[द्वेष्योऽसि यस्याः[4] पांसुल अधिकतरं सा खलु वल्लभा तव ।
इति ज्ञात्वापि मया न ईर्ष्यितं दग्धप्रेम्णः ॥]

चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । प्रेम्णे इत्यर्थः । अयमाशयः—अवगतं मया यो यस्त्वां द्वेष्टि स स तव प्रियः । यथा मत्सपत्नी । मया तु त्वय्यनुरक्तया कथं प्रियया भवितव्यमिति प्रेम्णे कथं नेर्ष्या न कृतेति । यद्वा प्रेम्ण इति पञ्चमी । ईर्ष्यितमिति तुभ्यमिति शेषः । प्रेमवशाद्द्वेषो न कृत इत्यर्थः । चिकीर्षितापीर्ष्या प्रेम्णा प्रतिबन्धान्न निष्पन्नेति भावः ॥

अपरां निपुणां प्रेयसीं स्तुवन्तं कान्तं कापि सेर्ष्यमाह—

सा आम सुहअ गुणरूअसोहिरी आम णिग्गुणा अ अहम् ।
भण तीअ जो ण सरिसो किं सो सव्वो जणो मरउ ॥ ११ ॥

---

१. 'स्नेहभृतैः' क-ख. २. 'धैर्यैः' क-ख. ३. 'कामयमान तव कियदेतत्' ग, 'इच्छन् तव कियदेतत्' घ. ४. 'जीव' घ.

[सा सत्यं सुभग गुणरूपशोभनशीला सत्यं निर्गुणा चाहम् ।
भण तस्या यो न सदृशः किं स सर्वो जनो म्रियताम् ॥]

आमेति सेर्ष्यानुमतौ । सत्यमित्यर्थः । अत्र विपरीतलक्षणया रागान्धस्त्वं गुणरूपादिकं विवेक्तुमेव न जानासि । यतोऽधमामपि तां बहु मन्यस इति व्यज्यते ॥

दुर्लभाभिलाषिणीं स्वगृहवधूं प्रति वैराग्यजननार्थं कोऽपि पुत्रमाह—

सन्तमसन्तं दुक्खं सुहं च जाओ घरस्स जाणन्ति ।
ता पुत्तअ महिलाओ सेसाओँ जरा मनुस्साणम् ॥ १२ ॥

[सदसद्दुःखं सुखं च या गृहस्य जानन्ति ।
ताः पुत्रक महिलाः शेषा जरा मनुष्याणाम् ॥]

गृहस्य गृहपतेः । सद्विद्यमानम् । असदविद्यमानम् । वस्त्विति शेषः । तथा सुखं दुःखं च या जानन्ति ता महिला गृहिणीपदाधिकारिण्यः । अन्यास्तु जराः क्षयहेतुत्वादित्यर्थः ॥

कापि सख्याः शिक्षार्थं कुलवधूवृत्तमाह—

हसिएहिँ उवालम्भा अच्चुवचारेहिँ खिज्जिअव्वाइं ।
अंसूहिँ मण्डणाइं एसो मग्गो सुमहिलाणम् ॥ १३ ॥

[हसितैरुपालम्भा अत्युपचारैः खेदितव्यानि ।
अश्रुभिः कलहा एष मार्गः सुमहिलानाम् ॥]

हसितैर्न तु रोदनैः, उपचारैर्न तु गृहकृत्यपरित्यागेन, अश्रुभिर्न तु वचोभिरिति भावः ॥

जनापवादभयादकृतसंभाषणे प्रेयस्यलमुद्वेगेनेति वदन्तीं दूतीं कापि सप्रणयरोषमाह—

उल्लावो मा दिज्जउ लोअविरुद्ध त्ति णाम कॉऊण ।
सँमुहापडिए को उण वेसेँ वि दिट्ठिं ण पाडेइ ॥ १४ ॥

[उल्लापो मा दीयतां लोकविरुद्ध इति नाम कृत्वा ।
संमुखापतिते कः पुनर्द्वेष्येऽपि दृष्टिं न पातयति ॥]

लोकविरुद्ध इति कृत्वा उल्लापो मा दीयतां नामेत्यन्वयः । नाम कृत्वा नामग्रहणपूर्वकमिति वार्थः । यद्वा परपुरुषसंभाषणं लोकविरुद्धमिति मा क्रियताम्, कथं पुनस्तमद्राक्षीरपि नेति साध्वीं प्रति कुट्टन्या इयमुक्तिः ॥

---

१. 'आम' घ. २. 'शोभना' ग. ३. 'आम' घ., ४. 'करिऊण' ग.

अतिक्रान्तसंकेतसमयां प्रियां प्रति कोऽपि सोद्वेगमाह—

साहीणपिअअमो दुग्गओ वि मण्णइ कअत्थमप्पाणम् ।
पिअरहिओ उण पुहविं वि पाविउण दुग्गओ च्चेअ ॥ १५ ॥

[स्वाधीनप्रियतमो दुर्गतोऽपि मन्यते कृतार्थमात्मानम् ।
प्रियरहितः पुनः पृथिवीमपि प्राप्य दुर्गत एव ॥]

स्वाधीना प्रियतमा यस्येति बहुव्रीहिः । यद्वा किमेवं कृशोऽसीति पृष्टस्येच्छानुरूपां प्रियामलभमानस्य कस्यचिदियमुक्तिः ॥

कामप्यप्राप्तप्रियतमां लोकभयाद्धृदयस्थितं स्नेहं गोपायन्तीं सख्याह—

किं रुवसि किं अ सोअसि किं कुप्पसि सुअणु एक्कमेक्कस्स ।
पेम्मं विसं व विसमं साहसु को रुन्धिउं तरइ ॥ १६ ॥

[किं रोदिषि किं च शोचसि किं कुप्यसि सुतनु एकैकस्मै ।
प्रेम विषमिव विषमं कथय को रोद्धुं शक्नोति ॥]

प्रेमवशाद्दुःखिता भवसि, वृथास्मान्प्रति कोपं मा कृथा इति भावः ॥

अनभ्युपगच्छन्तीमभियोज्यामङ्गीकारयितुं दूती स्वानुभूतानामेवार्थानामनित्यतामाह—

ते अ जुआणा ता गामसंपआ तं च अम्ह तारुण्णम् ।
अक्खाणअं व लोओ कहेहि अम्हे वि तं सुणिमो ॥ १७ ॥

[ते च युवानस्ता ग्रामसंपदस्तच्चास्माकं तारुण्यम् ।
आख्यानकमिव लोकः कथयति वयमपि तच्छृणुमः ॥

तदेवमनित्ये संसारे तथाविधविदग्धवल्लभसमागमसुखं किमिति परिहरसीति भावः ॥

कान्तेन सशपथमनुनीयमानायाः कान्तं प्रत्युद्वेगवादं सखी सखीमाह—

वाहोहभरिअगण्डाहराएँ भणिअं विलक्खहसिरीए ।
अज्ज वि किं रूसिज्जइ सवहावत्थं गअं पेम्मम् ॥ १८ ॥

[बाष्पौघर्भृतगण्डाधरया भणितं विलक्षहसनशीलया ।
अद्यापि किं रुष्यते शपथावस्थां गतं प्रेम ॥]

---

१. 'प्रियारहितः' ग. २. 'प्राप्तो' घ. ३. 'किसाअसि' ग. ४. 'किं कृशासि' ग. ५. 'एकैकस्स' घ. ६. 'बाहोल्लफुरिअ' ग. ७. 'बाष्पार्द्रस्फुरित' ग. ८. 'भरित' घ. ९. 'विलक्षं हसन्त्या' ग.

'बाहोल्लफुरिअगण्डाहराए' इति पाठे 'बाष्पार्द्रस्फुरितगण्डाधरया' इत्यर्थः । शपथेति । केवलं शपथेनैव प्रेम वर्तत इति ज्ञायते, न तु त्वनुभूयत इति भावः ॥

प्रियस्य मन्दस्नेहतां सूचयन्ती सखी सनिर्वेदं सखीमाह—

वण्णअघअलिप्पमुहिं जो मं अइआअरेण चुम्बन्तो ।
एह्लिं सो भूसणभूसिअं पि अलसाअइ छिवन्तो ॥ १९ ॥

[वर्ण[क]घृतलिप्तमुखीं यो मामत्यादरेण चुम्बन्[1] ।
इदानीं स भूषणभूषितामप्यलसायते स्पृशन् ॥]

पूर्वं पुष्पवतीमपि मामत्यादरेण योऽस्प्राक्षीत्स इदानीं शुद्धामपि मां स्पृशत्यपि नेत्यर्थः ॥

कस्याश्चिन्मलिनवस्त्रतादोषं परिहरन्ती दूती वस्त्रस्य रतानुपयोगित्वमाह—

णीलपडपाउअङ्गी त्ति मा हु णं परिहरिज्जासु ।
पट्टंसुअं पि णद्धं रअम्मि अवणिज्जइ च्चेअ ॥ २० ॥

[नीलपटप्रावृताङ्गीति मा खल्वेनां परिहर ।
पट्टांशुकमपि नद्धं रतेऽपनीयत एव ॥]

नद्धं परिहितम् । सहजो गुणः स्त्रीणामुपादेयः, न त्वाहार्य इति भावः ॥

अतिमाने दोषं प्रदर्शयन्ती दूती मानिनीमनुनेतुमाह—

सच्चं कलहे कलहे सुरआरम्भा पुणो णवा होन्ति ।
माणो उण माणंसिणि गरुओ पेम्मं विणासेइ ॥ २१ ॥

[सत्यं कलहे कलहे सुरतारम्भाः पुनर्नवा भवन्ति ।
मानः पुनर्मनस्विनि गुरुकः प्रेम विनाशयति ॥]

कलहानन्तरभाविनि सुरते यद्यपि रसविशेषो लभ्यते तथाप्यतिमानेन प्रेम्णि गते किं सुरतेनेति मुञ्च मानमिति भावः ॥

अगृहीतानुनयविलक्षेण प्रियेणावधीरिता कलहान्तरिता सानुतापं दूतीमाह—

माणुम्मत्ताइ मए अकारणं कारणं कुणन्तीए ।
अद्दंसणेण पेम्मं विणासिअं पोढवाएण ॥ २२ ॥

[मानोन्मत्तया मया अकारणं कारणं कुर्वत्या ।
अदर्शनेन प्रेम विनाशितं प्रौढवादेन ॥]

---

१. 'चुम्बितवान्' ग.

अकारणमिति । अदोषमेव दोषं कल्पयन्त्येत्यर्थः । माननिमित्तं विनैवाग्रहेण निमित्तं संपाद्य मानं विदधत्या मयानुनयन्नपि प्रियो नावलोकितः संप्रत्यदर्शनात्स्नेह एव गतः । कथं तद्दर्शनं भवतीति भावः । प्रौढवादः सप्रतिज्ञप्रत्याख्यानम् ।

कृतापराधमनुनयन्तं कापि सचाटूपालम्भमाह—

अणुऊलं विअ वोत्तुं बहु वल्लह वल्लहे वि वेसे वि ।
कुविअं च पसाएउं सिक्खइ लोओ तुमाहित्तो ॥ २३ ॥

[अनुकूलमेव वक्तुं बहुवल्लभ वल्लभेऽपि द्वेष्येऽपि ।
कुपितं च प्रसादयितुं शिक्षते लोको युष्मत्तः ॥]

सर्वमिदं तव हृदयबाह्यमित्यर्थः ।

मन्दस्नेहस्य कान्तस्याकृतज्ञतां सूचयन्ती कापि सखीमाह—

लज्जा चत्ता सीलं च खण्डिअं अजसघोसणा दिण्णा ।
जस्स कए णं पिअसहि सो च्चेअ जणो जणो जाओ ॥ २४ ॥

[लज्जा त्यक्ता शीलं च खण्डितमयशोघोषणा दत्ता ।
यस्य कृतेन(कृते ननु) प्रियसखि स एव जनो जनो जातः ॥]

जनो वल्लभः । जन उदासीनो जातः ॥

कापि सख्याः शिक्षार्थं कुलवधूवृत्तमाह—

हसिअं अदिट्ठदन्तं भमिअमणिक्कन्तदेहलीदेसम् ।
दिट्ठमणुक्खित्तमुहं एसो मग्गो कुलवहूणम् ॥ २५ ॥

[हसितमदृष्टदन्तं भ्रमितमनिष्क्रान्तदेहलीदेशम् ।
दृष्टमनुत्क्षिप्तमुखमेष मार्गः कुलवधूनाम् ॥]

निष्परिच्छदतया केनापि निन्द्यमानस्य नायकस्यान्यापदेशेन गुणातिशयं दूती नायिकामनुकूलयितुमाह—

धूलिमइलो वि पङ्कङ्किओ वि तणरइअदेहभरणो वि ।
तह वि गेइन्दो[3] गरुअत्तणेण ढक्कं समुव्वहइ ॥ २६ ॥

[धूलिमलिनोऽपि पङ्काङ्कितोऽपि तृणरचितदेहभरणोऽपि ।
तथापि गजेन्द्रो[3] गुरुकत्वेन ढक्कां समुद्वहति ॥]

तस्यैव परं यशोडिण्डिम इति भावः । भरणं पोषणम् । गुरुत्वं परिमाणविशेष उत्कर्षश्च ॥

---

१. 'शिष्यते लोकस्त्वत्त एव' ग. २. 'गअव्विअ' ग. ३. 'गज एव' ग.

विपद्यपि महतामुन्नतचित्तत्वमेवेति सखीं शिक्षयितुं कापि सुभटस्त्रियाश्चौरेण सहोक्तिप्रत्युक्तिकौशलमाह—

करमरि कीस ण गम्मइ को गव्वो जेण मसिणगमनासि।
अद्दिट्ठदन्तहसिरीअ जम्पिअं चोर जाणिहिसि॥ २७॥
[बन्दि किमिति न गम्यते को गर्वो येन मसृणगमनासि।
अदृष्टदन्तहसनशीलया जल्पितं चोर ज्ञास्यसि॥]

करमरी हठहृतमहिला। गमनासीत्यनन्तरमिति चौरेणोक्ते सतीति शेषः। ज्ञास्यसीति। मम प्रिय आगच्छति क्षणादेवास्याविनयस्य फलमनुभविष्यसीति भावः। 'अद्दिट्ठ' इति स्थाने 'दरदिट्ठ' इति क्वचित्पाठः। तत्र 'ईषदृष्टदन्तहसनशीलया' इत्यर्थः॥

कस्याप्यभियोगनिरासार्थं दूती नायिकाया ऋतुकालेऽप्यनवसरमाह—

थोरंसुएहिँ रुण्णं सवत्तिवग्गेण पुप्फवइआए।
भुअसिहरं पइणो पेच्छिऊण सिरलग्गतुप्पलिअम्॥ २८॥
[स्थूलाश्रुभी रुदितं सपत्नीवर्गेण पुष्पवत्याः।
भुजशिखरं पत्युः प्रेक्ष्य शिरोलग्नवर्णघृतलिप्तम्॥]

रजस्वलामपि तामसौ न त्यजतीति भावः। तुप्पं वर्णघृतं तेन लिप्तं तुप्पलिअम्॥

अनुरागातिशयात्कोऽपि रजस्वलामाह—

लोओ जूरइ जूरउ वअणिज्जं होइ होउ तं णाम।
एहि णिमज्जसु पासे पुप्फवइ ण एइ मे णिद्दा॥ २९॥
[लोकः खिद्यते खिद्यतु वचनीयं भवति भवतु तन्नाम।
एहि निमज्ज पार्श्वे पुष्पवति नैति मे निद्रा॥]

वचनीयं परीवादः॥

काप्यनुरागातिशयं व्यञ्जयन्ती कमपि युवानमाह—

जं जं पुलएमि दिसं पुरओ लिहिअ व्व दीससे तत्तो।
तुह पडिमापडिवाडिं वहइ व सअलं दिसाअक्कम्॥ ३०॥
[यां यां प्रलोकयामि दिशं पुरतो लिखित एव दृश्यसे तत्र।
तव प्रतिमापरिपाटीं वहतीव सकलं दिशाचक्रम्॥]

प्रतिमा प्रतिबिम्बम्। परिपाटी परम्परा॥

---

१. 'दरदिट्ठ' ग. २. 'बन्दिस्त्रि' घ. ३. 'दरदृष्ट' ग. ४. 'निषीद' ग-घ.

एकत्रानुभूतव्यसनस्तत्सदृशमन्यदभिलषितमप्युपादातुं बिभेतीत्यन्यापदेशेन कोऽप्याह—

ओसरइ धुणइ साहं खोक्खामुहलो पुणो समुल्लिहइ ।
जम्बूफलं ण गेह्णइ भमरो त्ति कई पढमडक्को ॥ ३१ ॥

[अपसरति धुनोति शाखां खोखामुखरः पुनः समुल्लिखति ।
जम्बूफलं न गृह्णाति भ्रमर इति कपिः प्रथमदष्टः ॥]

खोखा ध्वनिविशेषः । डक्को दष्टः ॥

अभिमतमपि मूढः प्रतिकूलबुद्ध्या परिहरतीत्यन्यापदेशेन कोऽपि सहचरमाह—

ण छिवइ हत्थेण कई कण्डूइभएण पत्तलणिउञ्जे ।
दरलम्बिअगोच्छकइकच्छुसच्छहं वाणरीहत्थम् ॥ ३२ ॥

[न स्पृशति हस्तेन कपिः कण्डूतिभयेन पत्रलनिकुञ्जे ।
ईषल्लम्बितगुच्छकपिकच्छुसदृशं वानरीहस्तम् ॥]

पत्रलः पत्रबहुलः । कपिकच्छुः शूकशिम्बिः । प्राकृते पूर्वनिपातानियमात्कपिकच्छुगुच्छसदृशमित्यर्थः ॥

नायिकाया विरहदुःखं सूचयन्ती दूती नायकमाह—

सरसा वि सूसइ च्चिअ जाणइ दुक्खाइँ मुद्धहिअआ वि ।
रत्ता वि पण्डुर च्चिअ जाआ वरई तुह विओए ॥ ३३ ॥

[सरसापि शुष्यत्येव जानाति दुःखानि मुग्धहृदयापि ।
रक्तापि पाण्डुरैव जाता वराकी तव वियोगे ॥]

रस आर्द्रता इच्छा च । मुग्धत्वमचेतनत्वमितिकर्तव्यताबुद्धिराहित्यं च । रक्तत्वं रक्तवर्णता प्रीतिविशेषश्च । अत्र विरोधालंकारेण त्वद्विरहे सर्वमेव सुखसाधनं दुःखसाधनं जातं तस्या इति वस्तु व्यज्यते ॥

कामपि गलितयौवनां शीधुपानेन जातमन्मथविकारां शरद्वर्णनच्छलेनोपहसन्नागरिकः सहचरमाह—

आरुहइ जुण्णअं खुज्जअं वि जं उअह वल्लरी तउसी ।
णीलुप्पलपरिमलवासिअस्स सरअस्स सो दोसो ॥ ३४ ॥

---

१. 'मुखरः समुल्लसति' घ. २. 'खोखा वानरशब्दः' इति कुलबालदेवः. ३. 'कण्डूअण' ख-ग. ४. 'कण्डूयन' ग-घ. ५. 'दरलम्बित' ग-घ. ६. 'सच्छवि' घ.

[आरोहति [1]जीर्णं कुब्जकमपि यत्पश्यत [2]वेल्लनशीला त्रपुसी ।
नीलोत्पलपरिमल[3]वासितायाः शरदः स दोषः ॥]

वेल्लनशीला वेष्टनशीला । पक्षे वेष्टिताख्यालिङ्गनशीला । त्रपुसी कर्कटीविशेषः । दोषो विकारः । कर्कट्याः पुनर्नवीकरणं जरत्याश्च युवतीकरणं विकारः । शरत्काले कर्कटीलता यदेव पुरःस्थितं शुष्कमार्द्रं सरलं वक्रं वा तदेवारोहति । तथा लतेव लता नायिका वृद्धं तरुणं वा यद्भजते नायमस्या दोषः । किं तु सरअस्स सरकस्य इक्षुमयस्य । 'सरकोऽस्त्री शीधुपाने शीधुपात्रेक्षुशीधुनोः' इति मेदिनी ॥

पूर्वमनुभूतमधूत्सवा कापि प्रियविरहिता पुनः प्रवृत्ते मधूत्सवे सखीमाह—

उप्पहपहाविहजणो पविजिम्हिअकलअलो पहअतूरो ।
अव्वो सो च्चेअ छणो तेण विणा गामडाहो व्व ॥ ३५ ॥

[उत्पथप्रधावितजनः प्रविजृम्भितकलकलः प्रहततूर्यः ।
[4]दुःखं स एव क्षणस्तेन विना ग्रामदाह इव ॥]

उत्पथेति । उत्सवतरलतया संभ्रमाच्चेति भावः । अव्वो इति दुःखाभिनये आश्चर्ये वा । क्षणो मधूत्सवः ॥

खलसङ्गनिषेधाय कापि सखीमाह—

उल्लावन्तेण ण होइ कस्स पासट्ठिएण ठड्ढेण ।
सङ्का मसाणपाअवलम्बिअचोरेण व खलेण ॥ ३६ ॥

[[5]उल्लापयमानेन न भवति कस्य पार्श्वस्थितेन स्तब्धेन ।
शङ्का श्मशानपादपलम्बितचोरेणेव खलेन ॥]

उल्लापयमानेन संभाषमाणेन, पक्षेऽभिभवता । पार्श्वस्थितेन संनिहितेन, पक्षे पासट्ठिएण पाशस्थितेन । स्तब्धेन अहंकारात्, पक्षे प्राणवायुविरहात् । शङ्का वितर्कः, पक्षे भयम् ॥

प्रोषितभर्तृकां प्रियसखीं समाश्वासयितुं सखी पितृभगिनीमाह—

असमत्तगुरुअकज्जे एह्लिं पहिए धरं णिअत्तन्ते ।
णवपाउसो पिउच्छा हसइ व कुडअट्टहासेहिं ॥ ३७ ॥

---

१. 'जीर्णखर्जूरमपि' ग. २. 'वेपमाना दुन्दुरिः' ग, 'वल्लरी त्रपुसी' घ. ३. 'वासितस्य सरसः को दोषः' घ. ४. 'सूचितः स एव' घ. ५. 'उल्लाप्यमानेन' ग, 'उल्लापन्तेन' घ.

[असमाप्तगुरुककार्ये इदानीं पथिके गृहं प्रतिनिवर्तमाने ।
नवप्रावृट् पि[1]तृष्वसः हसतीव कुटजाट्टहासैः ॥]

मच्चिह्नदर्शनाद्भीतः प्रियाविरहं सोढुमशक्नुवन्नकृतकार्य एवाहं गृहं प्रति प्रस्थित इति हसतीवेत्यर्थः । कुटजकुसुमान्येवाट्टहासः ॥

कोऽपि वर्षोपक्रमे गृहगमनाय पथिकं त्वरयितुमाह—

दट्ठूण उण्णमन्ते मेहे आमुक्कजीविआसाए ।
पहिअघरिणीअ डिम्भो ओरुण्णमुहीअ सच्चविओ ॥ ३८ ॥

[दृष्ट्वा उन्नमतो मेघानामुक्तजीविताशाया ।
पथिकगृहिण्या डिम्भोऽ[2]वरुदितमुख्या [3]दृष्टः ॥]

अवरुदितेति । का गतिरस्य भवित्री केन वायं पालयितव्य इत्यादि चिन्तयेति भावः ॥

कलहान्तरितया कोपोज्झितभूषणयापि न त्यक्तानि वलयानीति तस्याः सुज्ञतां विरहकृशतां च सूचयन्ती सखी तत्कान्तमाह—

अविहवलक्खणवलअं ठाणं णेन्तो पुणो पुणो गलिअम् ।
सहिसत्थो च्चिअ माणंसिणीअ वलआरओ जाओ ॥ ३९ ॥

[[4]अविधवालक्षणवलयं स्थानं [5]नयन्पुनःपुनर्गलितम् ।
[6]सखीसार्थ एव मनस्विन्या [7]वलयकारको जातः ॥]

वलयकारको वलयपरिधापकः ॥

कोऽपि दुर्गतविरहिवध्ववस्थाप्रकटनेन प्रावृषि पथिकं त्वरयितुमाह—

पहिअवहू [8]विवरन्तरगलिअजलोल्ले घरे अणोल्लं पि ।
उद्देसं अविरअवाहसलिलणिवहेण उल्लेइ ॥ ४० ॥

[पथिकवधूर्वि[9]वरान्तरगलितजलार्द्रे गृहेऽनार्द्रमपि ।
[10]उद्देशमविरतबाष्पसलिलनिवहेनार्द्रयति ॥]

उद्देशं स्थानम् ॥

---

१. 'पीयूषा' घ. २. 'अवनतमुख्या' ग. ३. 'सत्यायितः' ग, 'संस्थापितः' घ. ४. 'अवैधव्य' ग, 'अविभव' घ. ५. 'नीयमानं' ग. ६. 'सखीहस्तः' ग-घ. ७. 'वलयाकारो' ग, 'वलयारजो' घ. ८. 'कुड्डन्तर' ख-ग. ९. 'कुड्यान्तर' ग-घ. १०. 'प्रदेश' ग.

अनुनेतुमागतं प्रियवादिनं कान्तं कलहान्तरिता सपरितोषमाह—

जीहाइ कुंणन्ति पिअं भंवन्ति हिअअम्मि णिव्वुइं काउम् ।
पीडिज्जन्ता वि रसं जणन्ति उच्छू कुलीणा अ ॥ ४१ ॥

[जिह्वायां (पक्षे—जिह्वया) कुर्वन्ति प्रियं भंवन्ति हृदये निर्वृतिं कर्तुम् ।
पीड्यमाना अपि रसं जनयन्तीक्षवः कुलीनाश्च ॥]

जिह्वायामिति मधुरत्वात्प्रियंवदत्वाच्च । भवन्ति प्रभवन्ति । निर्वृतिं संतापस्योद्वेगस्य च प्रशमम् । पीड्यमाना दन्तेन निष्ठुरवादेन च । रसं द्रवं प्रीतिं च ॥

वसन्तागमं प्रति विप्रतिपद्यमानां श्वश्रूं वधूराह—

दीसइ ण चूअमउलं अत्ता ण अ वाइ मलअगन्धवहो ।
पत्तं वसन्तमासं साहइ उक्कण्ठिअं वेअं ॥ ४२ ॥

[दृश्यते न चूतमुकुलं श्वश्रु न च वाति मलयगन्धवहः ।
प्राप्तं वसन्तमासं कथयत्युत्कण्ठितमेवं ॥]

उत्कण्ठितमुत्कण्ठा । 'उक्कण्ठिअं चेअं' इति पाठे 'उत्कण्ठितं चेतः' इत्यर्थः ॥

आश्वसिहि प्रोषितपतिके न जातो वसन्तारम्भ इति वदन्तीं सखीं वसन्तागमसूचकं सहकाराङ्कुरोद्गमं प्रतिपादयन्ती नायिका आह—

अम्बवणे भमरउलं ण विणा कज्जेण ऊसुअं भमइ ।
कत्तो जलणेण विणा धूमस्स सिहाउ दीसन्ति ॥ ४३ ॥

[आम्रवने भ्रमरकुलं न विना कार्येणोत्सुकं भ्रमति ।
कुतो ज्वलनेन विना धूमस्य शिखा दृश्यन्ते ॥]

कुसुमेन विना नालिनो भ्रमन्ति । जाते चाम्रकुसुमे प्रवृत्त एव वसन्त इति भावः ॥

कथमनलंकृतामेवैनां बहुमन्यस इति वदन्तं सहचरं विदग्धः कश्चिदाह—

दइअकरग्गहलुलिओ धम्मिल्लो सीहुगन्धिअं वअणम् ।
मअणम्मि एत्तिअं चिअ पसाहणं हरइ तरुणीणम् ॥ ४४ ॥

[दयितकरग्रहलुलितो धम्मिल्लः सीधुगन्धितं वंदनम् ।
मंदने एतावदेव प्रसाधनं हरति तरुणीनाम् ॥]

मदने वसन्तोत्सवे । मदन इति निमित्तसप्तमी वा । मदननिमित्तमित्यर्थः । एतावदेवेति किमन्यैः सुरतानुपयोगिभिर्भारभूतैरिति भावः । किमलंकारेण । शीघ्रं कान्तमभिसरेति दूतीवचनमिति कश्चित् ॥

---

१. 'करेन्ति' ख-ग. २. 'हरन्ति' ख. ३. 'हरन्ति हृदयं' घ. ४. 'चेअं' ख. ५. 'आगतं च' ग. ६. 'चेतः' ग-घ. ७. 'वचनं' घ. ८. 'मदनोऽप्येतावदेव' ग.

ग्राम्यस्त्रियोऽप्यत्र रमणीया भवन्तीति वसन्तं स्तुवन्कोऽपि सहचरमाह—

गामतरुणीओ˘ हिअअं [1]हरन्ति छेआणँ थणहरिल्लीओ।

मअणे [2]कुसुम्भरञ्जिअकञ्चु[इ]आहरणमेत्ताओ ॥ ४५ ॥

[ग्रामतरुण्यो हृदयं हरन्ति वि[3]दग्धानां [4]स्तनभारवत्यः।

[4]मदने कुसुम्भरागयुक्तकञ्चुकाभरणमात्राः ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानियमात्कञ्चुकमात्राभरणा इत्यर्थः। एतादृश्यो ग्रामतरुण्योऽपि स्पृहणीया भवन्ति किमुत परार्ध्यभूषणभूषिताः प्रमदा इति भावः॥

कोऽप्यनभ्यस्तप्रवासस्याभिनवपथिकस्य विरहवैधुर्यं कथयन्प्रवासनिषेधार्थं तमाह—

आलोअन्त दिसाओ ससन्त जम्भन्त गन्त रोअन्त।

मुच्छन्त पडन्त खलन्त पहिअ किं ते पउत्थेण ॥ ४६ ॥

[[5]आलोकयन्दिशः श्वसञ्जृम्भमाण [6]गायन्रुदन्।

[7]मूर्छन्पतन्स्खलन्पथिक [8]किं ते [9]प्रवसितेन ॥]

चकितत्वाद्दिशोऽवलोकयन्, प्रियास्मरणाच्छ्वसन्, मदनायासेन जृम्भमाण, दुःखविनोदाय गायन्, पुनश्च निर्वेदाद्रुदन्, तदेकासक्तचित्तत्वान्मूर्च्छादिविकारं प्राप्नुवन् हे पथिक, ते प्रवसितेन प्रवासेन किं फलम्। गतोऽप्यकृतकृत्य एवागमिष्यसि। यतः संप्रत्येव तवेयमवस्था किंचिद्दूरगमने तु कीदृशवस्था भविष्यतीति न जाने। तस्मान्निवर्तस्वेति भावः।

सख्या रहोवृत्तमनुसंधातुं गता कथमियच्चिरेणागतासीति सख्या पृष्टा सखी तामाह—

दट्ठूण तरुणसुरअं विविहविलासेहिँ करणसोहिल्लम्।

दीओ वि तग्गअमणो गअं पि तेल्लं ण लक्खेइ ॥ ४७ ॥

[दृष्ट्वा तरुणसुरतं विविधविलासैः [10]करणशोभितम्।

दीपोऽपि तद्गतमना गतमपि तैलं न लक्षयति ॥]

विविधविलासैरालिङ्गनचुम्बनादिभिरुपलक्षितम्। करणैरुत्तानकतिर्यग्विपरीताद्यासनबन्धैः कामशास्त्रोक्तैः शोभितम्। तरुणी च तरुणश्च तरुणौ। 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषः। तयोः सुरतम्। अचेतनो दीपोऽपि यत्र स्पृहयालुस्तत्र मद्विधो जनः कथं कौतुकाद्विरमतीति भावः॥

---

१. 'हरन्ति पीवरथणह रुल्लीउ' ग. २. 'कुसुम्भराइल्ल' ग. ३. 'छेकानां' घ. ४. 'प्रौढस्तनभाराः' ग. ४. 'मदयन्ति कुसुम्भरक्तकञ्चुकमात्राभरणाः' ग, 'मन्ये कुसुम्भरञ्जितकञ्चुकिकाहरणमात्राः' घ. ५. 'आलोकयमान' ग. ६. 'गच्छन्' ग. ७. 'पृच्छन्' घ. ८. 'किं त्वया' ग. ९. 'प्रोषितेन' ग-घ. १०. 'करणसौहित्यम्' घ.

प्रौढकामिनीमुत्कण्ठयितुं दूती सवैदग्ध्यं नायकस्य सुरतमल्लत्वमन्यापदेशेनाह—

पुणरुत्तकरप्फालणउहअतडुल्लिहणवड्डणसआइं ।
जूहाहिवस्स माए पुणो वि जइ णम्मआ सहइ ॥ ४८ ॥

[पुनरुक्तकरास्फालनोभयतटोल्लिखनपीडनशतानि[1] ।
यूथाधिपस्य मातः पुनरपि यदि नर्मदा सहते[2] ॥]

पुनरुक्तं पुनःपुनर्यत्करेण शुण्डादण्डेन हस्तेन चास्फालनं जलादौ पृष्ठादौ च । उभयतटं कूलद्वयं पार्श्वद्वयं च । यूथाधिपस्य गजमुख्यस्य गोष्ठीनायकस्य च । मातरित्याश्चर्यपरं संबोधनम् । नर्मदा नदी नर्म सुखं ददातीति व्युत्पत्त्या क्रीडानुकूला नायिका च । यद्वा सुन्दरि, कान्तसमीपं गच्छेति वदन्तीं सखीं प्रति नायिकाया इयमुक्तिः । गच्छेयमहं यदि तस्य सुरतदुर्विदग्धस्य स्तनतटनखक्षतोरस्ताडनमर्दनशतानि पुनरपि सहेयमिति भावः ॥

पूर्वसंकेतितस्य कार्पासीक्षेत्रस्य सापायतां स्वगृहस्यैव स्वच्छन्दप्रचारयोग्यतां च जारं श्रावयन्ती कुलटा सोद्वेगमाह—

वोडसुणओ विअण्णो अत्ता मत्ता पई[3] वि अण्णत्थो ।
फलिहं व मोडिअं महिसएण को तस्स साहेउ ॥ ४९ ॥

[दुष्टशुनको विपन्नः श्वश्रूर्मत्ता पतिरप्यन्यस्थः ।
कार्पास्यपि भग्ना महिषकेण कस्तस्य कथयतु ॥]

वोडो दुष्टश्छिन्नकर्णो वा । 'वुड्ढसुणओ' इति पाठे वृद्धशुनक इत्यर्थः । अन्यस्थो देशान्तरस्थः । कार्पासी कर्पासवाटिका । तस्य निजपत्युः । 'अत्ता मत्ता पई वि अण्णत्थो' इति स्थाने 'अत्ता मत्तो पई णवसुराए' इति क्वचित्पाठः । तत्र श्वश्रु इति संबोधनम् । पतिर्नवसुरया मत्त इत्यर्थः ॥

कान्तेन स्वमुखेन दत्ता मदिरा मानिन्या मानमपनयतीति शिक्षयन्नागरिकः सहचरमाह—

सकअग्गहरहसुत्ताणिआणणा पिअइ पिअमुहविइण्णम् ।
थोअं थोअं रोसोसहं व उअ माणिणी मइरम्[4] ॥ ५० ॥

[सकचग्रहरभसोत्तानितानना[5] पिबति प्रियमुखवितीर्णाम् ।
स्तोकं स्तोकं रोषौषधमिव पश्य[6] मानिनी मदिराम् ॥]

---

१. 'कर्षणशतानि' घ. २. 'हसते' घ. ३. 'पई णवसुराए' ख. ४ 'सरअं' ख-ग. ५. 'सकचग्रहोन्नामितानना पिबत्याननविकीर्णम्' घ. ६. 'पश्यत मानिनी सरकम्' घ.

सकचग्रहं रभसेनोत्तानितमाननं यस्याः सा । 'सरअं' इति पाठे सरकमिक्षुमद्य-मित्यर्थः ॥

नार्तस्तत्त्वविचारक्षमो भवतीति मध्याह्नवर्णनच्छलेन प्रदर्शयन्नागरिकः सहचरमाह—

गिरसोत्तो त्ति भुअंगं महिसो जीहाइ लिहइ संतत्तो ।
महिसस्स कह्णवत्थरझैरो त्ति सप्पो पिअइ लालम् ॥ ५१ ॥

[गिरिस्रोत इति भुजंगं महिषो जिह्वया लेढि संतप्तः ।
महिषस्य कृष्णप्रस्तरझर इति सर्पः पिबति लालाम् ॥]

महिषस्य लालामिति संबन्धः ॥

शारिकाया रहस्याख्यानतः सलज्जा कुलवधूर्मातुलानीमाह—

पञ्जरसारिं अत्ता ण णेसि किं एत्थ रइहराहिन्तो ।
वीसम्भजम्पिआइं एसा लोआणँ पअडेइ ॥ ५२ ॥

[पञ्जरशारीं मातुलानि न नयसि किमत्र रतिगृहात् ।
विस्रम्भजल्पितान्येषा लोकानां प्रकटयति ॥]

पञ्जरशारीं पञ्जरबद्धां शारिकाम् । विस्रम्भजल्पितानि सुरतसमयोदितवचनानि । लोकानां लोकेभ्यः । प्रकटयति श्रावयति ॥

दन्तधावनार्थं करञ्जनिकुञ्जपल्लवभञ्जकं भिक्षार्थमटन्तं धार्मिकं भीषयन्ती कुलटा तन्निषेधार्थमाह—

एद्दहमेत्ते गामे ण पडइ भिक्खा त्ति कीस मं भणसि ।
धम्मिअ करञ्जभञ्जअ जं जीअसि तं पि दे बहुअम् ॥ ५३ ॥

[एतावन्मात्रे ग्रामे न पतति भिक्षेति किमिति मां भणसि ।
धार्मिक करञ्जभञ्जक यज्जीवसि तदपि ते बहुकम् ॥]

द्व्यर्थवचनविन्यासेनानुरागं व्यञ्जयन्ती कुलटा कृतगुडवेतनमिक्षुपीडकमाह—

जन्तिअ गुलं विमग्गसि ण अ मे इच्छाइ वाहसे जन्तम् ।
अणरसिअ किं ण आणसि ण रसेण विणा गुलो होइ ॥ ५४ ॥

[यान्त्रिक गुडं विमार्गयसे न च ममेच्छया वाहयसि यन्त्रम् ।
अरसिक किं न जानासि न रसेन विना गुडो भवति ॥]

यान्त्रिको यन्त्रकर्मकारकः । यन्त्रं चेक्षुपीडोचितं सुरतोचितं च । रसो द्रवोऽनुरा-

---

१. 'झरं ति' क-ख. २. 'श्वश्रूः' घ. ३. 'एतावन्मात्रेऽपि' क. ४. 'कीदृशं' घ. ५. 'गुलम्ह मग्गसि' क-ख. ६ 'अन्यरसिक' घ. ७. 'गुणो' घ.

गश्च। अरसिक द्रवस्यानुरागस्य च विधानानभिज्ञ। रसेन द्रवेणानुरागेण च विना गुडो न भवति नोत्पद्यते न प्राप्यते चेत्यर्थः। अतो मय्यनुरज्यस्वेति भावः॥

स्नानोत्तीर्णां श्यामाङ्गीं सानुरागं वर्णयन्कश्चित्सहचरमाह—

पत्तणिअम्बप्फंसा ह्णाणुत्तिण्णाएँ सामलङ्गीए।
जलबिन्दुएहिँ चिहुरा रुअन्ति बन्धस्स व भएण॥ ९५॥

[प्राप्तनितम्बस्पर्शाः स्नानोत्तीर्णायाः श्यामलाङ्ग्याः।
जलबिन्दुकैश्चिकुरा रुदन्ति बन्धस्येव भयेन॥]

स्नानावसरे लम्बमानाश्चिकुराः प्राप्तसुन्दरीनितम्बस्पर्शसुखाः पुनर्बन्धनेन तत्स्पर्शसुखविच्छेदं शङ्कमाना गलज्जलबिन्दुच्छलेन रुदन्तीवेति भावः॥

निर्भयाभिसारयोग्यतां जारं प्रति सूचयन्ती कुलटा वटप्रशंसामाह—

गामङ्गणणिअडिअकह्णवक्ख वड तुज्झ दूरमणुलग्गो।
तिंत्तिल्लपडिक्खअभोइओ वि गामो ण उव्विग्गो॥ ९६॥

[ग्रामाङ्गणनिगडितकृष्णपक्ष वट तव दूरमनुलग्नः।
दौःसाधिकप्रतीक्षकभोगिकोऽपि ग्रामो नोद्विग्नः॥]

ग्रामाङ्गणे निगडितो बद्धः। सर्वदा स्थापित इति यावत्। तत्कार्यकरत्वात्कृष्णपक्षो येनेति वटविशेषणम्। निबिडच्छायत्वेनान्धकारबाहुल्यात्। तव दूरमनुलग्न इति त्वयाच्छादितत्वादिति भावः। दौःसाधिकः प्रतीक्षको यस्य भोगिकस्य स दौःसाधिकप्रतीक्षकः। तादृशो भोगिको भोगासक्तः कामुकजनो यस्मिन्। एतादृशोऽपि ग्रामो नोद्विग्नः। अनुपलक्षिताभिसारतया राजभयशून्यत्वात्। तित्तिल्लो दौःसाधिकः। 'तन्तिल्लपडिखरभोइओ वि' इति पाठे तु चिन्तापरासहनभोक्तृकोऽपि। तन्तिश्चिन्ता तद्युक्तः प्रतिखरोऽसहनो भोक्ता ग्रामाधिकारी यत्रेत्यर्थः। तथा च यद्यप्येतस्य ग्रामस्य प्रभुरतितीक्ष्णो न्यायान्वेषणतत्परश्च तथापि त्वत्प्रसादाद्ग्रामस्थः कुलटाजनो नोद्विजत इति भावः॥

कापि पतिं श्रावयन्ती सपत्न्याः सोपालम्भं दुश्चरितमाह—

सुप्पं डड्ढं चणआ ण भज्जिआ सो जुआ अइक्कन्तो।
अत्ता वि घरे कुविआ भूआणँ व वाइओ वंसो॥ ९७॥

[शूर्पं दग्धं चणका न भृष्टाः स युवातिक्रान्तः।
श्वश्रूरपि गृहे कुपिता भूतानामिव वादितो वंशः॥]

१. 'उत्तिण्णतिव्वकरभो इओ वि' ख. २. 'गलित' ग; 'निपतित' घ. ३. 'तत्त्वज्ञप्रतिपक्षभोगिकोऽपि' ग; 'उत्तीर्णतीव्रकरभो इतोऽपि' घ. 'दौःसाधिको द्वारपालः' इति त्रिकाण्डशेषः. ४. 'सूर्पो दग्धः' ग. ५. 'च' ग.

स इति । यं द्रष्टुं निर्गता सोऽपीत्यर्थः । भूतानां श्रुतिविकलानाम् । तथा च बधिराणामग्रे वंशवादनवत्सर्वं तस्याश्चेष्टितं व्यर्थमेव संवृत्तमिति भावः ॥

निह्नुतमप्यर्थं विदग्धा बुध्यन्त इति बोधयन्नागरिकः सहचरमाह—

पिसुणेन्ति कामिणीणं जललुक्कपिआवऊहणसुहेल्लिम् ।
कण्डइअकवोलुप्फुल्लणिच्चलच्छीइँ वअणाइं ॥ ५८ ॥

[पिशुनयन्ति[1] कामिनीनां जलनिलीनप्रियावगूहनसुखकेलिम्[2] ।
कण्टकितकपोलोत्फुल्लनिश्चलाक्षीणि वदनानि[4] ॥]

पिशुनयन्ति सूचयन्ति जलनिमग्नस्य प्रियस्य यदवगूहनमालिङ्गनं तेन यत्सुखं तद्रूपां केलिमित्यर्थः । कण्टकितौ संजातपुलकौ कपोलौ येषां तानि । तथा हर्षविशेषादुत्फुल्ले स्तम्भाख्येन सात्त्विकभावेन निश्चले चाक्षिणी येषु तानि वदनानि ॥

वनमयूरलसितं संकेतितलतागृहमहं गता, त्वं तु न गत इति जारं श्रावयन्ती कुलटा वर्षाप्रशंसामाह—

अहिणवपाउसरसिएसु सोॅहइ साआइएसु दिअहेसु ।
रहसपसारिअगीवाणँ णच्चिअं मोरवुन्दाणम् ॥ ५९ ॥

[अभिनवप्रावृड्रसितेषु शोभते श्यामायितेषु[5] दिवसेषु ।
रभसप्रसारितग्रीवाणां नृत्यं मयूरवृन्दानाम् ॥]

अभिनवानि प्रावृषो रसितानि मेघगर्जितानि येषु तेषु । मेघान्तरितभास्करतया श्यामायितेषु रात्रिसदृशेषु दिनेषु नृत्यं शोभत इति संबन्धः । दिवैव संकेतस्थानस्याभिसारयोग्यतां प्रतिपादयन्त्या दूत्या इयमुक्तिरिति कश्चित् ॥

महिषशालायां रममाणा कापि जारोत्साहनाय दोषं गुणीकृत्याह—

महिसक्खन्धविलग्गं घोलइ सिङ्गाहअं सिमिसिमन्तम् ।
आहअवीणाझंकारसद्दमुहलं मसअवुन्दम् ॥ ६० ॥

[महिषस्कन्धविलग्नं घूर्णते[6] शृङ्गाहतं सिमसिमायमानम्[7] ।
आहतवीणाझंकारशब्दमुखरं मशकवृन्दम् ॥]

घूर्णते भ्रमति । सिमसिमायमानमित्यनुकरणम् । सिमसिमशब्दं कुर्वदित्यर्थः । आहताया वीणाया इव यो झंकारः शब्दस्तेन मुखरम् ॥

---

१. 'सूचयन्ति' ग. २. 'जललवोत्कम्पितावरोहणसक्रीडम्' घ. ३. 'क्रीडा' ग. ४. 'कन्दलितकपोलोत्फुल्लनित्यलक्ष्मीकानि' घ. ५. 'श्यामायमानेषु' ग; 'सामाजिकेषु' घ. ६. 'धुवते' घ. ७. 'सिमसिमायन्तम्' ग; 'सिमसिमन्तम्' घ.

कुमुदसरस्तीरलतागृहे चन्द्रोदयपर्यन्तमहं स्थितः, त्वं तु न गतेति कुलटां श्रावयन्कश्चिदाह—

रेहन्ति कुमुअदलणिच्चलट्ठिआ मत्तमहुअरणिहाआ ।
ससिअरणीसेसपणासिअस्स गण्ठि व्व तिमिरस्स ॥ ६१ ॥

[राजन्ते [१]कुमुददलनिश्चलस्थिता मत्तमधुकरनि[२]कायाः ।
शशिकरनिःशेष[३]प्रणाशितस्य [४]ग्रन्थय इव तिमिरस्य ॥]

शालिक्षेत्रे शुकपतनशङ्कां सूचयन्ती शालिगोपी सुरतसत्वरं जारमन्यमनस्कं कर्तुमाह—

उअह तरुकोडराओ णिक्कन्तं पुंसुआणँ रिञ्छोलिम् ।
सरिए जरिओ व्व दुमो पित्तं व सलोहिअं वमइ ॥ ६२ ॥

[पश्यत तरुकोटरान्निष्क्रान्तां पुं[५][६]शुकानां पङ्क्तिम् ।
शरदि ज्वरित इव द्रुमः पित्तमिव सलोहितं वमति ॥]

रममाणस्य जारस्य भयत्वरापनयनार्थं दुर्दिनाभिसारिका दुर्दिनानुबन्धलिङ्गमाह—

धाराधुव्वन्तमुहा लम्बिअवक्खा णिउञ्चिअग्गीवा ।
वइवेढनेसु काआ सूलाहिण्णा व्व दीसन्ति ॥ ६३ ॥

[[७]धाराधाव्यमानमुखा लम्बितपक्षा निकुञ्चितग्रीवाः ।
वृतिवेष्टनेषु काकाः शूलाभिन्ना इव दृश्यन्ते ॥]

ऊर्ध्वप्रसारितशूलाग्राकारचञ्चुत्वाच्छूलेना समन्ताद्भिन्ना इवेत्यर्थः । एते च दुर्दिनस्य चिरकालानुवृत्तिसूचका इति भावः ॥

वल्लभसंभाषणविमुखीं कलहान्तरितां शिक्षयन्ती काचिदाह—

ण वि तह अणालवन्ती हिअअं दूमेइ माणिणी अहिअम् ।
जह दूरविअम्भिअगरुअरोसमज्झत्थभणिएहिं ॥ ६४ ॥

[[८]नापि तथानालपन्ती हृदयं [९]दुनोति मानिन्यधिकम् ।
यथा दूरविजृम्भितगुरुकरोषमध्यस्थभणितैः ॥]

रोषपूर्वकाणि यानि मध्यस्थभणितान्युदासीनवचनानि तैरित्यर्थः । तदुक्तं मातृगुप्ताचार्यैः—'निष्ठुराणि न वक्तव्यो नातिक्रोधं च दर्शयेत् । न वाक्यैर्वाच्यसंमिश्रैरुपालभ्यो मनोरमः ॥' इति ॥

---

१. 'कुसुम' घ. २. 'निव्रीताः' ग; 'निकराः' घ. ३. 'प्रशमितस्य' ग. ४. 'ग्रन्थिरिव' घ. ५. 'निष्क्रामति शुकशतानां' ग. ६. 'प्रोञ्छितानां रिञ्छोलिम्' घ. ७. 'धाराधरोन्मुखाः' घ. ८. 'न वितथमनालपन्ती' घ. ९. 'दुर्मनायते' ग.

वर्षासु प्रियतमाविनाशमाशङ्कमानं पथिकमाश्वासयंस्तत्सहचर आह—

गन्धं अग्घाअन्तअ पक्ककलम्बाणँ वाहभरिअच्छ ।

आससु पहिअजुआणअ घरिणिमुहं मा ण पेच्छिहिसि ॥ ६५ ॥

[गन्धम[1]माजिघ्रन्पक्वकदम्बानां बाष्पभृ[2]ताक्ष ।

आश्वासिहि प[3]थिकयुवन् गृहिणीमुखं मा न प्रेक्षिष्यसे ॥]

न प्रेक्षिष्यस इति मा । किं तु प्रेक्षिष्यस एवेत्यर्थः ॥

गर्जितश्रवणशङ्कितप्रियतमाविनाशः पथिको जलधरमाह—

गज्ज महं चिअ उवरिं सव्वत्थामेण लोहहिअअस्स ।

जलहर लम्बालइअं मा रे मारेहिसि वराइम् ॥ ६६ ॥

[गर्ज ममैवोपरि सर्वस्थाम्ना लो[4]हहृदयस्य ।

जलधर ल[5]म्बालकिकां मा रे मा[6]रयिष्यसि वराकीम् ॥]

सर्वस्थाम्ना सर्वबलेन । रे इति संबोधनम् । लोहवत्कठोरहृदयत्वात्त्वद्गर्जनं सोढुमहं समर्थः । सा पुनः शिरीषादपि मृद्वङ्गी कथं जीविष्यतीति भावः ॥

हेमन्तोपक्रमवर्णनच्छलेन शालिक्षेत्रस्याभिसारयोग्यतां श्रावयन्ती कुलटा काचिदाह—

पङ्कमइलेण छीरेक्कपाइणा दिण्णजाणुवडणेण ।

आनन्दिज्जइ हलिओ पुत्तेण व सालिछेत्तेण ॥ ६७ ॥

[पङ्कमलिनेन क्षीरैकपायिना दत्तजानुर्पतनेन ।

[9]आनन्द्यते हालिकः पुत्रेणेव शालिक्षेत्रेण ॥]

क्षीरं तण्डुलारम्भकं जलं दुग्धं च । जानु ऊरुपर्व उपचाराद्धान्यनालग्रन्थिश्च ॥

प्रातरेवाहं संकेतस्थानं शालिक्षेत्रं गता, त्वं तु न गत इति जारं श्रावयन्ती नीहाराभिसारिका शालेरपि खलसंयोगादुद्वेगमाह—

कहँ मे परिणइआले खलसङ्गो होहिइ त्ति चिन्तन्तो ।

ओणअमुहो ससूओ रुवइ व साली तुसारेण ॥ ६८ ॥

[कथं मे परिणतिकाले खलसङ्गो भ[10]विष्यतीति चिन्तयन् ।

अवनतमुखः सशूको रोदितीव शालिस्तुषारेण ॥]

१. 'आघ्रायन्' घ. २. 'भरिताक्ष' घ. ३. 'पथिकेदानीं' घ. ४. 'लोष्ट' घ. ५. 'तां बालिकां' ग. ६. 'मारयसि' घ. ७. 'वलणेण' ख. ८. 'वलनेन' घ. ९. 'आनन्दयति' घ. १०. 'भवतीति' घ.

खलस्य धान्यमर्दनस्थानस्य दुर्जनस्य च सङ्गः। अवनतं मुखं शीर्षाग्रं वदनं च यस्य सः। शूकेन धान्यकण्टकेन सह वर्तत इति सशूकः। अथ च ससूओ सशोकः॥

अभिसारस्थानगमनाय प्रदोषाभिसारिकां त्वरयन्ती दूती प्रदोषवर्णनमाह—

संझाराओत्थइओ दीसइ गअणम्मि पडिवआचन्दो ।
रत्तदुऊलन्तरिओ थणणहलेहो व्व णववहुए ॥ ६९ ॥

[संध्यारागावस्थगितो दृश्यते गगने प्रतिपच्चन्द्रः ।
रक्तदुकूलान्तरितः स्तननखलेख इव नववध्वाः ॥]

अर्धचन्द्रावलोकनकौतुकादाकाशं पश्यन्तं देवरं कापि सपरिहासमाह—

अइ दिअर किं ण पेच्छसि आआसं किं मुहा पलोएसि ।
जाआइ बाहुमूलम्मि अद्धअन्दाणँ परिवाडिम् ॥ ७० ॥

[अयि देवर किं न प्रेक्षसे आकाशं किं मुधा प्रलोकयसि ।
जायाया बाहुमूलेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीम् ॥]

जायाया बाहुमूलेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीं परम्परां किं न प्रेक्षसे इति योजना॥

वक्ष्यसि मद्वचनेन मत्प्रियमेवमिति प्रोषितभर्तृका प्रियसमीपगामिनं पान्थमाह—

वाआइ किं भणिज्जउ केत्तिअमेत्तं व लिक्खए लेहे ।
तुह विरहे जं दुक्खं तस्स तुमं चेअ गहिअत्थो ॥ ७१ ॥

[वाचया किं भण्यतां कियन्मात्रं वा लिख्यते लेखे ।
तव विरहे यद्दुःखं तस्य त्वमेव गृहीतार्थः ॥]

बहुत्वाद्दुःखानां किं वक्तव्यं कियद्वा लेख्यमित्यर्थः। गृहीतार्थो ज्ञाता। गृहीतोऽर्थो येनेति व्युत्पत्तेः। मद्विरहेण त्वया यावद्दुःखमनुभूतमस्ति तेनैवानुमीयतां मद्दुःखमिति भावः॥

कोऽपि कस्याश्चित्केशपाशप्रशंसां साभिलाषमाह—

मअणग्गिणो व्व धूमं मोहणपिच्छिं व लोअदिट्ठीए ।
जोव्वणधअं व मुद्धा वहइ सुअन्धं चिउरभारम् ॥ ७२ ॥

[मदनाग्नेरिव धूमं मोहनपिच्छिकामिव लोकदृष्टेः ।
यौवनध्वजमिव मुग्धा वहति सुगन्धं चिकुरभारम् ॥]

मोहनेति। अन्योऽप्यैन्द्रजालिकः पिच्छिकया मोहं करोतीति भावः॥

---

१. 'रागस्थगितो' घ. २. 'प्रतिपदाचन्द्रः' घ. ३. 'आयासं' घ. ४. 'वाचा किं भणिष्यति' घ. ५. 'च' घ. ६. 'ग्रहीतात्र' घ. ७. 'दिठ्ठीअ' ख. ८. 'लोकदृष्टयाः' ग-घ.

सखि, कथय तस्य रूपमिति पृच्छन्तीं सखीमन्या काचिदाह—

रूअं सिट्ठं चिअ से असेसपुरिसे णिअत्तिअच्छेण ।
वाहोल्लेण इमीए अजम्पमाणेण वि मुहेण ॥ ७३ ॥

[रूपं शिष्टमेव तस्याशेषपुरुषे निवर्तिताक्षेण ।
बाष्पार्द्रेणास्या अजल्पतापि मुखेन ॥]

शिष्टमेव कथितमेव ॥

प्रियेण सह क्रीडारसादविदितनिशावसानां सखीं प्रबोधयन्ती सखी प्रभातवर्णनमाह—

रुन्दारविन्दमन्दिरमअरन्दाणन्दिआलिरिञ्छोली ।
झणझणइ कसणमणिमेहल व्व महुमासलच्छीए ॥ ७४ ॥

[बृहदरविन्दमन्दिरमकरन्दानन्दितालिपङ्क्तिः ।
झणझणायते कृष्णमणिमेखलेव मधुमासलक्ष्म्याः ॥]

रुन्दं बृहद्यदरविन्दं तदेव मन्दिरं तत्र मकरन्देन पुष्परसेनानन्दितेत्यर्थः । उद्दीपनविभावप्रतिपादनेन संकेतस्थानस्तुतिपरं दूत्या इदं वचनमिति केचित् ॥

जाताभिलाषः कश्चिद्विलासी कामपि कामिनीमाह—

कस्स करो बहुपुण्णप्फलेक्कतरुणो तुहं विसम्मिहइ ।
थणपरिणाहे मम्महणिहाणकलसे व्व पारोहो ॥ ७५ ॥

[कस्य करो बहुपुण्यफलैकतरोस्तव विश्रमिष्यति ।
स्तनपरिणाहे मन्मथनिधानकलश इव प्ररोहः ॥]

परिणाहो विशालता । विशालस्तन इत्यर्थः । पूर्वनिपातानियमात् । प्ररोहः पल्लवः । मन्मथनिधानकलशे तव स्तनपरिणाहे बहुपुण्यफलैकतरोः कस्य करः प्ररोह इव विश्रमिष्यतीत्यन्वयः ॥

यो यच्छीलः स सापायादपि तस्मान्मनो निवर्तयितुं न शक्नोतीति निदर्शयन्नागरिकः सहचरमाह—

चोरा सभअसतण्हं पुणो पुणो पेसअन्ति दिट्ठीओ ।
अहिरक्खिअणिहिकलसे व्व पोढवइआथणुच्छङ्गे ॥ ७६ ॥

[चोराः सभयसतृष्णं पुनः पुनः प्रेषयन्ति दृष्टीः ।
अहिरक्षितनिधिकलश इव प्रौढपतिकास्तनोत्सङ्गे ॥]

---

१. 'कथितमेव' घ. २. 'अलिरिञ्छोली' घ. ३. 'सअण्हं' क. ४. 'प्रौढवनिता' ग.

प्रौढः शूरः पतिर्यस्याः सा प्रौढपतिका । चोराः परस्त्रीहारकाः परस्वापहारकाश्च । तथा च सर्पप्रायोऽस्याः पतिरस्मान्घातयिष्यतीति भयात्स्प्रष्टुमसमर्था अपि साभिलाषं पश्यन्तीत्यर्थः ॥

प्रवासोन्मुखस्य कान्तस्य गमनप्रतिषेधाय कापि वर्षावर्णनच्छलेनाह—

उव्वहइ णवतणङ्कुररोमञ्चपसाहिआइँ अङ्गाइं ।
पाउसलच्छीअ पओहरेहिँ परिपेल्लिओ विञ्झो ॥ ७७ ॥

[उद्वहति नवतृणाङ्कुररोमाञ्चप्रसाधितान्यङ्गानि ।
प्रावृट्लक्ष्म्याः पयोधरैः परिप्रेरितो विन्ध्यः ॥]

पयोधरैर्मेघैः । अन्योऽपि कामुकः कान्तया पयोधराभ्यां स्तनाभ्यां परिप्रेरितः सन्रोमाञ्चमुद्वहतीति ध्वनिः ॥

कोऽपि प्रियायाः साभिलाषमन्यापदेशेन प्रशंसामाह—

आम बहला वणाली मुहला जलरङ्कुणो जलं सिसिरम् ।
अण्णणईणँ वि रेवाइ तह वि अण्णे गुणा के वि ॥ ७८ ॥

[सत्यं[1] बहला वनाली मुखरा जलरङ्कवो जलं शिशिरम् ।
अन्यनदीनामपि रेवायास्तथाप्यन्ये गुणाः केऽपि ॥]

आमेति स्वीकारे । बहला विस्तृता वनपङ्क्तिर्वस्त्रादिस्थानीया । मुखराः सशब्दा जलरङ्कवः पक्षिविशेषा नूपुरादिस्थानीयाः । शिशिरं जलमङ्गसुखस्पर्शस्थानीयम् । गुणा गाम्भीर्यादयः सौभाग्यादयश्च । अन्ये इतरविलक्षणाः । नायकप्ररोचनाय दूत्या इयमुक्तिरिति कश्चित् ॥

कोऽपि कस्याश्चित्साभिलाषं स्तनौ वर्णयन्सहचरमाह—

एह[2] इमीअ णिअच्छह परिणअमालूरसच्छहे थणए ।
तुङ्गे सप्पुरिसमणोरहे व्व हिअए अमाअन्ते ॥ ७९ ॥

[आगच्छतास्या[3] निरीक्षध्वं परिणतमालूरसदृशौ स्तनौ ।
तुङ्गौ सत्पुरुषमनोरथाविव[4] हृदये अमान्तौ ॥]

मालूरो बिल्वः । प्राकृते द्विवचनबहुवचनयोरैक्यान्मनोरथानिवेत्यर्थः । अत एव वचनभेदनिबन्धन उपमादोषोऽप्यत्र नेति ध्येयम् । पूर्ववद्दूत्या उक्तिर्वा ॥

मेघागमस्य कामोद्दीपकतां सूचयन्ती कापि कान्तानयनाय सखीं त्वरयितुमाह—

हत्थाहत्थिं अहमहमिआइ वासागमम्मि मेहेहिम् ।
अव्वो किं पि रहस्सं छण्णं पि णहङ्गणं गलइ ॥ ८० ॥

---

१. 'आम्रबहुला' घ. २. 'एहि' क. ३. 'एतस्या' ग. ४. 'रथा इव' घ.

[हस्ताहस्ति अहमहमिकया वर्षागमे मेघैः ।
आश्चर्यं किमपि रहस्यं छन्नमपि नभोङ्गणं गलति ॥]

मेघैश्छन्नमपीति योजना ॥

सखि, किमेवमतिचञ्चलं प्रियं नानुनयसीति वदन्तीं सखीं काचिदाह—

केत्तिअमेत्तं होहिइ सोहग्गं पिअअमस्स भमिरस्स ।
महिलामअणछुहाउलकडक्खविक्खेवघेप्पन्तम् ॥ ८१ ॥

[कियन्मात्रं भविष्यति सौभाग्यं प्रियतमस्य भ्रमणशीलस्य ।
महिलामदनक्षुधाकुलकटाक्षविक्षेपैर्गृह्यमाणम् ॥]

मदनलक्षणक्षुधयाकुलेन महिलानां कटाक्षविक्षेपेण गृह्यमाणमित्यर्थः । कटाक्षध्वस्तधैर्यस्य स्वत एवास्य चाञ्चल्यं यास्यति । किमस्य प्रियाचरणेनेति भावः ॥

कापि चलवृत्तं सर्वदापरगृहपरस्त्रीसंभोगलम्पटं स्वकान्तं रात्रिशेषे कुक्कुटशब्देन परवसतिशङ्कया पलायनेच्छुमाह—

णिअधणिअं उवऊहसु कुक्कुडसद्देन झत्ति पडिबुद्ध ।
परवसहिवाससङ्किर णिअए वि घरम्मि मा भासु ॥ ८२ ॥

[निजगृहिणीमुपगूहस्व कुक्कुटशब्देन झटिति प्रतिबुद्ध ।
परवसतिवासशङ्किन्निजकेऽपि गृहे मा भैषीः ॥]

धणिआशब्दः स्वभार्यावचनो देशी । परवसतिः परगृहम् । वासोऽवस्थानम् ॥

दुर्दिनाभिसारिका कान्तमन्यमनस्कं कर्तुमाह—

खरपवणरअगलत्थिअगिरिऊडावडणभिण्णदेहस्स ।
धुक्काधुक्कइ जीअं व विज्जुआ कालमेहस्स ॥ ८३ ॥

[खरपवनरयगलहस्तितगिरिकूटापतनभिन्नदेहस्य ।
धुकधुकायते जीवं इव विद्युत्कालमेघस्य ॥]

खरपवनेन रयेण वेगेन गलहस्तितः प्रेरितः अत एव गिरेः कूटाच्छृङ्गाद्यदापतनं तेन भिन्नदेहो विशीर्णदेहो यः कालमेघस्तस्य जीव इव विद्युद्धुकधुकायते । कम्पत इत्यर्थः । लोकेऽपि बलवता केनापि गलहस्तितस्योच्चस्थानात्पतितस्य विशीर्णदेहस्य हृदये कम्पो भवतीति भावः ॥

---

१. 'हस्ताहस्तिकाभिः' ग. २. 'मातः' ग; 'अहो' घ. ३. 'भ्रमतः' ग. ४. 'विक्षेपान्गृह्णतः' ग; 'विक्षेपवेपमानम्' घ. ५. 'धन्यां' ग. ६. 'उपगूहस्व रे' ग-घ. ७. 'गिरिचूडा' ग. ८. 'जीवमिव' क-ख.

तथैवापरगाथामाह—

मेहमहिसस्स णज्जइ उअरे सुरचावकोडिभिण्णस्स।
कन्दन्तस्स सविअणं अन्तं व पलम्बए विज्जू॥ ८४॥

[मेघमहिषस्य ज्ञायते उदरे सुरचापकोटिभिन्नस्य।
क्रन्दतः सवेदनमन्त्रमिव प्रलम्बते विद्युत्॥]

भविष्यत्पथिकस्य गमनप्रतिषेधार्थं कापि वसन्तोपक्रममाह—

णवपल्लवं विसण्णा पहिआ पेच्छन्ति चूअरुक्खस्स।
कामस्स लोहिउप्पङ्कराइअं हत्थभल्लं व॥ ८५॥

[नवपल्लवं विषण्णाः पथिकाः प[1]श्यन्ति चूतवृक्षस्य।
कामस्य लोहित[2]समूहराजितं हस्तभल्लमिव॥]

उप्पङ्कशब्दो देश्यां समूहवचनः॥

प्रवासोद्यतस्य कान्तस्य गमनप्रतिषेधाय काचिदाह—

महिलाणं चिअ दोसो जेण पवासम्मि ग[3]व्विआ पुरिसा।
दोतिण्णि जाव ण मरन्ति ता[4] ण विरहा समप्पन्ति॥ ८६॥

[महिलानामेव दोषो येन प्रवासे गर्विताः पुरुषाः।
द्वे[5] तिस्रो यावन्न म्रियन्ते तावन्न विरहाः समाप्यन्ते॥]

द्वे तिस्रो वा। अर्थात्प्रोषितपतिकाः। तावदिति तेन हि प्रियामरणभयान्न प्रवत्स्यन्तीति भावः॥

नायिकासमीपगमनाय त्वरयन्ती दूती नायकमाह—

बालअ दे वच्च लहुं मरइ वराई अलं विलम्बेण।
सा तुज्झ दंसणेण वि जी[6]वेज्जइ णत्थि संदेहो॥ ८७॥

[बालक हे व्रज लघु म्रियते वराकी अलं विलम्बेन।
सा तव दर्शनेनापि जी[7]विष्यति नास्ति संदेहः॥]

देशब्दः साभ्यर्थनसंबोधने। हे बालक अज्ञ। शीघ्रं लघु। तवेत्यन्यस्य पुनरौषधेनापि न जीविष्यतीत्यर्थः। दर्शनेनापीति आस्तामालिङ्गनचुम्बनसकचग्रहाधरपानदन्तनखक्षतनिधुवनद्रवीभावादिकमित्यपेरर्थः॥

---

१. 'प्रेक्षन्ते' ग-घ. २. 'लोहितोऽप्यङ्क' ग; 'लोहितपुङ्ख' घ. ३. 'गव्विरा' ख. ४. 'ताव' क-ख. ५. 'द्वित्राः' ग-घ. ६. 'जिवेज्जं ण एत्थि' क. ७. 'जीवति' ग.

विनाशहेतुमपि मुग्धाः सुखहेतुं कलयन्तीत्यन्यापदेशेन कोऽपि सहचरमाह—

[1]तम्बिरपसरिअहुअवहजालालिपलीविए वणाहोए ।
किंसुअवणन्ति कलिऊण मुद्धहरिणो ण णिक्कमइ ॥ ८८ ॥

[[2]ताम्रवर्णप्रसृतहुतवहज्वालावलिप्रदीपिते वनाभोगे ।
किंशुकवनमिति कलयित्वा मुग्धहरिणो न निष्क्रामति ॥]

अत्र स्वतःसंभविना भ्रान्तिमदलंकारेण परस्त्रीलम्पटः कश्चिद्विनाशहेतुमपि परस्त्रीसंसर्गं सुधाप्रायं मन्यमानस्तद्गृहान्न निःसरतीति वस्तु व्यज्यते ॥

कापि जारं प्रत्यात्मनो वैदग्ध्यं ख्यापयन्ती सखीमाह—

णिहुअणसिप्पं [3]तह सारिआइ उल्लाविअं म्ह गुरुपुरओ ।
जह तं वेलं माए ण आणिमो कत्थ वच्चामो ॥ ८९ ॥

[निधुवनशिल्पं [4]तथा शारिकयोल्लपितम[5]स्माकं गुरुपुरतः ।
यथा तां वेलां मातर्न जानीमः कुत्र व्रजामः ॥]

निधुवनशिल्पं सुरतवैचित्र्यम् । तां वेलां तस्यां वेलायाम् । 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति सप्तम्यर्थे द्वितीया । न जानीम इति व्रीडावशादिति भावः ॥

कापि नवयुवत्यनुरक्तचित्तं कान्तमन्यापदेशेनाह—

पच्चग्गप्फुल्लदलुल्लसन्तमअरन्दपाणलेहलओ ।
तं णत्थि कुन्दकलिआइ जं ण भमरो महइ [6]काउम् ॥ ९० ॥

[प्रत्यग्रोत्फुल्लदलोल्लसन्मकरन्दपानल[7]ब्धः ।
तन्नास्ति कुन्दकलिकाया यन्न भ्रमरो [8]वाञ्छति [9]कर्तुम् ॥]

चुम्बनादिकं सर्वं कर्तुमिच्छतीत्यर्थः ॥

कापि कस्याश्चिन्नवयुवत्याः सौभाग्यातिशयमन्यापदेशेनाह—

सो को वि गुणाइसओ ण आणिमो [10]मामि कुन्दलइआए ।
अच्छीहिं च्चिअ पाउं [11]अहिलस्सइ जेण भमरेहिम् ॥ ९१ ॥

[स कोऽपि गुणातिशयो न [12]जानीमो [13]मातुलानि कुन्दलतिकायाः ।
[14]अक्षिभ्यामेव पातुमभिलष्यते येन भ्रमरैः ॥]

अन्यासां लतानां पुष्पं मुखैः पीयते, इयं तु लतैवाक्षिभिश्चेत्युत्कर्षः ॥

---

१. 'अविरअ' ग. २. 'अविरत' ग; 'तपनशीलहुतवह' घ. ३. 'तुह' ग. ४. 'तव' ग-घ. ५. 'अस्मत्' ग. ६. 'पाउम्' क. ७. 'लोलुपः' ग; 'लम्पटः' घ. ८. 'महति' ग; 'इच्छति' घ. ९. 'पातुम्' घ. १० 'बहिणि कुन्दकलिआए' ग. ११. 'अहिलजइ' क-ग. १२. 'जानामि भगिनि कुन्दकलिकायाः' ग. १३. 'मातुलि' घ.

नायकप्रलोभनाय दूती कस्याश्चित्सौन्दर्यातिशयमाह—

एक्क च्चिअ रूअगुणं गामणिधूआ समुव्वहइ ।
अणिमिसणअणो सअलो जीए देवीकओ गामो ॥ ९२ ॥

[एकैव रूपगुणं ग्रामणीदुहिता समुद्वहति ।
अनिमिषनयनः सकलो यया देवीकृतो ग्रामः ॥]

न निमिषतीत्यनिमिषम् । अनिमिषं नयनं यस्य सः । ग्रामस्थो जनोऽवलोकनकौतुकादेतां पश्यन्कोऽपि निमेषं न करोतीति भावः ॥

अधरपानाभिलाषं सूचयन्कोऽपि सवैदग्ध्यमभियोज्यामाह—

मण्णे आसाओ च्चिअ ण पाविओ पिअअमाहररसस्स ।
तिअसेहिँ जेण रअणाअराहि अमअं समुद्धरिअम् ॥ ९३ ॥

[मन्ये आस्वाद एव न प्राप्तः प्रियतमाधररसस्य ।
त्रिदशैर्येन रत्नाकरादमृतं समुद्धृतम् ॥]

प्राणात्ययहेतुरपि न तथा व्यथयति यथा प्रियविरह इत्यन्यापदेशेन स्नेहशिक्षार्थं कोऽपि प्रियामाह—

आअण्णाअड्ढिअणिसिअभैल्लमम्माहआइ हरिणीए ।
अैदंसणो पिओ होहिइ त्ति वलिअं चिरं दिट्ठो ॥ ९४ ॥

[आकर्णाकृष्टनिशितभैल्लमर्माहतया हरिण्या ।
अदर्शनः प्रियो भविष्यतीति वैलित्वा चिरं दृष्टः ॥]

न विद्यते दर्शनं यस्येत्यदर्शनः । दर्शनागोचर इति यावत् । 'दुद्दंसण' इति क्वचित्पाठः । तत्र दुर्दर्शनो दुर्लभदर्शन इत्यर्थः ॥

कस्यचिद्राज्ञः शौर्यं ख्यापयन्ती सेवाकुशला स्त्री राजानमुद्दिश्याह—

विसमट्ठिअपिक्केक्कम्बदंसणे तुज्झ सत्तुघरिणीए ।
को को ण पत्थिओ पहिआणं डिम्भे रुअन्तम्मि ॥ ९५ ॥

[विषमस्थितपक्वैकाम्रदर्शने तव शत्रुगृहिण्या ।
कः को न प्रार्थितः पथिकानां डिम्भे रुदति ॥]

डिम्भे बालके रुदति सति तव शत्रुगृहिण्या पथिकानां मध्ये कः को न प्रार्थितः ।

---

१. 'सूआ गहवइणो महिलत्तणं' ग. २. 'सुतागृहपतेर्महिलात्वं' ग, 'रूपगुणो' घ. ३. 'सर्वो' ग. ४. 'भल्लसंमुहाहआइ' ग. ५. 'दुद्दंसणो' ग. ६. 'भल्लसंमुखाहतया' ग. ७. 'वलितः' घ. ८. 'बालके' ग.

अपि तु सर्वं एवेत्यर्थः । अयमाशयः—त्वदागमनशङ्कासंजातवेपथुस्खलितचरणसंचारमशेषपरिवारं विहाय बालकमादाय तव शत्रुविलासिनी महारण्यं प्राविशत् । तत्र च घनघनायमानघनच्छदच्छायतरुनिकरनिराकृतदिनकरकरोत्करश्यामायिते वर्त्मनि गच्छन्ती क्षुत्पीडितस्य बालकस्याक्रन्दितमाकलय्य निपुणतरं निरीक्षमाणा विषमशाखान्तर्गतमेकमाम्रफलमद्राक्षीत् । तत्पातनार्थं च पान्थानयाचतेति ॥

कोऽपि सौन्दर्यादिगुणयुक्तां मालाकारस्त्रियं साभिलाषं पश्यन्सहचरमाह—

मालारी ललिउल्लुलिअबाहुमूलेहिँ तरुणहिअआइं ।
उल्लूरइ सज्जुल्लूरिआइ कुसुमाइँ दावेन्ती ॥ ९६ ॥

[मालाकारी[1] ललितोल्लुलितबाहुमूलाभ्यां तरुणहृदयानि ।
उल्लुनाति[2] सद्योऽवलूनानि[3] कुसुमानि दर्शयन्ती[4] ॥]

मालाकारी मालकारस्त्री । ललिताभ्यां सुन्दराभ्यामुल्ललिताभ्यां चञ्चलाभ्यां बाहुमूलाभ्यामुपलक्षिता । उल्लुनाति व्याकुलीकरोति ॥

कोऽपि व्याधस्त्रियाः स्तनोद्गमं साभिलाषं वर्णयन्सहचरमाह—

मज्झो पिओ कुअण्डो पल्लिजुआणा सवत्तीओ ।
जह जह वड्ढन्ति थणा तह तह झिज्जन्ति पञ्च वाहीए ॥ ९७ ॥

[मध्यः प्रियः कुटुम्बं पल्लीयुवानः सपत्न्यः ।
यथा यथा वर्धेते स्तनौ तथा तथा क्षीयन्ते पञ्च व्याध्याः ॥]

व्याध्या व्याधस्त्रियाः ॥

यो यदभिलाषुकः स च्छलेनापि स्व(तत्)कार्यं साधयतीति निदर्शयन्कोऽपि सहचरमाह—

मालारीए वेल्लहलबाहुमूलावलोअणसअह्णो ।
अलिअं पि भमइ कुसुमग्घपुच्छिरो पंसुलजुआणो ॥ ९८ ॥

[मालाकार्याः सुन्दरबाहुमूलावलोकनसतृष्णः ।
अलीकमपि भ्रमति कुसुमार्घप्रश्नशीलः[5] पांसुलयुवा ॥]

पांसुलः परस्त्रीलम्पटः । अर्घो मूल्यम् । वेल्लहल इति सुन्दरार्थे देशी ॥

विस्मृतपूर्ववृत्तसुरतसंकेतस्थानादिकं तवाहं न कोऽपीति वदन्तं नायकं कापि सोपालम्भमाह—

अक्कअण्णुअ घणवण्णं घणवण्णन्तरिअतरणिअरणिअरम् ।
जइ रे रे वाणीरं रेवाणीरं पि णो भरसि ॥ ९९ ॥

---

१. 'मालाकारस्त्री' ग. २. 'व्याकुलयति' ग. ३. 'मध्यस्थितानि' घ. ४. 'ददती' ग. ५. 'कुसुममूल्यप्रश्नशीलः' ग; 'कुसुमार्घपृच्छाशीलः' घ.

[अकृतज्ञ घनवर्णं घनपर्णान्तरिततरणिकरनिकरम् ।
यदि रे रे वानीरं रेवानीरमपि न स्मरसि ॥]

घनवर्णं मेघश्याममम् । घनैर्निबिडैः पत्रैरन्तरित आच्छादितस्तरणिकरनिकरः सूर्यरश्मिसमूहो येनेति वानीरविशेषणम् । रे रे इति साक्षेपसंबोधनम् । वानीरं वेतसकुञ्जं यदि न स्मरसि तर्हि मा स्मर । रेवाया नर्मदाया नीरं जलमपि कथं न स्मरसीत्यर्थः ॥

कापि गृहपतिसुता हलिकसुतानुरागं विरहवैधुर्यं च प्रतिपादयन्ती हलिकसुतोपालम्भपुरःसरमाह—

मन्दं पि ण आणइ हलिअणन्दणो इह हि डड्ढगामम्मि ।
गहवइसुआ विवज्जइ अवेज्जए कस्स साहामो ॥ १०० ॥

[मन्दमपि न जानाति हलिकनन्दन इह हि दग्धग्रामे ।
गृहपतिसुता विपद्यतेऽवैद्यके कस्य कथयामः ॥]

मन्दमप्यल्पमपि । अवैद्यके वैद्यरहिते । हलिकपुत्रनिमित्तममन्दपञ्चबाणबाणप्रहारजर्जरितहृदया ग्रामणीसुता विपद्यते । हलिकपुत्रश्च पशुकल्पः । अतः कस्मै कथयामीत्यर्थः ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।
सत्तसअम्मि समत्तं सट्ठं गाहासहं एअम् ॥

[रसिकजनहृदयदायिते कविवत्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्तं षष्ठं गाथाशतकमेतत् ॥]

सप्तमं शतकम् ।

पशुद्वन्द्वस्याप्येवमन्योन्यानुरागो न पुनस्तवेति दूती मन्दस्नेहं नायकमुपालब्धुमन्यापदेशेनाह—

एक्कक्कमपरिरक्खणपहारसँमुहे कुरङ्गमिहुणम्मि ।
वाहेण मण्णुविअलन्तवाहधोअं धणुं मुक्कम् ॥ १ ॥

[अन्योन्यपरिरक्षणप्रहारसंमुखे कुरङ्गमिथुने ।
व्याधेन मन्युविगलद्बाष्पधौतं धनुर्मुक्तम् ॥]

प्रहारसमयेऽन्योन्यस्य परिरक्षणार्थं कुरङ्गमिथुने संमुखे स्थिते सति मन्युना दैन्येन विगलन्यो बाष्पस्तेन धौतं प्रक्षालितं धनुर्व्याधेन मुक्तम् । त्यक्तमित्यर्थः । 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इति हेमचन्द्रः ॥

---

१. 'सुतः' ग. २. 'अवैद्ये' ग. ३. 'एकक्रम' ग-घ. ४. 'प्रसरद्बाष्प' ग.

मन्दस्नेहं नायकमनुकूलयितुं दूती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

ता सुहअ विलम्ब खणं भणामि कीअ वि कएण अलमह वा ।
अविआरिअकज्जारम्भआरिणी मरउ ण भणिस्सम् ॥ २ ॥

[तत्सुभग विलम्बस्व क्षणं भणामि कस्या अपि कृतेनालमथ वा ।
अविचारितकार्यारम्भकारिणी म्रियतां न भणिष्यामि[1] ॥]

सेर्ष्या काचिद्भर्तुर्ग्रामव्यापारिकमाहिलानुरागं सूचयन्ती सखीमाह—

भोइणिदिण्णपहेणअचक्खिअदुस्सिक्खिओ हलिअउत्तो ।
एत्ताहे अण्णपहेणआणँ छीवोल्लअं देई ॥ ३ ॥

[भोगिनीदत्तप्रहेण[2]कास्वादनदुःशिक्षितो हलिकपुत्रः ।
इदानी[3]मन्यप्रहेणकानां छी इति वचनं ददाति ॥]

भोगिनी ग्रामव्यापारिकस्त्री । तया दत्तानि यानि प्रहेणकानि मोदकादिवायनकानि तेषां चक्खणमास्वादनं तेन दुःशिक्षितः । 'प्रहेणकं वायनकम्' इति हारावली । छी[4] इति निन्दानुकरणं लोके प्रसिद्धम् ॥

अज्ञातरजनिविरामां क्रीडाप्रसक्तां सखीं प्रबोधयितुं कापि प्रभातं वर्णयति—

पच्चूसमऊहावलिपरिमलणसमूससन्तवत्ताणम् ।
कमलाणँ रअणिविरमे जिअलोअसिरी महम्महइ ॥ ४ ॥

[प्रत्यूषमयूखावलिपरिमलनसमुच्छ्वसत्पत्त्राणाम् ।
कमलानां रजनिविरामे जितलोकश्री[5]र्महमहायते ॥]

प्रत्यूषे या मयूखावलिरर्थादादित्यस्य । पच्चूहशब्द आदित्यवचनो देशीति कश्चित् । जिता लोका यया सा तथा । जीवलोकश्रीरिति वार्थः । महमहायतेऽतिसुरभिर्भवतीत्यर्थः ॥

कापि कस्याश्चित्परिहासव्याजेन सौभाग्यस्तुतिमाह—

वाउव्वेल्लिअसाउलि थएसु फुडदन्तमण्डलं जहणम् ।
चडुआरअं पइं मा हु पुत्ति जणहासिअं कुणसु ॥ ५ ॥

[वातोद्वेल्लितवस्त्रे स्थगय स्फुटदन्तमण्डलं जघनम् ।
चटुकारकं पतिं[6] मा खलु पुत्रि जनहास्यं[7] कुरु ॥]

जनैर्हस्यत इति जनहास्यः । जनहासास्पदमित्यर्थः । साउलीति वस्त्रवाचको देशी ॥

---

१. 'भणिष्ये' ग-घ. २. 'मोदकभक्षण' घ. ३. 'एतावताशेषप्रहेणकानां मुखविधूननं ददाति' ग; 'इदानीमन्यमोदकानामक्षिविकारं ददाति' घ. ४. 'छीवोल्लणं मुखविकारः' इति कुलबालदेवः ५. 'जीवलोकश्रीः' ग; 'आमोदश्रीः' घ. ६. 'प्रियं' ग. ७. 'जनहसितं' ग.

कामुकजनावकाशनिरासाय दूती वध्वाः पूर्ववृत्तान्यथाभावमाह—

वीसत्थहसिअपरिसक्किआण पढमं जलञ्जली दिण्णो ।
पच्छा वहूअ गहिओ कुडम्बभारो णिमज्जन्तो ॥ ६ ॥
[विस्रब्धहसितपरिक्रमाणां प्रथमं जलाञ्जलिर्दत्तः ।
पश्चाद्वध्वा गृहीतः कुटुम्बभारो निमज्जन् ॥]

परिसक्कितं परिक्रमणम् । कुटुम्बभारानुरोधाद्विस्रब्धहसितादिरूपं चाञ्चल्यं त्यक्तमिति भावः ॥

कापि सख्याः सपरिहासं सौन्दर्यप्रशंसामाह—

गम्मिहिसि तस्स पासं सुन्दरि मा तुरअ वड्ढउ मिअङ्को ।
दुद्धे दुद्धं मिअ चन्दिआइ को पेच्छइ मुहं दे ॥ ७ ॥
[गमिष्यसि तस्य पार्श्वं सुन्दरि मा त्वरस्व वर्धतां मृगाङ्कः ।
दुग्धे दुग्धमिव चन्द्रिकायां कः प्रेक्षते मुखं ते ॥]

कापि ग्रामणीपुत्रं प्रत्यनुरागातिशयं सूचयन्ती समानशीलां मातुलानीमाह—

जइ जूरइ जूरउ णाम मामि परलोअवसणिओ लोओ ।
तह वि बला गामणिणन्दणस्स वअणे वलइ दिट्ठी ॥ ८ ॥
[यदि खिद्यते[1] खिद्यतां नाम मातुलानि परलोकव्यसनिको लोकः ।
तथापि बलाद्ग्रामणीनन्दनस्य वदने वलते दृष्टिः ॥]

नायिकाया अनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

गेहं व वित्तरहिअं णिज्झरकुहरं व सलिलसुण्णविअम् ।
गोहणरहिअं गोट्ठं व तीअ वअणं तुह विओए ॥ ९ ॥
[गृहमिव वित्तरहितं निर्झरकुहरमिव सलिलशून्यम्[3] ।
गोधनरहितं गोष्ठमिव तस्या वदनं तव वियोगे ॥

न शोभत इति शेषः ॥

कस्याश्चिल्लज्जापारतन्त्र्यमनुरागातिशयं च प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

तुह दंसणेण जणिओ इमीअ लज्जाउलाइ अणुराओ ।
दुग्गअमणोरहो विअ हिअअ च्चिअ जाइ परिणामम् ॥ १० ॥

---

१. 'विस्रम्भहसितपरिशिक्षितानां' ग, 'विश्वस्तहसितपरिशङ्कितानां' घ. २. 'खिद्यति खिद्यतु नाम भगिनि' ग, 'क्रुध्यति क्रुध्यतु नाम मातुलि' घ. ३. 'सलिलशून्यीकृतम्' ग.

[तव दर्शनेन जनितोऽस्या ल[1]ज्जालुकाया अनुरागः ।
दुर्गतमनोरथ इव हृदय एव याति परिणामम् ॥]

लज्जावशात्कुत्रापि न वदतीत्यर्थः ॥

किमिति कृशासीति विदेशादागत्य हासपूर्वकं पृच्छन्तं कान्तं प्रति नायिकाया उक्तिकौशलं कापि सखीशिक्षार्थमाह—

जं तणुआअइ सा तुह कएण किं जेण पुच्छसि हसन्तो ।
अह गिम्हे मह पअई एव्वं भणिऊण ओरुण्णा ॥ ११ ॥

[या त[2]नूयते सा तव कृ[3]तेन किं येन पृच्छसि हसन् ।
अ[4]सौ ग्रीष्मे मम प्रकृतिरिति[5] भणित्वावरुदिता ॥]

या महिला तन्वी भवति सा सर्वा त्वन्निमित्तमिति नियमो नास्तीत्यर्थः । किं निमित्तं तर्हि तव कार्श्यं तत्राह—असाविति । अह इत्यसावित्यर्थे देशी ॥

अविच्छिन्नप्रियालिङ्गनाभिलाषमात्मनः प्रकाशयन्ती काप्यन्यापदेशेन वल्लभमाह—

वण्णक्कमरहिअस्स वि एस गुणो णवरि चि[6]त्तकम्मस्स ।
णिमिसं पि जं ण मुञ्चइ पिओ जणो गाढमुवऊढो ॥ १२ ॥

[वर्णक्रमरहितस्याप्येष गुणः केवलं चि[7]त्रकर्मणः ।
निमिषमपि यन्न मुञ्चति प्रियो जनो गाढमुपगूढः ॥]

वर्णक्रमो हरितपीतादिवर्णविन्यासः । चित्रकर्मण आलेख्यस्य । चित्रे प्रिययोपगूढः प्रियः प्रियां क्षणमपि न मुञ्चतीत्यर्थः । यद्वा वर्णक्रमो गुणविशुद्धिपरम्परा तद्रहितस्य । चित्रस्य विचित्रस्य कर्मणः । धर्माधर्मादिरूपस्येत्यर्थः । आत्मा धर्माधर्मादिकं क्षणमपि न मुञ्चतीत्यर्थः । केचित्तु ब्राह्मणादिवर्णक्रमरहितस्यापि चित्तअम्मणो चित्तजन्मनो मन्मथस्यायं कोऽपि गुणो येन प्रियः प्रियां क्षणमपि न त्यजतीत्यर्थ इति व्याचक्षते ॥

कोमलां नवोढामविदग्धः कोऽपि रमयतीत्यन्यापदेशेन कापि सखीमाह—

अविहत्तसंधिबन्धं पढमरसुब्भेअपाणलोहिल्लो ।
उव्वेलिउं ण आणइ खण्डइ कलिआमुहं भमरो ॥ १३ ॥

[अविभक्तसंधिबन्धं प्रथमरसोद्भेदपानलु[8]ब्धः ।
उ[9]द्वेल्लितुं न जानाति खण्डयति कलिकामुखं भ्रमरः ॥]

अत्र कलिकामधुपवृत्तान्तव्याजेनानुद्भिन्नवयःसंधिं नायिकामविदग्धः कोऽप्युपभो-

---

१. 'लज्जालोः' ग, 'लज्जावत्याः' घ. २. 'तन्वीभवति' ग. ३. 'कृते' ग-घ. ४. 'अथ' ग, 'एषा' घ. ५. 'एषैवं भणित्वा रोदितुं लग्ना' ग. ६. 'चित्तअम्मस्स' ग. ७. 'चित्तजन्मनः' ग. ८. 'लोभिष्ठः ग, 'लोभवान्' घ. ९. 'उद्वेल्लयितुं' ग.

तुमिच्छति । न च जानाति केवलं पीडयतीति वस्तु व्यज्यते । उद्वेल्लितुं विकासयितुम्, पक्षे संमुखीकर्तुम् ॥

विपरीतरताय प्रियामुत्साहयितुं कश्चिदाह—

दरवेविरोरुजुअलासु मउलिअच्छीसु लुलिअचिहुरासु ।
पुरिसाइरीसु कामो पिआसु सज्जाउहो वसइ[1] ॥ १४ ॥
[ईषद्वेपनशीलोरुयुगलासु[2] मुकुलिताक्षीषु लुलितचिकुरासु ।
पुरुषायितशीलासु कामः प्रियासु सज्जायुधो वसति ॥]

ममाप्रियं कर्तुं नार्हसीति वदन्तं कान्तं मानिनी सोद्वेगमाह—

जं जं ते ण सुहाअइ तं तं ण करेमि जं ममाअत्तम् ।
अहअं चिअ जं ण सुहामि सुहअ तं किं ममाअत्तम् ॥ १५ ॥
[यद्यत्ते न सुखायते[3] तत्तन्न करोमि यन्ममायत्तम् ।
अहमेव यन्न सुखाये[4] सुगम तत्किं ममायत्तम् ॥]

न सुखाये न सुखयामि ॥

कथालापाय प्रियं समुत्साहयितुं कुलटा लज्जास्वभावमाह—

वावारविसंवाअं सअलावअवाणँ कुणइ हअलज्जा ।
सवणाणँ उणो गुरुसंणिहे वि ण णिरुब्भइ णिओअम् ॥ १६ ॥
[व्यापारविसंवादं सकलावयवानां करोति हतलज्जा ।
श्रवणयोः पुनर्गुरुसंनिधावपि न निरुणद्धि नियोगम् ॥]

विसंवादो व्याघातः । नियोगो व्यापारः । त्वदासक्ततया नेत्रादिव्यापारः सर्व एव विसंवादं प्राप्तः । केवलं श्वशुरादिसंनिधावपि त्वत्कथाश्रवणे श्रवणौ व्यापारयतीति नायकं प्रति दूतीवचनमिदमिति कश्चित् ॥

आगतप्रायस्ते प्रेयानिति सखीभिराश्वासिता प्रोषितभर्तृका सनिर्वेदमाह—

किं भणह मं सहीओ मा मर दीसिहइ सो जिअन्तीए ।
कज्जालाओ एसो सिणेहमग्गो उण[5] ण होइ ॥ १७ ॥
[किं भणथ मां सख्यो मा म्रियस्व द्रक्ष्यते[6] स जीवन्त्या ।
कार्यालाप एव स्नेहमार्गः पुनर्[7]न भवति ॥]

---

१. 'होइ' ख. २. 'दरवेपन' घ. ३. 'सुखयति' ग. ४. 'सुखयामि' ग, 'सुखये' घ. ५. 'चिअ' ग. ६. 'द्रक्ष्यसे प्रियं जीवन्ती' ग. ७. 'एव' ग.

भवतीभिर्यदुच्यते तत्कार्यपर्यालोचनयानुष्ठातुं शक्यते । न च स्नेहः कार्यं पर्यालोचयतीत्यर्थः ॥

मन्दस्नेहं निष्करुणं च नायकमुपालब्धुमन्यापदेशेन काचिदाह—

एक्कल्लमओ दिट्ठीअ मइअ तह पुलइओ सअह्णाए ।
पिअजाअस्स जह धणुं पडिअं वाहस्स हत्थाओ ॥ १८ ॥

[एकाकी[1] मृगो दृष्ट्या मृग्या तथा प्रलोकितः सतृष्णया ।
प्रियेजायस्य[2] यथा धनुः पतितं व्याधस्य हस्तात् ॥]

मृग्याश्चक्षुर्निभालनेनात्मीयप्रियाविलोचनमनुस्मरतो व्याधस्य हस्तात्करुणया धनुः पतितमित्यर्थः । अतिपामरस्य हिंस्रस्य व्याधस्याप्येवं करुणा स्नेहश्च, न तु तवेति भावः ॥

नायिकायाः सौन्दर्यातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती चलवृत्तं नायकमन्यापदेशेन सोपालम्भमाह—

णलिणीसु[3] भमसि परिमलसि सत्तलं मालइं पि णो मुअसि ।
तरलत्तणं तुह अहो महुअर जइ पाडला[4] हरइ ॥ १९ ॥

[नलिनीषु[5] भ्रमसि परिमृद्नासि सप्तलां मालतीमपि नो मुञ्चसि ।
तरलत्वं तवाहो मधुकर यदि पाटला[6] हरति ॥]

'सप्तला नवमालिका' इत्यमरः । कस्याश्चिन्निकटे भ्रमस्येव कांचित्पीडयस्येव कांचिद्वचनमात्रेण संभावयसि । एतच्च तव चाञ्चल्यं पाटलवर्णा सैवापहर्तुं समर्था नान्येति भावः ॥

कामुकजनप्रलोभनाय दूती नायिकायाः स्तनौ वर्णयति—

दोअङ्गुलअकवालअपिणद्धसविसेसणीलकञ्चुइआ ।
दावेइ थणत्थलवण्णिअं व तरुणी जुअजणाणम् ॥ २० ॥

[द्व्यङ्गुलककपाटकपिनद्धसविशेषनीलकञ्चुकिका[7][8] ।
दर्शयति स्तनस्थलवर्णिकामिव तरुणी युवजनेभ्यः[9] ॥]

द्व्यङ्गुलपरिमितं संधिबन्धस्थले कपाटवत्पार्श्वद्वये यद्भवति तत्कपाटकम् । तेन पिनद्धो नीलकञ्चुको यस्याः सा । तथा च तत्र स्तनैकदेशदर्शनाद्वर्णिकामिव दर्शयतीत्युत्प्रेक्षा । वस्तुपरीक्षार्थं यद्वस्त्वेकदेशप्रदर्शनं तद्वर्णिकेत्युच्यते ॥

---

१. 'एकाकिमृगो' घ. २. 'प्रियजानेरित्युचितम्'. ३. 'कमलेसु' ग. ४. 'कइत्थपाडला' ख. ५. 'कमलेषु' ग. ६. 'कपित्थपाटला' घ. ७. 'द्व्यङ्गुलकृतजालक' घ. ८. 'कञ्चुका' ग. ९. 'यूनः' ग, 'दूनाम्' घ.

प्रतीकारोऽपि क्वचिदपकाराय भवतीति निदर्शयन्कश्चित्सखायमाह—

रक्खेइ पुत्तअं मत्थएण ओच्छोअअं पडिच्छन्ती ।
अंसुहिँ पहिअघरिणी ओल्लिज्जन्तं ण लक्खेइ ॥ २१ ॥

[रक्षति पुत्रकं मस्तकेन [1]पटलप्रान्तोदकं [2]प्रतीच्छन्ती ।
अश्रुभिः पथिकगृहिणी आर्द्रीभवन्तं न लक्षयति ॥]

ओच्छोअअं इति च्छदिप्रान्तजलार्थको देशीशब्दः । प्रतीच्छन्ती गृह्णती ॥

सरस्तीरस्य पथिकाक्रान्तत्वेन संकेतस्थानभङ्गं जारं श्रावयन्ती कापि शरद्वर्णनच्छलेनाह—

सरए सरम्मि पहिआ जलाइँ कन्दोट्टसुरहिगन्धाइं ।
धवलच्छाइँ सअह्णा पिअन्ति दइआणँ व मुहाइं ॥ २२ ॥

[शरदि सरसि पथिका जलानि [3]नीलोत्पलसुरभिगन्धीनि ।
[4]धवलाच्छानि सतृष्णाः पिबन्ति दयितानामिव मुखानि ॥]

कन्दोट्टं नीलोत्पलम् । तेन सुगन्धीनि । पक्षे तद्वत्सुगन्धीनि । धवलानि च तान्यच्छानि च । पक्षे धवलाक्षाणि । धवलनयनानीत्यर्थः । सतृष्णाः सपिपासाः । पक्षे साभिलाषाः ॥

कर्दमभयादनागच्छन्तं नायकं प्रति दूतीमार्गस्य सुगमत्वप्रतिपादनच्छलेन नायिकाया अनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती आह—

अब्भन्तरसरसाओ उवरिं पव्वाअबद्धपङ्काओ ।
चङ्कम्मन्तम्मि जणे समुस्ससन्ति व्व रच्छाओ ॥ २३ ॥

[अभ्यन्तरसरसा उपरि [5]प्रवातबद्धपङ्काः ।
[6]चङ्क्रममाणे जने समुच्छ्वसन्तीव [7]रथ्याः ॥]

प्रवातेन प्रकृष्टवातेन बद्धः पङ्को यासु ताः । अत्र समासोक्त्यलंकारेण प्रवातप्रायगुरुजनभयेनोपरि रूक्षत्वेऽप्यन्तरनुरक्तत्वं नायिकाया व्यज्यते ॥

पिष्टककणावकीर्णौ कस्याश्चित्स्तनौ साभिलाषं वर्णयन्नागरिकः सहचरमाह—

मुहपुण्डरीअछाआइ संठिआ उअह राअहंसे व्व ।
छणपिट्ठकुट्टणुच्छलिअधूलिधवले थणे वहइ ॥ २४ ॥

---

१. 'अच्छोदकं' ग-घ. २. 'प्रतीक्षमाणा' घ. ३. 'कमल' घ. ४. 'धवलानि' ग. ५. 'आश्यानबद्धपङ्काः' ग, 'विशुष्कबद्धपङ्काः' घ. ६. 'चङ्क्रमति' ग. ७. 'पन्थानः' ग.

[मुखपुण्डरीकच्छायायां संस्थितौ पश्यत राजहंसाविव।
क्षणपिष्टकुट्टनोच्छलितधूलिधवलौ स्तनौ वहति ॥]

क्षण उत्सवः ॥

कयोश्चिदन्योन्यानुरागं प्रकटयन्नागरिकः स्ववैदग्ध्यख्यापनार्थमाह—

तह तेणवि सा दिट्ठा तीअ वि तह तस्स पेसिआ दिट्ठी।
जह दोण्ह वि समअं चिअ णिव्वुत्तरआइँ जाआइं ॥ २५ ॥

[तथा तेनापि सा दृष्टा तयापि तथा तस्मै प्रेषिता दृष्टिः।
यथा द्वावपि सममेव निर्वृत्तरतौ जातौ ॥]

सममेव एककालमेव ॥

जारं प्रत्यभिसाररसिकतां सूचयन्ती कुलटा ग्रीष्मवर्णनमाह—

वाउलिआपरिसोसण कुँडङ्गपत्तलणसुलहसंकेअ।
सोहग्गकणअकसवट्ट गिम्ह मा कह वि झिज्जिहिसि ॥ २६ ॥

[स्वल्पखातिकापरिशोषण निकुञ्जपत्रकरणसुलभसंकेत।
सौभाग्यकनककषपट्ट ग्रीष्म मा कथमपि क्षीणो भविष्यासि ॥]

वाउलिआशब्दः स्वल्पखातिकायां देशी। स्वल्पखातिकानां परिशोषणेन निकुञ्जानां पत्रसंपत्त्या च सुलभः संकेतो यत्र स तथेति ग्रीष्मसंबोधनम् ॥

दुर्जनसंसर्गादुद्विग्नं गुणशालिनं विदग्धा काप्यन्यापदेशेन प्रवृत्तिपाटवार्थमाह—

दुस्सिक्खिअरअणपरिक्खएहिँ घिट्ठोसि पत्थरे तावा।
जा तिलमेत्तं वट्टसि मरगअ का तुज्झ मुल्लकहा ॥ २७ ॥

[दुःशिक्षितरत्नपरीक्षकैर्घृष्टोऽसि प्रस्तरे तावत्।
यावत्तिलमात्रं वर्तसे मरकत का तव मूल्यकथा ॥]

दुःशिक्षिता अतत्त्वज्ञा दुर्विदग्धाश्च। अहं त्वतिशयितव्युत्पन्ना सर्वं तत्त्वं जानामीति भावः ॥

पल्लीनिवासिन्या विलासिन्या दूती पल्लीभङ्गशङ्कयानागच्छन्तं तत्कान्तं तत्समीपगमनायोत्साहयितुमाह—

जँह चिन्तेइ परिअणो आसङ्कइ जह अ तस्स पडिवक्खो।
बालेण वि गामणिणन्दणेण तँह रक्खिआ पल्ली ॥ २८ ॥

१. 'घन' घ. २. 'तस्य' घ. ३. 'द्वयोरपि सममेव निर्वृत्तरतानि जातानि' घ. ४. 'णिउञ्ज' ख. ५. 'वापिका' घ. ६. क्षयिष्यसि' घ. ७. 'तह' ग. ८. 'तह' ग-पुस्तके नास्ति.

[[1]यथा चिन्तयति परिजन आशङ्कते यथा च तस्य प्रतिपक्षः ।
बालेनापि ग्रामणीनन्दनेन [2]तथा रक्षिता पल्ली ॥]

कथमनेन बालेन रक्षा कर्तव्येति परिजनश्चिन्तयति । बालोऽयमस्माभिर्ग्राह्य इति प्रतिपक्षश्चिन्तयतीत्यर्थः ॥

पत्युर्विक्रमगुणं ख्यापयन्ती व्याधवधूः पृषतचर्म पृच्छन्तं पथिकमाह—

अण्णेसु पहिअ पुच्छसु [3]वाहअपुत्तेसु पुसिअचम्माइं ।
अम्हं वाहजुआणो हरिणेसु धणुं ण णामेइ ॥ २९ ॥

[अन्येषु पथिक पृच्छ [4]व्याधकपुत्रेषु पृषतचर्माणि ।
अस्माकं व्याधयुवा हरिणेषु धनुर्न नामयति ॥

पृषतो मृगविशेषः । 'गोकर्णपृषतैणर्श्यरोहिताश्चमरो मृगाः' इत्यमरः । प्रचण्डदोर्दण्डबलमदोद्धतोऽयं करुणया मृगान्न हन्ति । किं तु मत्तमातङ्गानिति भावः ॥

वधूं प्रति सासूया व्याधमाता बन्धुजनमाह—

गअवहुवेहव्वअरो पुत्तो मे एक्ककण्डविणिवाई ।
तह सोह्णाइ [5]पुलइओ जह कण्डवरण्डअं वहइ ॥ ३० ॥

[गजवधूवैधव्यकरः पुत्रो मे एककाण्डविनिपाती ।
तथा स्नुषया [7]प्रलोकितो यथा [8]काण्डसमूहं वहति ॥]

'विणडिओ' इति क्वचित्पाठः । तत्र विलङ्घितः शोषित इत्यर्थः । वरण्डकः समूहः । अयमर्थः—पूर्वमसौ मत्पुत्र एकेनैव शरेण मत्तमातङ्गान्हत्वा तद्वधूनां वैधव्यं कृतवान् । संप्रति वधूसक्तः शरसमूहमेव वहति, न तु किमपि कर्तुं क्षम इत्यर्थः ॥

ग्रामणीभार्या शत्रुं विजित्य सङ्ग्रामादागतस्य शस्त्रभिन्नस्य भर्तुर्मनस्विनो मानग्लानिश्रवणान्मरणमाशङ्कमाना तन्निवारणाय परिजनमाह—

विञ्झारुहणालावं पल्ली मा कुणउ गामणी ससइ ।
पच्चुज्जिविओ जइ कह वि सुणइ ता जीविअं मुअइ ॥ ३१ ॥

[विन्ध्यारोहणालापं पल्ली मा करोतु ग्रामणीः श्वसिति ।
प्रत्युज्जीवितो [9]यदि कथमपि शृणोति तज्जीवितं मुञ्चति ॥]

पल्लीनिवासिजनो भयाद्विन्ध्यारोहणकथां मा करोतु । अस्मिञ्जीवति कुतो भयमिति

---

१. 'तथा' ग. २. 'तथा' ग-पुस्तके नास्ति. ३. 'वाहकुडुम्बेसु' ग. ४. 'व्याधकुटुम्बेषु' ग. ५. 'विलुलिओ' ग. ६. 'विनिघाती' घ. ७. 'विलुलिओ' ग, 'विघटितो' घ. ८. 'काण्डकं' घ. ९. 'यथा' ब.

भावः। श्वसिति जीवति। प्रत्युज्जीवितः प्रत्यागतप्राणो यदि श्रृणोति तदा पल्लीनिवासिजनपलायनश्रवणजातमानभङ्गो जीवितमेव जह्यादित्यर्थः॥

यो यस्य स्निग्धः स म्रियमाणोऽपि तस्य हितमेवोपदिशतीति निदर्शयन् कोऽपि सहचरमाह—

अप्पाहेइ मरन्तो पुत्तं पल्लीवई पअत्तेण।
मह णामेण जह तुमं ण लज्जसे तह करेज्जासु॥ ३२॥
[शिक्षयति म्रियमाणः पुत्रं पल्लीपतिः प्रयत्नेन।
मम नाम्ना यथा त्वं न लज्जसे तथा करिष्यसि॥]

अप्पाहेइ शिक्षयति संदिशतीति वार्थः। यः खलु निर्गुणो भवति सोऽमुकस्य पुत्रोऽयमिति व्यपदिश्यते पूज्यते चेति नाम्नो लज्जाहेतुत्वम्। गुणवांस्तु स्वपौरुषेणैव ख्यातो भवतीति भावः॥

अनुकूले विधावमङ्गलान्यपि मङ्गलानि भवन्तीति निदर्शयन्कोऽपि सखायमाह—

अणुमरणपत्थिआए पच्चागअजीविए पिअअमम्मि।
वेहव्वमण्डणं कुलवहूअ सोहग्गअं जाअम्॥ ३३॥
[अनुमरणप्रस्थितायाः प्रत्यागतजीविते प्रियतमे।
वैधव्यमण्डनं कुलवध्वाः सौभाग्यकं जातम्॥]

दन्तचिह्नं दृष्ट्वा परस्त्रीसङ्गशङ्कया पशुकल्पानां पामरीणामपीर्ष्या भवति निरपराधे पत्यौ, किं पुनरस्या महाकुलीनायाः शीलौदार्यादिगुणसंपन्नायाः सापराधे त्वयि। अतः पादयोः पतित्वेनां प्रसादयेत्यनुनयविमुखं नायकं प्रति दूत्याह—

महुमच्छिआइ दट्ठं दट्ठूण मुहं पिअस्स सूणोट्ठम्।
ईसालुई पुलिन्दी रुक्खच्छाअं गआ अण्णम्॥ ३४॥
[मधुमक्षिकया दष्टं दृष्ट्वा मुखं प्रियस्योच्छूनोष्ठम्।
ईर्ष्यालुः पुलिन्दी वृक्षच्छायां गतान्याम्॥]

पत्या सह कृतकलहा सा त्वसमागमाभिलाषिणी तिष्ठतीति जारं प्रति दूत्या इयमुक्तिरिति कश्चित्॥

गिरिग्रामप्रशंसाछलेनासती जारं प्रति स्वच्छन्दाभिसारस्पृहामाह—

धण्णा वसन्ति णीसङ्कमोहणे बहलपत्तलवैइम्मि।
वाअन्दोलणओणविअवेणुगहणे गिरिग्गामे॥ ३५॥

१. 'आपृच्छति' ग. २. 'पत्युः' ग. ३. 'ईर्ष्यायिता' ग. ४. 'वणम्मि' ग.

[धन्या वसन्ति निःशङ्कमोहने बहलपत्रलवृतौ ।
वातान्दोलनावनामितवेणुगहने गिरिग्रामे ॥]

निःशङ्कं मोहनं सुरतं यत्र सः । तथा बहलैरुच्चतरैः पत्रलैः पत्रबहुलैरर्थाद्वृक्षैर्वृतिर्वेष्टनं यत्र ॥

गिरिग्रामगमनाय नायकमुत्साहयन्ती दूती वर्षागमनकृतं तेषां रामणीयकातिशयमाह—

पप्फुल्लघणकलम्बा णिद्धोअसिलाअला मुइअमोरा ।
पसरन्तोज्झरमुहला ओसाहन्ते गिरिग्गामा ॥ ३६ ॥

[प्रोत्फुल्लघनकदम्बा निर्धौतशिलातला मुदितमयूराः ।
प्रसरन्निर्झरमुखरा उत्साहयन्ति गिरिग्रामाः ॥]

अत्र प्रथमविशेषणेन संभोगोद्दीपनविभावः, द्वितीयेन शयनस्थलम्, तृतीयेन संभोगानन्तरं विनोदसंभारः, चतुर्थेन स्तनितमणितादिध्वनिनिह्नवश्च प्रतिपाद्यते ॥

नीरसायामपि रसोत्पादकत्वमन्यापदेशेन कथयन्ती दूती नायकस्य सुरतोपचारचातुर्यं कामिनीजनानुरञ्जनार्थमाह—

तह परिमलिआ गोवेण तेण हत्थं पि जा ण ओल्लेइ ।
स च्चिअ धेणू एह्णिं पेच्छसु कुडदोहिणी जाआ ॥ ३७ ॥

[तथा परिमलिता गोपेन तेन हस्तमपि या नार्द्रयति ।
सैव धेनुरिदानीं प्रेक्षध्वं कुटदोहिनी जाता ॥]

तथा तेन प्रकारेण स्तनपृष्ठादिपरामर्शेन, पक्षे करिहस्तादिविन्यासेन । कुटो घटः । घटपूर्णं दुग्धं ददातीत्यर्थः । पक्षे बहुतरं स्मरजलं क्षरतीत्यर्थः ॥

कापि कस्याश्चित्सौभाग्यातिशयमन्यापदेशेनाह—

धवलो जिअइ तुह कए धवलस्स कए जिअन्ति गिट्ठीओ ।
जिअ तम्बे अम्ह वि जीविएण गोट्ठं तुमाअत्तम् ॥ ३८ ॥

[धवलो जीवति तव कृते धवलस्य कृते जीवन्ति गृष्टयः ।
जीव हे गौः अस्माकमपि जीवितेन गोष्ठं त्वदायत्तम् ॥]

तम्बा गौः, धवलो वृषश्रेष्ठः । 'धवला गवि । वृषश्रेष्ठे पुमान्' इति मेदिनीकोषः । गृष्टिरेकवारप्रसूता गौः । 'अथ गृष्टिः सकृत्प्रसूतगवि' इति मेदिनीकोषः ॥

---

१. 'वने' ग-घ. २. 'वातान्दोलनचलद्वेणु' ग. ३. 'उअसाहन्ते' ग. ४. 'प्रसरन्तोझर' घ. ५. 'गृष्टयः' ग.

यो यस्य प्रियस्तस्य तदवयवानुकारिणि प्रीतिर्भवतीति निदर्शयन्कोऽपि सहचरमाह—

अग्घाइ छिवइ चुम्बइ ठेवइ हिअअम्मि जणिअरोमञ्चो ।
जाआकवोलसरिसं पेच्छह पहिओ महुअउप्फम् ॥ ३९ ॥

[[1]आजिघ्रति स्पृशति चुम्बति स्थापयति हृदये जनितरोमाञ्चः ।
जायाकपोलसदृशं पश्यत पथिको मधूकपुष्पम् ॥]

नार्तस्तत्त्वविचारणक्षमो भवतीति दर्शयन्कोऽपि मध्याह्नवर्णनमाह—

उअ ओल्लिज्जइ मोहं भुअंगकित्तीअ कडअलग्गाइ ।
ओज्झरधारासद्धालुएण सीसं वणगएण ॥ ४० ॥

[पश्यार्द्रीक्रियते[2] मोघं भुजंगकृत्तौ कटकलग्नायाम् ।
नि[3]र्झरधाराश्रद्धालुकेन शीर्षं वनगजेन ॥]

'अप्पिज्जइ' इति पाठे अर्प्यत इत्यर्थः । मोघं निरर्थकम् । कृत्तौ कञ्चुके । वनगजेनार्थात्प्रचण्डातपतप्तेन । जारस्यान्यमनस्कतासंपादनार्थं मध्याह्नाभिसारिकाया उक्तिर्वा ॥

पूर्वनायिकां विहाय गुणान्तरलोभेन नायिकान्तरगामिनं नायकं काप्यन्यापदेशेनाह—

कमलं मुअन्त महुअर पिक्ककइत्थाण गन्धलोहेण ।
आलेक्खलड्डुअं पामरो व्व छिविऊण जाणिहिसि ॥ ४१ ॥

[कमलं मुञ्च[4]न्मधुकर पक्ककपित्थानां गन्धलोभेन ।
आलेख्यलड्डुकं पामर इव स्पृष्ट्वा ज्ञास्यसि ॥]

यथा ह्यनभिज्ञः पामरश्चित्रस्थं मोदकादिकमालोकयन्मोदमानः करस्थं भक्ष्यमपहाय तज्जिघृक्षया गतः स्पृष्ट्वा तत्स्वरूपमवधार्य खिद्यते, एवं त्वमपि नीरसकर्कशस्पर्शकापित्थस्य गन्धेनाकृष्टचेताः कमलं मुञ्चन्स्पर्शनसमनन्तरमेतयोरन्तरं ज्ञास्यसीति भावः ॥

काप्यासन्नविवाहाया सखीजनं सपरिहासमाह—

गिज्जन्ते मङ्गलगाइआहिँ वरगोत्तदिण्णअण्णाए ।
सोउं व णिग्गओ उअह होन्तवहुआइ रोमञ्चो ॥ ४२ ॥

[गीयमाने मङ्गलगायिकाभि[5]र्वरगोत्रदत्तकर्णायाः ।
श्रोतुमिव निर्गतः[6] पश्यत भविष्यद्वधूकाया[7] रोमाञ्चः ॥]

गोत्रं नाम ॥

---

१. 'आघ्राति' ग. २. 'प्रकम्पते' घ. ३. 'अवझर' घ. ४. 'मुच्यमान' ग. ५. 'गायनीभिः' ग. ६. 'निर्गच्छति' ग. ७. 'वध्वा' ग-घ.

आसन्नविवाहा व्यभिचारशीला काचित्पुष्पितं संकेतवेतसनिकुञ्जमालोक्योत्प्रेक्षते—

मण्णे आअण्णन्ता आसण्णविआहमङ्गलुग्गाइम् ।
तेहिँ जुआणेहिँ समं हसन्ति मं वेअसकुडङ्गा ॥ ४३ ॥

[मन्ये आकर्णयन्त आसन्नविवाहमङ्गलोद्गीतम् ।
तैर्युवभिः समं हसन्ति मां वेतसनिकुञ्जाः ॥]

यैः समं पूर्वं सुरतसौख्यमनुभूतं तैः सममित्यर्थः ॥

बन्धुजनप्रीतये काचिदचिरवृत्तविवाहयोर्दम्पत्योरन्योन्यानुरागमाह—

उअगअचउत्थिमङ्गलहोन्तविओअसविसेसलग्गेहिं ।
तीअ वरस्स अ सेअंसुएहिँ रुण्णं व हत्थेहिं ॥ ४४ ॥

[उपगतचतुर्थीमङ्गलभविष्यद्वियोगसविशेषलग्नाभ्याम् ।
तस्या वरस्य च स्वेदाश्रुभी रुदितमिव हस्ताभ्याम् ॥]

उपगते चतुर्थीमङ्गले वियोगो भविष्यतीति भयेन सविशेषं लग्नाभ्यामित्यर्थः । चतुर्थीं कृत्वा जामाता स्वगृहं गच्छतीति लोकव्यवहारः ॥

नववधूसंगमस्यालौकिकचमत्कारित्वं प्रतिपादयन्कोऽपि सहचरमाह—

ण अ दिट्ठिं णेइ मुहं ण अ छिविउं देइ णालवइ किं पि ।
तह वि हु किं पि रहस्सं णववहुसङ्गो पिओ होइ ॥ ४५ ॥

[न च दृष्टिं नयति मुखं न च स्प्रष्टुं ददाति नालपति किमपि ।
तथापि खलु किमपि रहस्यं नववधूसङ्गः प्रियो भवति ॥

अत्र प्रियत्वहेतुमन्तरेणापि प्रियत्वमिति विभावनालंकारः । 'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना' इति तल्लक्षणात् ॥

बालाया वाम्येन कुपितं वरं प्रसादयितुं कापि नववध्वाः स्वभावमाह—

अलिअपसुत्तवलन्तम्मि णववरे णववहूअ वेवन्तो ।
संवेल्लिओरुसंजमिअवत्थगण्ठिं गओ हत्थो ॥ ४६ ॥

[अलीकप्रसुप्तवलमाने नववरे नववध्वा वेपमानः ।
संवेष्टितोरुसंयमितवस्त्रग्रन्थिं गतो हस्तः ॥]

अलीकप्रसुप्तश्चासौ वलमानश्च तथाभूते सतीत्यर्थः । संवेष्टिताभ्यामन्योन्यसंश्लेषिता-

---

१. 'चेअसि' ख-ग. २. 'जानामि' ग. ३. 'सार्धं' ग. ४. 'चेतसि' ग. ५. 'पश्य चतुर्थी' घ. ६. 'सार्थः' ग. ७. 'प्रसुप्ते वलति' ग. ८. 'कम्पितोरु' ग.

भ्यामूरुभ्यां संयमितस्य वस्त्रस्य ग्रन्थिं नववध्वा हस्तो गत इति संबन्धः। स्वभाव एवायं बालानाम् । न तु कोपेनेति भावः ॥

नववधूविस्रम्भणानभिज्ञेन कान्तेन कोपितायाः कस्याश्चिदवस्थां कापि सखीमाह—

पुच्छिज्जन्ती ण भणइ गहिआ पप्फुरइ चुम्बिआ रुअइ ।
तुह्णिक्का णववहुआ कआवराहेण उवऊढा ॥ ४७ ॥

[पृच्छ्यमाना न भणति गृहीता प्रस्फुरति चुम्बिता रोदिति ।
तूष्णीका नववधूः कृतापराधेनोपगूढा ॥]

संमत्यभावेऽपि नववधूर्बलादुपभोक्तव्येति नायकं प्रति दूत्या उक्तिर्वा ॥

पुनः पुनः कस्यचित्कथाः कुर्वतीं कामप्युपहसन्ती कापि मातृभगिनीमाह—

तत्तो च्चिअ होन्ति कहा विअसन्ति तहिं तहिं समप्पन्ति ।
किं मण्णे माउच्छा एक्कजुआणो इमो गामो ॥ ४८ ॥

[¹तत एव भवन्ति कथा विकसन्ति ²तत्र तत्र समाप्यन्ते ।
किं मन्ये मातृष्वसः एकयुवकोऽयं ग्रामः ॥]

किमन्यो युवा नास्ति येन तत्कथैकमुखरो लोक इत्याशयः ॥

विरहोत्कण्ठिता काचिद्वल्लभवचनस्य वचनान्तराद्विशेषमनुभवसिद्धं प्रदर्शयति—

जाणि वअणाणि अम्हे वि जम्पिओ ताइँ जम्पइ जणो वि ।
ताइं च्चिअ तेण पजम्पिआइं हिअअं सुहावेन्ति ॥ ४९ ॥

[यानि वचनानि ³वयमपि जल्पामस्ता⁴नि जल्पति जनोऽपि ।
तान्येव तेन प्रजल्पितानि हृदयं ⁵सुखयन्ति ॥]

जारसंगमायोत्साहयन्ती दूती पत्या सह कृतकलहां नायिकामाह—

सव्वाअरेण मग्गह पिअं जणं जइ सुहेण वो कज्जम् ।
जं जस्स हिअअदइअं तं ण सुहं जं तहिं णत्थि ॥ ५० ॥

[⁶सर्वादरेण मृ⁷गयध्वं प्रियं जनं यदि सुखेन वः कार्यम् ।
यद्यस्य हृदयदयितं तन्न सुखं ⁸यत्तत्र नास्ति ॥]

तथा च यत्रानुरागः स एव नायकः सुखहेतुरिति भावः ॥

---

१. 'तत्रैव निर्गच्छन्ति' ग. २. 'तत्रैव तत्रैव' ग, 'तस्मिंस्तस्मिन्समर्प्यन्ते' घ. ३. 'वयं जल्पामहे' ग. ४. 'तान्येव' ग. ५. 'सुखापयन्ति' घ. ६. 'सत्यादरेण जल्पत' घ. ७. 'मार्गयत' ग. ८. 'यत्र तत्र' ग, 'यत्तस्मिन्न' घ.

तथैवापरगाथामाह—यद्वा प्रसाधनं विनैव कान्तदर्शनायागतां दुहितरं प्रति क्रुध्यन्तीं स्वयं कश्चिदाह—

दीसन्तो दिट्ठिसुहो चिन्तिज्जन्तो मणवल्लहो अत्ता।
उल्लावन्तो सुइसुहो पिओ जणो णिच्चरमणिज्जो॥ ५१॥

[दृश्यमानो दृष्टिसुखश्चिन्त्यमानो मनोवल्लभः श्वश्रु।
उल्लप्यमानः श्रुतिसुखः प्रियो जनो नित्यरमणीयः॥]

उल्लप्यमानः कीर्त्यमानः। नित्येति। तथाचालं प्रसाधनायासेनेति भावः॥

क्षीणधनत्वात्पूर्वं निष्कासितः पुनरुपार्जितधनो दुहितृस्नेहमुपदर्शयन्त्या कुट्टन्यानुनीयमानो भुजंगः सोपालम्भप्रत्याख्यानमात्मनिन्दाव्याजेनाह—

ठाणब्भट्ठा परिगलिअपीणआ उण्णईअ परिचत्ता।
अम्हे उण ठेरपओहर व्व उअरे च्चिअ णिसण्णा॥ ५२॥

[स्थानभ्रष्टाः परिगलितपीनत्वा उन्नत्या परित्यक्ताः।
वयं पुनः स्थविरापयोधरा इवोदर एव निषण्णाः॥]

धनवन्त एव युष्माकमनुरूपाः। वयं तु हारितधनत्वादुदरभरणमात्रव्यापृताः। तत्किमस्माभिर्युष्माकं प्रयोजनमिति भावः॥

खण्डिता काचित्सूर्यनमस्कारच्छलेन कान्तमुपालभते—

पच्चूसागअ रञ्जिअदेह पिआलोअ लोअणाणन्द।
अण्णत्तखविअसव्वरि णहभूसण दिणवइ णमो दे॥ ५३॥

[प्रत्यूषागत रक्तदेह प्रियालोक लोचनानन्द।
अन्यत्रक्षपितशर्वरीक नभोभूषण दिनपते नमस्ते॥]

प्रत्यूषे प्रभाते आगतो द्वीपान्तरात्, पक्षे महिलान्तरगृहात्। रक्त आरक्तः, पक्षेऽनुरक्तः। अन्यमहिलायामित्यर्थात्। देहो यस्य सः। तथा प्रिय आलोको यस्य सः। पक्षे प्रियालोकस्य महिलाजनस्य लोचनानन्दो यस्मात्सः। अन्यत्र द्वीपान्तरे, पक्षे अन्यस्यार्थे क्षपिता शर्वरी येन। नभसो भूषण, पक्षे परस्त्रीदत्तनखभूषण। दिनपते नमस्ते। भास्वानिव दूरादेवाभिवन्दनीयस्त्वं न त्वभिगम्य इत्यर्थः। अत्र सूर्यनायकयोरुपमानोपमेयभावो व्यङ्ग्यः॥

किं गर्भवती भवती इति प्रियेण पृष्टा काचिदाह—

विवरीअसुरअलेहल पुच्छसि मह कीस गब्भसंभूइम्।
ओअत्ते कुम्भमुहे जललवकणिआ वि किं ठाइ॥ ५४॥

१. भगिनि' ग. २. 'पयोधरौ' ग. ३. 'रज्यमानदेह' घ. ४. 'लंपट' क.

[विपरीतसुरतलम्पट पृच्छसि मम किमिति गर्भसंभूतिम्।
अपवृत्ते कुम्भमुखे जललवकणिकापि किं तिष्ठति॥]

अपवृत्तेऽधोमुखीकृते॥

कामार्ताः स्वाजन्यमप्यपलपन्तीति निदर्शयन्कश्चिदाह—

अच्चासण्णविवाहे समं जसोआइ तरुणगोवीहिं।
वड्ढन्ते महुमहणे संबन्धा णिह्नुविज्जन्ति॥ ५५॥

[अत्यासन्नविवाहे समं यशोदया तरुणगोपीभिः।
वर्धमाने मधुमथने संबन्धा निह्नूयन्ते॥]

यशोदया समं ये संबन्धास्ते निह्नूयन्त इत्यन्वयः॥

अनुरूपनायकालाभेन निर्विण्णा कापि सोपालम्भं विधिमाह—

जं जं आलिहइ मणो आसावट्टीहिँ हिअअफलअम्मि।
तं तं बालो व्व विही णिहुअं हसिऊण पम्हुसइ॥ ५६॥

[यद्यदालिखति मन आशावर्तिकाभिर्हृदयफलके।
तत्तद्बाल इव विधिर्निभृतं हसित्वा प्रोञ्छति॥]

खण्डिता काप्यन्यापदेशेन कान्तं सचमत्कारमाह—

अणुहुत्तो करफंसो सअलअलापुण्ण पुण्णदिअहम्मि।
बीआसङ्गकिसङ्गअ एह्निं तुह वन्दिमो चलणे॥ ५७॥

[अनुभूतः करस्पर्शः सकलकलापूर्ण पूर्णदिवसे।
द्वितीयासङ्गकृशाङ्ग इदानीं तव वन्दामहे चरणौ॥]

कराः किरणाः, पक्षे करो हस्तः। सकलकलाभिः षोडशकलाभिः पूर्ण, पक्षे चतुःषष्टिकलाभिः पूर्ण। पूर्णदिवसे पूर्णिमादिवसे, पक्षे पुण्यदिवसे। द्वितीया तिथिः, पक्षे द्वितीया स्त्री। तस्याः सङ्गेन कृशाङ्ग। 'द्वितीया सहधर्मिणी' इत्यमरः। अत्र समासोक्त्यलंकारेण चन्द्रकान्तयोरुपमानोपमेयभावो व्यङ्ग्यः॥

विरहोत्कण्ठिता दूतीमाह—

दूरन्तरिए वि पिए कह वि णिअत्ताइँ मज्झ णअणाइँ।
हिअअं उण तेण समं अज्ज वि अणिवारिअं भमइ॥ ५८॥

---

१. 'लुब्ध' ग. २. 'अवनते' ग. ३. 'आशापङ्क्तिभिः' ग, 'आशावृत्तिभिः' घ. ४. 'बालक इव' ग. ५. 'प्रमुषति' घ.

[दूरान्तरितेऽपि प्रिये कथमपि निर्[1]वर्तिते मम नयने ।
हृदयं पुनस्तेन सममद्याप्यनिवारितं [2]भ्रमति ॥]

मानं कर्तुमसमर्था नायिकां प्रति दूती सप्रणयकोपमाह—

तस्स कहाकण्टइए सद्दाअण्णणसमोसरिअकोवे ।
समुहालोअणकं[3]म्पिरि उवऊढा किं [4]पवज्जिहिसि ॥ ५९ ॥

[तस्य कथाकण्टकिते [5]शब्दाकर्णनसमपसृतकोपे ।
संमुखालोकन[6]कम्पनशीले उपगूढा किं [7]प्रपत्स्यसे ॥]

संध्यासमयसूचनव्याजेन दूती काचिदभिसारिकां त्वरयितुमाह—

भरणमिअणीलसाहग्गखलिअ[8]चलणद्धविहुअवक्खउडा ।
तरुसिहरेसु विहंगा कह कह वि लहन्ति संठाणम् ॥ ६० ॥

[भरनमितनीलशाखाग्रस्खलित[9]चरणार्धविधुतपक्षपुटाः ।
तरुशिखरेषु विहंगाः कथं कथमपि लभन्ते संस्थानम् ॥]

नीलेत्यनेनार्द्रतया स्निग्धत्वम् । तच्च पदस्खलने हेतुरिति सूचितम् ॥

असतीं प्रशंसता केनापि संगता काचिदसती तमाह—

अहरमहुपाणधारिल्लिआइ जं च रमिओ सि सविसेसम् ।
असइ अलज्जिरि बहुसिक्खिरि त्ति मा णाह मण्णुहिसि ॥६१॥

[अधरमधुपानलालसया यच्च रमितोऽसि सविशेषम् ।
असती अलज्जाशीला बहुशिक्षितेति मा नाथ मंस्थाः ।]

असतीरक्षणस्य दुःशकतामसती पतिं श्रावयन्ती काचिदाह—

खाणेण अ पाणेण अ तह गहिओ मण्डलो अडअणाए ।
जह जारं अहिणन्दइ भुक्कइ घरसामिए एन्ते ॥ ६२ ॥

[[10]खादनेन च पानेन च तथा गृहीतो मण्डलोऽ[11]सत्या ।
यथा जार[12]मभिनन्दति भुक्कति गृहस्वामिन्येति ॥]

गृहीतो वशीकृतः । मण्डलः कुक्कुरः । 'मण्डलं परिधौ कुष्ठे देशे द्वादशराजसु । क्ली-

---

१. 'निवृत्तेऽस्माकं' ग, 'निवृत्तानि मम नयनानि' घ. २. 'वहति' ग. ३. 'वेवरि' ग. ४. 'विलिज्जिहिसि' ग. ५. 'शब्दायमाने' ग. ६. 'वेपिते' ग, 'वेपनशीले' घ. ७. 'विलायिष्यसि' ग. ८. 'चलणग्ग' ग. ९. 'चरणाग्र' ग. १०. 'भक्षणेन' ग. ११. 'स्वैरिण्या' घ. १२. 'अभिनन्दयति शब्दायति स्वामिन्यागच्छमाने' ग.

बेऽथ निवहे बिम्बे त्रिषु पुंसि तु कुकुरे ॥' इति मेदिनीकोषः । भुक्कते शब्दायते । एति आगच्छति । सतिसप्तमी ॥

नायिकान्तरानुरक्तजामातृदर्शनेन स्वदुहितरमनुशोचन्तीं व्याधश्वश्रूं दृष्ट्वा काचिदाह—

कण्डन्तेण अकण्डं पल्लीमज्झस्सि विअडकोअण्डम् ।
पइमरणाहिँ वि अहिअं वाहेण रुआविआ अत्ता ॥ ६३ ॥

[कण्डूयता अकाण्डे पल्लीमध्ये विकटकोदण्डम् ।
पतिमरणादप्यधिकं व्याधेन रोदिता श्वश्रूः ॥]

कण्डूयता तक्षणेन सूक्ष्मं कुर्वता ॥

किमिति रोदिषीति सख्या पृष्टा काचिदाह—

अम्हे उज्जुअसीला पिओ वि पिअसहि विआरपरिओसो ।
ण हु अण्णा का वि गई वाहोहा कह पुसिज्जन्तु ॥ ६४ ॥

[वयं ऋजुकशीलाः प्रियोऽपि प्रियसखि विकारपरितोषः ।
न खल्वन्या कापि गतिर्बाष्पौघाः कथं प्रोञ्छयताम् ॥]

विकारेषु हावभावादिषु परितोषो यस्य सः । हावभावाद्यभिज्ञाभिर्नायिकाभिरपहृतहृदयोऽयम् । मया तु किमपि न ज्ञायत इत्यतो रुद्यत इति भावः ॥

अनुरक्तायामपि मयि नानुरक्तोऽसीति कापि नायकं सोपालम्भमाह—

धवलो सि जइ वि सुन्दर तह वि तुए मज्झ रञ्जिअं हिअअम् ।
राअभरिए वि हिअए सुहअ णिहित्तो ण रत्तो सि ॥ ६५ ॥

[धवलोऽसि यद्यपि सुन्दर तथापि त्वया मम रञ्जितं हृदयम् ।
रागभृतेऽपि हृदये सुभग निहितो न रक्तोऽसि ॥]

धवलः शुभ्रः श्रेष्ठश्च । रागो लौहित्यमनुरागश्च ॥

उल्लसत्कुङ्कमादिपरिमलसमुज्ज्वलनेपथ्यां गुणहीनां कामप्यनुवर्तमानं कामिजनमुपहसन्ती काचिदाह—

चञ्चुपुडाहअविअलिअसहआररसेण सित्तदेहस्स ।
कीरस्स मग्गलग्गं गन्धन्धं भमइ भमरउलम् ॥ ६६ ॥

---

१. 'कर्षता च कष्टं' ग. २. 'बाष्पेण रुदिता' घ. ३. 'माता' ग. ४. 'उज्ज्वलशीलाः' ग. ५. 'विकारद्वेषी' ग, 'विहारपरितोषः' घ. ६. 'प्रसार्यन्ते' घ. ७. 'भरिते' घ.

[चञ्चुपुटाहतवि[1]गलितसहकाररसेन सिक्तदेहस्य ।
[2]कीरस्य मार्गलग्नं गन्धान्धं भ्रमति भ्रमरकुलम् ॥]

जातानुरागा गृहिणी विदिताभिप्रायं प्रवासिजनमाह—

एत्थ णिमज्जइ अत्ता एत्थ अहं एत्थ परिअणो सअलो ।
[3]पन्थिअ रत्तीअन्धअ मा मह सअणे णिमज्जिहिसि ॥ ६७ ॥

[अत्र नि[4]मज्जति श्वश्रूरत्राहमत्र परिजनः सकलः ।
पथिक रात्र्यन्ध[क] मा मम शयने नि[5]मङ्क्ष्यसि ॥]

निमज्जति स्वपिति ॥

विरहानलस्य दुःसहत्वं प्रतिपादयन्ती विरहिणी काचिदाह—

परिओससुन्दराइं सुरएसु लहन्ति जाइँ सोक्खाइं ।
ताइं च्चिअ उण विरहे [6]खाउग्गिणाइँ कीरन्ति ॥ ६८ ॥

[परितोषसुन्दराणि सुरतेषु लभन्ते यानि सौख्यानि ।
तान्येव पुनर्विरहे [7]खादितोद्गीर्णानि कुर्वन्ति ॥]

लभन्ते । कामिन्य इति शेषः । तान्येवेति । तथा च नेमानि विरहदुःखानि किं तु पूर्वं भुक्तानि सुखान्येवोद्गीर्णानि । एतद्रूपेण परिणतानीत्यपह्नुत्यलंकारो व्यङ्ग्यः ॥

कोऽपि साभिलाषः कस्याश्चित्पीनोन्नतपयोधराया हारं वर्णयति—

मग्गं च्चिअ अलहन्तो हारो पीणुण्णआणँ थणआणम् ।
उव्विग्गो भमइ उरे जमुणाणइफेणपुञ्जो व्व ॥ ६९ ॥

[मार्गमेवालभमानो हारः [9]पीनोन्नतयोः स्तनयोः ।
उद्विग्नो भ्रमत्युरसि यमुनानदीफे[10]नपुञ्ज इव ॥]

अत्र यमुनाफेनसादृश्येन स्तनमुखश्यामता व्यज्यते । तया च सत्त्वाधानम्, तेन चानुपभोग्यतेति स्वयमूहनीयम् ॥

राजसंनिधौ तिष्ठता तेन मम मित्रेण किं संपादितमिति केनापि पृष्टः कश्चिदन्यापदेशेनाह—

एक्केण वि वडबीअङ्कुरेण सअलवणराइमज्झम्मि ।
तह तेण कओ अप्पा जह सेसदुमा तले तस्स ॥ ७० ॥

---

१. 'प्रकटित' ग. २. 'पक्षिणः' घ. ३. 'हे पहिअ रत्तिअन्धअ' ग. ४. 'निषीदति श्वश्रूरत्राहं निषीदामि' ग. ५. 'निषीदिष्यसि' ग, 'निमग्नो भूः' घ. ६. 'भरिउग्गिण्णाणि' ग. ७. 'भरितोद्गीर्णानि कीर्यन्ते' ग, 'उपलाग्निनिभानि कीर्यन्ते' घ. ८. 'एव' ग-घ. ९. 'पीनोन्नतानां स्तनानां' ग-घ. १०. 'पूरपुञ्ज' घ.

[एकेनापि वटबीजाङ्कुरेण सकलवनराजिमध्ये ।
तथा तेन कृत आत्मा यथा शेषद्रुमास्तले तस्य ॥]

एकाकिनापि तेन सकलविपक्षमध्ये तथोत्कर्षः संपादितो यथा तत्प्रभावेण सर्वेऽपि विपक्षास्तिरस्कृता इति भावः । मूढेनापि तरुणा उत्कर्षाय चेष्टितं त्वं पुनर्महावंशप्रभवः कथं न यतसे इति निरुद्योगं कंचित्प्रत्युपदेशो व्यङ्ग्य इति कश्चित् ॥

गुणिनः प्रायो दरिद्रा भवन्तीति प्रतिपादयन्कश्चिद्दारिद्र्यं संबोध्याह—

जे जे गुणिणो जे जे अ चाइणो जे विंडड्ढविण्णाणा ।
दारिद्द रे विअक्खण ताण तुमं साणुराओ सि ॥ ७१ ॥

[ये ये गुणिनो ये ये च त्यागिनो ये विदग्धविज्ञानाः ।
दारिद्र्य रे विचक्षण तेषां त्वं सानुरागमसि ॥]

कोऽपि साभिलाषः कस्याश्चिन्मुखचन्द्रं वर्णयति—

जइ कोत्तिओ सि सुन्दर सहलतिहीचन्ददंसणसुहाणम् ।
ता मसिणं मोइज्जन्तकञ्चुअं पेक्खसु मुहं से ॥ ७२ ॥

[यदि कौतुकिकोऽसि सुन्दर सकलतिथिचन्द्रदर्शनसुखानाम् ।
तन्मसृणं मोच्यमानकञ्चुकं प्रेक्षस्व मुखं तस्याः ॥]

सखायं प्रति सख्युरुक्तिः । दूत्या वा नायकं प्रत्युक्तिः ॥

ग्रीष्मात्ययेऽपि नायकस्यानागमने समाश्वासयन्तीं सखीं प्रति समुत्सुका नायिकेदमाह—

समविसमणिव्विसेसा समन्तओ मन्दमन्दसंचारा ।
अइरा होहिन्ति पहा मणोरहाणं पि दुल्लङ्घा ॥ ७३ ॥

[समविषमनिर्विशेषाः समन्ततो मन्दमन्दसंचाराः ।
अचिराद्भविष्यन्ति पन्थानो मनोरथानामपि दुर्लङ्घ्याः ॥]

अथवा संकेतस्थलान्तराभावेन मार्गासन्नकुञ्जादौ दत्तसंकेतां वर्षां विना जनसंचारेण तत्स्थलं संप्रति न संकेतयोग्यमिति बोधयन्ती काचिदिदमाह ॥

---

१. 'विडड्ढ' ख. २. 'अयाचका ये ये विज्ञातसद्भावाः' घ. ३. 'कौतुकोऽसि' ग. ४. 'मसृणोन्मुच्य' ग. ५. 'अस्याः' ग. ६. 'अइदीहा होन्ति' ग. ७. 'अतिदीर्घा भवन्तीव' ग.

वंशकुञ्जे दत्तसंकेतायाः पुत्रवध्वास्तत्र गत्वा प्रियं संभुज्य परावृत्तौ तत्पत्रादिसंबन्धेन स्फुटेऽपराधे तामुपहसन्त्यां श्वश्र्वां प्रति वन्दिमुखेन (?) वधूरिदमाह—

अइदीहराइँ बहुए सीसे दीसन्ति वंसवत्ताइं।
भणिए भणामि अत्ता तुम्हाणँ वि पण्डुरा पुट्ठी ॥ ७४ ॥

[अतिदीर्घाणि वध्वाः शीर्षे दृश्यन्ते वंशपत्राणि।
भणिते भणामि श्वश्रु युष्माकमपि पाण्डुरं पृष्ठम् ॥]

अत्ता इति श्वश्रूसंबोधने देशी। पृष्ठशब्दस्य स्त्रीलिङ्गत्वमनुशासनात् ॥

मानवत्यां नायिकायां विरक्ता सेति विरज्यन्तं नायकं बोधयन्ती दूतीदमाह—

अत्थक्करूसणं खणपसिज्जणं अलिअवअणणिब्बन्धो।
उम्मच्छरसंतावो पुत्तअ पअवी सिणेहस्स ॥ ७५ ॥

[आकस्मिकरोषकरणं क्षणप्रसादनमलीकवचननिर्बन्धः।
उन्मत्सरसंतापः पुत्रक पदवी स्नेहस्य ॥]

अत्थक्केति आकस्मिके अद्भुते वा देशी। उन्मत्सरेति बहुले। 'उन्मूर्छनं प्रतिकूलवाचा प्रकोपनम्' इति प्राचीनटीका। तथा च स्नेहबहुलतया त्वयि सा नानाविधान्मानमार्गानाचरतीति न तद्विरक्तिसंभावनापीति यथापूर्वं त्वया तस्यां व्यवहर्तव्यमिति दूत्या उक्तिः ॥

जनसंमर्दे जातदर्शनां कटाक्षादिमविक्षिपन्ती नायिकामनुरक्तेतिसंदिहानं नायकं प्रोत्साहयन्ती सखी दूती चेदमाह—

पिज्जइ कण्णञ्जलिहिं जणरवमिलिअं वि तुज्झ संलावम्।
दुद्धं जलसंमिलिअं सा बाला राअहंसि व्व ॥ ७६ ॥

[पिबति कर्णाञ्जलिभिर्जनरवमिलितमपि तव संलापम्।
दुग्धं जलसंमिलितं सा बाला राजहंसीव ॥]

अत्र पिबतीति कर्त्रर्थे पीयत इति कर्मप्रत्ययः। प्राकृते लिङ्गवचनमतन्त्रमित्याद्यनुशासनात्। अथ वा सा बाला राजहंसी वेति प्रथमा तया राजहंस्येवेति तृतीयार्थे। तथा च पीयत इति यथाश्रुतमेव व्याख्येयम्। तथा च कोलाहलप्रविष्टस्यापि भवद्वचसो वैजात्यं प्रेमातिशयेन बुभुत्सया गृहीत्वा त्वदुक्तशब्दार्थं मन्निकटे वर्णयामासेति त्वयि सात्यन्तमनुरक्तेति यथापूर्वं स्नेहो विधेय इति सख्युक्तिः ॥

---

१. 'मातः' ग. २. 'पाण्डुरा पृष्टिः' ग-घ. ३. 'अकस्माद्रोषणं' ग. ४. 'उन्मूर्छन' ग.

प्रियगुणविशेषान्दूतीं प्रति पृच्छन्तीं नायिकां प्रति काचित्सखी वदति—

अइ उज्जुए ण लज्जसि पुच्छिज्जन्ती पिअस्स चरिआइं ।
सव्वङ्गसुरहिणो मरुवअस्स किं कुसुमरिद्धीहिं ॥ ७७ ॥

[अयि ऋजुके न लज्जसे पृच्छन्ती प्रियस्य चरितानि ।
सर्वाङ्गसुरभेर्मरुवकस्य किं कुसुमर्द्धिभिः ॥]

'पिण्डीतको मरुवकः प्रस्थपुष्पः फणिज्जकः' इत्यमरः । तथा च सहजसौन्दर्यादिगुणगणालंकृतस्य किं गुणान्तरं पृच्छसीति भावः ॥

स्वाभाविकलौहित्यवन्तौ करौ धातुरागेण रक्ताविति विभ्रमेण वारं वारं प्रक्षालयन्तीं मुग्धां निवारयन्ती दूत्याह—

मुद्धे अपत्तिअन्ती पवालअङ्कुरअवण्णलोहिअए ।
णिद्धोअधाउराए कीस सहत्थे पुणो धुअसि ॥ ७८ ॥

[मुग्धेऽप्रत्ययन्ती प्रवालाङ्कुरस्निग्धलोहितौ ।
निर्धौतधातुरागौ किमिति स्वहस्तौ पुनर्धावयसि ॥]

अप्रत्ययन्ती प्रत्ययं विश्वासमकुर्वाणा । धावयसि प्रक्षालयसि । नायिकामुग्धत्वं तद्धस्तयोः साहजिकरागवत्त्वं तटस्थं नायकं प्रति ख्यापयन्त्या दूत्याः सख्या वा उक्तिः ॥

वर्षागमनेन दुःखितां नायिकां शरत्कालोपगमेन स शीघ्रमायास्यतीति समाश्वासयन्ती सखीदमाह—

उअ सिन्धवपव्वअसच्छहाइँ धुअतूलपुञ्जसरिसाइं ।
सोहंन्ति सुअणु मुक्कोअआइँ सरए सिअब्भाइं ॥ ७९ ॥

[पश्य सैन्धवपर्वतसदृक्षाणि धुततूलपुञ्जसदृशानि ।
शोभन्ते सुतनु मुक्तोदकानि शरदि सिताभ्राणि ॥]

'सुअण' इति पाठे सुजनेति पान्थसंबुद्धिः । वर्षाकालापगमेन पथां यात्राक्षमतया देशान्तरगमनेन द्रव्यादिकमर्जनीयं गृहे न स्थेयमित्यादि भङ्गया कश्चिदाहेति वाक्यतात्पर्यार्थः ॥

संकेतस्थानकुञ्जानां महिषसांनिध्येन दुरासदत्वात्खिद्यन्तं नायकं खिद्यन्तीं वा नायिकां प्रोत्साहयन्ती काचिदाह—

आउच्छन्ति सिरेहिँ विवलिएहिँ उअ खँडिएहिँ णिज्जन्ता ।
णिप्पच्छिमवलिअपलोइएहिँ महिसा कुडङ्गाइं ॥ ८० ॥

---

१. 'अतिऋजुके' ग-घ. २. 'अप्रतियन्ती' घ. ३. 'वर्णलोहितौ' घ. ४. 'वसुआइन्ति व' ग. ५. 'धौततूलराशिसमानानि' ग. ६. 'शुष्यन्तीव मुक्तो' ग. ७. 'खण्डएहिं' ग.

[आपृच्छन्ति शिरोभिर्विवलितैः पश्य [खङ्गिकैः] नीयमानाः।
निःपश्चिमवलितप्रलोकितैर्महिषाः कुञ्जान् ॥]

महिषापगमेन कुञ्जा इदानीं निराबाधसंकेतस्थानतामुपगताः। पशवोऽपि महिषा ग्रीष्मादौ यत्र स्थित्वा छायामुपलभ्य सुखमासादितवन्तस्तत्परित्यागे तेषामपि दुःखं भवति परावृत्य पुनस्तत्पश्यन्तीति सदयमानां (सहृदयानां) सुखसंनिधानस्थलमवश्यं विलोकनीयमत्याज्यं चेति भावः। निःपश्चिमानि चरमाणि यानि वलितानि परावर्तनानि प्रलोकितानि च तैः॥

निजदारिद्र्येणाश्रु विमुञ्चन्तीं नायिकां समाश्वासयन्ती दूत्याह—

पुसउ मुहं ता पुत्ति अ वाहोअरणं विसेसरमणिज्जम्।
मा एअं चिअ मुहमण्डणं त्ति सो काहिइ पुणो वि॥ ८१॥

[प्रोञ्छस्व मुखं तत्पुत्रि च (पुत्रिके) बाष्पोपकरणं विशेषरमणीयम्।
मा इदमेव मुखमण्डनमिति करिष्यसि पुनरपि ॥]

मण्डनाभावेन त्वमश्रु विमुञ्चसि किं तु सहजसौन्दर्यशालिन्यास्तव अश्रु एव मण्डनं भवतीति किं मण्डनान्तरेण। अथवा दरिद्रेयं मण्डनमिच्छतीति धनिनो मण्डनादिदानेन सुखसाध्येति तटस्थं प्रति दूत्या उक्तिः॥

पथि कर्दमबाहुल्येन त्वद्गृहे कथमागन्तव्यमिति जिज्ञासुं नायकं नायिकां वा बोधयन्ती काचिदाह—

मज्झे पअणुअपङ्कं अवहोवासेसु साणचिक्खिल्लम्।
गामस्स सीससीमन्तअं व रच्छामुहं जाअम्॥ ८२॥

[मध्ये प्रतनु[क]पङ्कमुभयोः पार्श्वयोः श्यानकर्दमम्।
ग्रामस्य शीर्षसीमन्तमिव रथ्यामुखं जातम् ॥]

प्रतनु स्वल्पं कं जलं यस्मिन्नेतादृशः पङ्को यत्र तादृशम्। तथा च रथ्योभयपार्श्वयोः श्यानकर्दमत्वम्। दिवानिरीक्षितेन पथा रात्रावागन्तव्यमिति काचिद्बोधयति॥

काचन नायिका पितृगृहे स्थिता क्वचिदासक्ता। तद्भर्तरि समागते व्याकुलचित्तं नायकं समादधती दूत्याह—

अवरह्लागअजामाउअस्स विउणेइ मोहणुक्कण्ठम्।
वहुआइ घरपलोहरमज्जणपिसुणो वलअसद्दो॥ ८३॥

१. 'खण्डिकैः' ग. २. 'निजपश्चिम' ग. ३. 'तावत्सुन्दरि बाष्पाचरणपरिशेष' ग, 'तावत्पुत्रक बाष्पावतरण' घ. ४. 'मातस्तवैव' घ. ५. 'उभयपार्श्वयोः सरस' घ. ६. 'सीमन्तकमिव' घ.

[अपराह्णागतजामातुर्द्विगुणयति मोहनोत्कण्ठाम् ।
वध्वा गृहपश्चाद्भागमज्जनपिशुनो वलयशब्दः ॥]

मोहनं सुरतम् । मज्जनं शयनमङ्गसंमार्जनं वा । तस्य पिशुनः सूचकः । अपराह्णागतेत्यनेन दिनसत्त्वे जामाता श्वश्र्वादिसांनिध्येन पश्चाद्गृहे न गमिष्यति । सा तु दिनशेष एव तत्र स्वपिति त्वया तत्र गन्तव्यं तत्र सा सुलभेति भावः ॥

कृतकर्मण आरभटीदर्शनेनैव परे पलायन्ते तत्र भीरवस्तु सुतरां पलायन्त इति भीरुता न कर्तव्येति कश्चित्कंचिद्बोधयति—

जुज्झचवेडामोडिअजज्जरकण्णस्स जुण्णमल्लस्स ।
कच्छाबन्धो च्चिअ भीरुमल्लहिअअं समुक्खणइ ॥ ८४ ॥

[युद्धचपेटामोटितजर्जरकर्णस्य जीर्णमल्लस्य ।
कक्षाबन्ध एव [1]भीरुमल्लहृदयं समुत्खनति ॥]

पूर्वं तत्पतिरतिशूरः समर्थश्च स्थितः । संप्रति वार्धकेन क्षीणशक्तिरिति यथापूर्वं तद्वेषधारणमात्रेण तस्मान्न भेतव्यम् । क्षीणशक्तित्वेन तस्या एव स न रोचते । सर्वप्रतीकारसमर्थे त्वयि सा स्नेहमाचरिष्यतीति भीरुतामपहाय तस्यां त्वया प्रवर्तितव्यमिति भावः ॥

काचन सहजसुन्दरी ख्यातगुणवती च प्रियापमानितापि न लज्जिता दौर्भाग्यस्य च चिरकालानवस्थायित्वेन हर्षितैव तां बोधयन्ती सख्याह—

[2]आणत्तं तेण तुमं पइणो पहएण पडहसद्देण ।
मल्लि ण लज्जसि णच्चसि दोहग्गे पाअडिज्जन्ते ॥ ८५ ॥

[[3]आज्ञप्तं तेन त्वां पत्या प्रहतेन पटहशब्देन ।
मल्लि न लज्जसे नृत्यसि दौर्भाग्ये [4]प्रकटीक्रियमाणे ॥]

पत्या भर्त्रा पटहशब्देन डिण्डीरवेण यद्दौर्भाग्यमाज्ञप्तं तेन त्वं लज्जिता न भवसि, नृत्यस्येवेति क्षमावती त्वमसि । अथवा पत्युर्विरक्तापि नृत्यसीत्यनेन परमसुन्दरीयं स्वसौन्दर्यगर्विता सुखसाध्येति तटस्थं कामुकं प्रति प्रलोभनोक्तिर्दूत्याः ॥

खलस्य वाङ्माधुर्यमात्रेण विश्वासो न विधेय इति कश्चिदाह—

मा वच्चह वीसम्भं इमाणँ बहुचाडुकम्मणिउणाणम् ।
णिव्वत्तिअकज्जपरम्मुहाणँ सुणआणँ व खलाणम् ॥ ८६ ॥

---

१. 'भीरुमल्लानां हृदयं समुत्पातयति' ग, 'पलायमानानामक्षिद्वयं समुत्खनति' घ.
२. 'आणन्दीअ तुमं' ग. ३. 'आनन्दयन्ती त्वं पत्युः' ग-घ. ४. 'प्रकटायमाने' ग.

[मा व्रजत विस्रम्भमेषां[1] बहुचाटुकर्मनिपुणानाम् ।
निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखाणां शुनकानामिव खलानाम् ॥]

खलस्वभावोक्तिरियम् ॥

ग्रामान्तरं गच्छन्तीमसतीमनु व्याजेन सह प्रस्थितान्बहून्कामुकान्दृष्ट्वा कापि परिहासपूर्वमिदमाह—

अण्णग्गामपउत्था कड्ढन्ती मण्डलाणँ रिञ्छोलिम् ।
अक्खण्डिअसोहग्गा वरिससअं जिअउ मे सुणिआ ॥ ८७ ॥

[अन्यग्रामप्रस्थिता [2]कर्षयन्ती मण्डलानां पङ्क्तिम् ।
अखण्डितसौभाग्या वर्षशतं [3]जीवतु मे शुनी ॥]

मण्डलाः कुक्कुराः । रिञ्छोलीति पङ्क्त्यां देशी ॥

काचन देवरेऽनासक्ता, तेन च प्रियवाक्यशतैः प्रलोभ्य वशीकृता । ततश्च कुतश्चिन्निमित्ताद्विरज्यति तस्मिंस्तमुपालब्धुमिदमाह—

सच्चं साहसु देअर तह तह चडुआरएण सुणएण ।
णिव्वत्तिअकज्जपरम्मुहत्तणं सिक्खिअं कत्तो ॥ ८८ ॥

[सत्यं कथय देवर तथा तथा चाटुकारकेण [4]शुनकेन ।
निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखत्वं शिक्षितं [5]कस्मात् ॥]

तथा च त्वत्त एवेदं तेन शिक्षितमिति मत्पराङ्मुखत्वं सर्वथा हेयमिति भावः ॥

तस्या गृहेऽन्नादिसमृद्ध्या रात्रौ च तत्पतिर्गायतीत्यनेन तत्पतिसांनिध्येन चन्द्रिकाशोभित्वेन च रात्रेरद्य सा न सुखसाध्येति काचित्कंचिद्बोधयति—

णिप्पण्णसस्सरिद्धी सच्छन्दं गाइ पामरो सरए ।
दलिअणवसालितण्डुलधवलमिअङ्कासु राईसु ॥ ८९ ॥

[निष्पन्नसस्यऋद्धिः स्वच्छन्दं गायति पामरः शरदि ।
दलितनवशालितण्डुलधवलमृगाङ्कासु रात्रिषु ॥]

शरत्काले शालीनां पाके हलिकः स्वगृहे तिष्ठति, तदपाके तद्रक्षार्थं स्वयं क्षेत्रादौ तिष्ठतीति हलिकवधूः शरत्कालातिरिक्तकाले सुलभेति कश्चित्कंचिद्बोधयतीति वा ॥

---

१. 'इमान्—खलान्' ग. २. 'कर्षन्ती' ग-घ. ३. 'भवतु मण्डलिका' ग. ४. 'शुना' ग-घ. ५. 'कुतः' ग-घ.

वर्षाकाले पूर्ववत्सरीयकलमगोपीपदाङ्कितक्षेत्रकर्षणं दृष्ट्वा कश्चित्पान्थ आह—

[1]अलिहिज्जइ पङ्कअले हलालि[2]चलणेण कलमगोवीए ।
केआरसोअ[3]रुम्भणतंसट्ठिअ कोमलो चलणो ॥ ९० ॥

[[4]आलिख्यते [5]पङ्कतले हलालिचलनेन कलमगोप्याः ।
केदारस्रोतो[6]विरोधतिर्यक्(त्र्यंश)[7]स्थितः कोमलश्चरणः ॥]

द्वितीयपाठे 'अभिलष्यते पङ्कजलुब्धालिवलयेन' ॥

त्र्यंशेन भागत्रयेण स्थितः । असंपूर्ण इति यावत् । यदा पूर्ववत्सरे क्षेत्रमध्यस्थितजलस्य शोष आरब्धस्तदा कलमगोप्याः शालिपाकेन संकेतस्य लाभावबोधेन दुःखोपचये संपूर्णश्चरणो न पङ्कमध्ये प्रतिबिम्बितः । स च वर्षान्तरे कर्षणावसरे दृष्टः । तेनात्र क्षेत्रे कलमोत्पत्तिमारभ्य तत्पाकपर्यन्तं कलमगोपी पान्थादिसुलभा स्थास्यतीति तत्प्राप्त्याशां पान्थो निवेदयति स्मरति वा पूर्वानुभूतमर्थमिति भावः ॥

दिअहे दिअहे सूसइ संकेअअभङ्गवड्ढिआसङ्का ।
आवण्डुरोणअमुही कलमेण समं कलमगोवी ॥ ९१ ॥

[दिवसे दिवसे शुष्यति संकेतकभङ्गवर्धिताशङ्का ।
आपाण्डुरावनतमुखी कलमेन समं कलमगोपी ॥]

यथा यथा कलमक्षेत्रमापाण्डुरं भवति, तथा तथा कलमगोपी संकेतस्थलापगमाचिन्तयावनतमुखी भवतीति कलमक्षेत्रकाले सुखसाध्येति तटस्थं प्रति कस्याश्चिदुक्तिः ॥

णवर[8]कम्पिएण [9]हअपामरेण दट्ठूण [10]पाँउहारीओ ।
मोत्तव्वे जो[11]त्तअपग्गहम्मि अवहासिणी मुक्का ॥ ९२ ॥

[नव[12]कम्पितेन हतपामरेण दृष्ट्वा [13]पादपङ्क्तीः ।
मोक्तुं[14] वै एतावद्धसित्वा व्याक्रोशिनी मुक्ता ॥] (?)

विचार्यमेतत् ॥

---

१. 'अहिलिज्जइ' ग. २. 'वलएण' ग. ३. 'रुन्धण' ग. ४. 'अभिलष्यते' ग, 'अभिलीयते' घ. ५. 'पङ्कजलुब्धालिवलयेन' ग-घ. ६. 'स्रोतोन्तरोधनातिर्यक्' ग, 'स्रोतोरोधनतिर्यक्' घ. ७. 'स्थितकोमलौ चरणौ' ग. ८. 'कम्मिएण' ख. ९. 'उअ' ग. १०. 'पाणिहारीओ' ग. ११. 'नेविअपग्ग' ग. १२. 'कर्मणा पश्य' ग, 'कार्मिकेण हत' घ. १३. 'पानीयभक्तहारिकाम्' ग, 'भक्ताद्याहारीं' घ. १४. 'मोक्तव्ये निपुष्टप्रग्रहे आसिनी' ग, 'मोक्तव्ये योक्तृकप्रग्रहेऽवकाशिनी' घ.

काचिद्व्रतासक्तान्यचित्ततां करोति । हलवाहनासक्तस्य भक्तहारिणीमेव दृष्ट्वा पामरस्य चेष्टां वा कापि प्राह—

[नवकर्मिणा पश्य पामरेण दृष्ट्वा भक्तहारिकाम् ।
मोक्तव्ये योक्त्रप्रग्रहेऽवहासिनी मुक्ता ॥]

पा[उहारी] भक्तहारीति देश्याम् । न[वकर्मिणा] अनभ्यस्तकार्मिणा । योक्त्ररूपे प्रग्रहे मोक्तव्ये अ[वहासिनीमुक्ता ।] भक्तहारिकां दृष्ट्वा जातव्यासङ्गेनावहासिनी 'नाथ' इति प्रसिद्धा, अन्यो "जोत" इति व्याख्या टीकान्तरस्था ॥

दट्ठूण हरिअदीहं गोसे [1]णइज्जूरए हलिओ ।
असईरहस्समग्गं तुसारधवले तिलच्छेत्ते ॥ ९३ ॥

[दृष्ट्वा हरितदीर्घं [2]प्रातर्नातिखिद्यते हलिकः ।
असतीरहस्यमार्गं तुषारधवले तिलक्षेत्रे ॥

तिलक्षेत्रमध्ये येन पथा काचिदसती गत्वा विहारं कृतवती तं मार्गं हरिततिलयुक्तं दृष्ट्वा नातिखिन्नोऽभूदिति स्वक्षत्यभावे परोपकृतौ हालिकस्यापि तात्पर्यमिति परोपकृतौ यतनीयमिति भावः ॥

संकेल्लिओ व्व णि[3]ज्जइ खण्डं खण्डं कओ व्व पीओ व्व ।
वासागमम्मि [4]मग्गो घरहुत्त[5]सुहेण पहिएण ॥ ९४ ॥

[[6]संकोचित इव नीयते खण्डं खण्डं कृत इव पीत इव ।
वर्षागमे मार्गो [7]गृहभविष्यत्सुखेन पथिकेन ॥]

'गृहभवत्सुखेन' इति वा । आगामिसुखमुद्दिश्य पथिकेन मार्गक्लेशमगणयित्वा त्वरया गृहं प्रति गम्यत इति नायको यथा दुःखं न प्राप्नोति तथा नायिकया विधातुमुचितमिति भावः ॥

"[8]काचिदुत्तमा दुर्जनस्य कस्यचिदुपचयं पश्यन्ती सखीसंनिधौ परितप्यते—

धण्णा बहिरा अन्धा ते च्चिअ जीअन्ति माणुसे लोए ।
ण सुणन्ति पिसुणवअणं खलाणँ ऋद्धिं ण पेक्खन्ति ॥ ९५ ॥

---

१. 'सण्ढाण जूरए' ग. २. 'प्रातर्वृषभान्निन्दयति हालिकः' ग, 'प्रभाते वन्येभ्यः क्रुध्यति हालिकः' घ. ३. 'साहइ' ग. ४. 'पन्था' ग. ५. 'मुहेण' ग. ६. 'संकलित इव ज्ञायते' ग. ७. 'गृहाभिमुखमनसा' ग-घ. ८. इतः प्रभृति सटीकं गाथापञ्चकं शतकपूरणार्थं कुलबालदेवव्याख्यातो गृहीतम्. गङ्गाधरटीकायां तु गाथापञ्चकोनं सप्तशतकमस्तीति ज्ञेयम्.

[धन्या बधिरा अन्धास्त एव जीवन्ति मानुषे लोके।
न शृण्वन्ति पिशुनवचनं खलानामृद्धिं न प्रेक्षन्ते ॥]

असदृश्यां कस्यांचिदासक्तः कश्चिदुत्तम एव सख्या वार्यमाणः सासूयं तमेव वदति—

एह्णिं वारेइ जणो तइआ मूइल्लओ कहिं व्व गओ।
जाहे विसं व जाअं सव्वङ्गपहोलिरं पेम्म ॥ ९६ ॥

[इदानीं वारयति जनस्तदा मूलकः कुत्रापि वा गतः (आसीत्)।
यदा विषमिव जातं सर्वाङ्गघूर्णितं प्रेम ॥]

कस्याश्चित्सखी सख्या अनुरागातिशयं नायकविषये सूचयन्ती नायकाग्रे कथयति—

कह तंपि तुइ ण णाअं जह सा आसन्दिआणँ बहुआणम्।
काऊण उच्चवचिअं तुह दंसणलेहला पडिआ ॥ ९७ ॥

[कथं तदपि त्वया न ज्ञातं यथा सा आसन्दिकानां बहूनाम्।
कृत्वा उच्चावचिकां तव दर्शनलालसा पतिता ॥]

रात्रिशेषे कुक्कुटः शब्दं करोतीति कुक्कुटानां स्वाभाविकं रूपम्। तच्छ्रुत्वा तस्य प्रयोजनमुत्प्रेक्ष्य विवृणोति कश्चित्—

चोराणँ कामुआणँ अ पामरपहिआणँ कुक्कुडो वअइ।
रे रमह वहह वाहयह एत्थ तणुआअए रअणी ॥ ९८ ॥

[चौरान्कामुकांश्च पामरपथिकांश्च कुक्कुटो वदति।
रे रमत वहत वाहयत अत्र तन्वी भवति रजनी ॥]

यथायोगमन्वयः, न तु यथासंख्यम् ॥

कयोश्चिन्नायिकयोरन्योन्यं कलहं कृतवतोः कटाक्षान्तरेण निरीक्षणं कुर्वतोरनन्तरमन्योन्यं कटाक्षयोः संनिपाते समं प्रहसितयोश्चेष्टितमेका परस्याः कथयति—

अण्णोण्णकडक्खन्तरपेसिअमेलीणदिट्ठिपसराणम्।
दो च्चिअ मण्णे कअभण्डणाइँ समअं पहसिआइं ॥ ९९ ॥

[अन्योन्यकटाक्षान्तरप्रेषितमिलितदृष्टिप्रसरौ।
द्वावपि मन्ये कृतकलहौ समकं प्रहसितौ ॥]

मण्डनशब्दः कलहविशेषे वर्तते ॥”

अथ समाप्तौ हरनमस्काररूपं मङ्गलमाचरति—

संझागहिअजलञ्जलिपडिमासंकन्तगोरिमुहकमलम् ।
अलिअं चिअ फुरिओट्ठं विअलिअमन्तं हरं णमह ॥ १०० ॥
[संध्यागृहीतजलाञ्जलिप्रतिमासंक्रान्तगौरीमुखकमलम् ।
अलीकमेव स्फुरितोष्ठं विगलितमन्त्रं हरं नमत ॥]

हरस्यापि गौरीमुखकमलप्रतिबिम्बं दृष्ट्वा संध्यारूपनित्यकर्माङ्गमन्त्रलोपो भवति, किं पुनरस्मदादेर्लोकस्य प्रियासांनिध्ये व्याकुलचित्ततेति सर्वथा स्त्रीसङ्गः परिहरणीय इति तात्पर्यार्थः ॥

इअ सिरिहालविरइए पाउअकव्वम्मि सत्तसए ।
सत्तमसअं समत्तं गाहाणँ सहावरमणिज्जम् ॥
[इति श्रीहालविरचिते प्राकृतकाव्ये सप्तशते ।
सप्तमशतं समाप्तं गाथानां स्वभावरमणीयम् ॥][3]

हाल इति राज्ञः शालिवाहनस्य संज्ञान्तरम् । गाथेति च्छन्दः । इतिशब्दो ग्रन्थपरिसमाप्तौ ॥

इति गङ्गाधरभट्टविरचिता प्राकृतगाथासप्तशतीटीका समाप्ता ।

---

१. 'मण्णुं' ग. २. 'मन्युं' ग. ३. ख-ग पुस्तकयोः समाप्तावियमेका गाथा—

एसो कविणामङ्किअगाहापडिबद्धवड्ढिआमाओ ।
सत्तसअओ समत्तो सालाहणविरइओ कोसो ॥
[एष कविनामाङ्कितगाथाप्रतिबद्धवर्धिता........ ।
सप्तशतकः समाप्तः शालवाहनविरचितः कोषः ॥]

